सूर्य का रथ

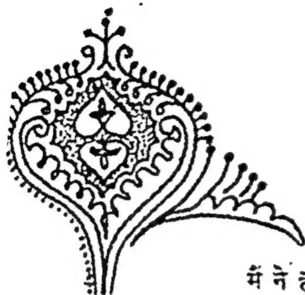
मनहर चौहान



- 'सूर्य का रक्त' में शिवाजी के ज्येष्ठ पुत्र सम्भाजी जैसे विवादास्पद चरित्र को अत्यधिक महानुभूतिपूर्वक अंकित करने में लेखक को जो सफलता मिली है, उसके बारे में दो मत नहीं हो सकते।

- 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' में धारावाही प्रकाशन की कुछ तकनीकी आवश्यकताओं को दृष्टि में रखते हुए लेखक ने इसे विशेष रूप से संपादित किया था, लेकिन यह गौरवशाली कृति यहां अपने मूल रूप में सविनय प्रस्तुत हो रही है।

- निर्जीव स्याही से निर्जीव कागज पर छापे गये शब्द किस चमत्कारिक ढंग से सजीव बन सकते हैं, 'सूर्य का रक्त' इसका अद्वितीय उदाहरण है। पतन की ओर बढ़ रहे मराठा शासन का इतना वास्तविक और थर्राने वाला चित्रण हिन्दी में शायद ही किसी उपन्यास में हुआ हो। इसमें किया गया सरल-से-सरल शब्दों द्वारा तेज-से-तेज गति का उद्घाटन किसी को भी मंत्र-मुग्ध कर देगा। पाठक को बांधकर रखने की मनहर चौहान की क्षमता इस उपन्यास में चरम बिन्दु तक पहुंचती है।



इससे पहले कि आप यह उपन्यास पढ़ना शुरू करें

मैं ने हर बार अपने पाठकों को नई चीज देने की कोशिश की है—न केवल कहानियों में, उपन्यासों में भी। मेरा पहला उपन्यास 'टूटा व्यक्तित्व' मनोवैज्ञानिक था, दूसरा 'हिरना सांवरी' आंचलिक। तीसरा 'रात खो गई' शहर की खोखली आधुनिकता का चित्रण करता हुआ सामने आया। 'संतुलन-असंतुलन' में मेरे दो छोटे उपन्यास एक जिल्द में एक नितान्त नए ढंग से प्रस्तुत हुए हैं। 'संतुलन' में नगर और 'असंतुलन' में महानगर के बदलते मूल्यों का चित्रण है।

और अब यह पांचवी कृति—ऐतिहासिक।

शिवाजी के ज्येष्ठ पुत्र सम्भाजी का जीवन इतनी घटनाओं तथा विडम्बनाओं से भरा हुआ है कि उन पर उपन्यास लिखने की हूक मन में उठी और 'सूर्य का रक्त' ने आकार पाया। ये घटनाएं मुझे कुछ इस तरह बिखरी हुई लगीं कि उन्हें दिलचस्पी के सूत्र में बांधने के लिए मैं ने मुकुन्द और गुल, इन दो काल्पनिक पात्रों को उपन्यास में जगह दी।

सम्भाजी कुछ कारणोंवश अपने पिता शिवाजी से असन्तुष्ट था। उपन्यास में पिता के प्रति उस ने जो आक्रोश व्यक्त किया है, उसे आप लेखक का दूषित दृष्टिकोण न समझें। शिवाजी महान थे और रहेंगे, किन्तु अपनी अस्वस्थता एवं राजनीतिक-सामाजिक परिस्थितियों में फंस कर जीवन के अन्तिम दिनों में वह ऐसे उलझ गए थे कि बहुत चाहने पर भी वह अपने ज्येष्ठ पुत्र की श्रद्धा न जीत सके।

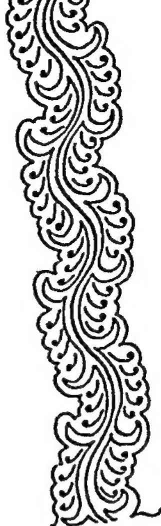
सम्भाजी की चरित्र-हीनता प्रसिद्ध है, लेकिन उस चरित्र-हीनता के कारण क्या थे, इस पर अब तक किसी उपन्यास-कार ने ध्यान नहीं दिया है। उपन्यास पढ़ कर आप को सम्भाजी से महानुभूति हो जाएगी। लगेगा कि यदि आप स्वयं सम्भाजी की जगह पर होते, तो आप भी शायद वही करते, जो उस ने किया। सम्भाजी बिल्कुल ही चरित्र-हीन नहीं था, ऐसा मत रखने वाले इतिहासकार भी हैं, लेकिन विभिन्न ग्रन्थों के अध्ययन से मुझे लगा है कि सम्भाजी ने मुगल शिविर में रह कर तरह-तरह के कुप्रभाव अवश्य ग्रहण किए थे, जो आजन्म उस का पूरी तरह पीछा न छोड़ पाए।

कवि कलश के प्रारम्भिक जीवन के बारे में जो ऐतिहासिक सूत्र मिलते हैं, वे बिखरे हुए हैं, अतः मुझे कल्पना का थोड़ा सहारा लेना पड़ा है। हां, 'छन्दोगामात्य' बनने के बाद उस का राजनीतिक महत्व बहुत बढ़ गया था, जिस से सूत्रों का बिखराव दूर हो गया।

'सूर्य का रक्त' लिखने में मुझे अन्य ग्रन्थों के अलावा मराठा इतिहासकार गोविन्द सखाराम सरदेसाई के ग्रन्थ 'मराठों का नवीन इतिहास' से बहुत सहायता मिली है। मुझे उन का आभार-प्रदर्शन अवश्य करना चाहिए।

प्रस्तुत उपन्यास का संक्षिप्त रूपान्तर 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' में धारावाही छपा था, तभी पाठकों ने इसे बहुत पसन्द किया था। इस के लिए मैं उन सभी का अत्यन्त आभारी हूं।

आप को 'सूर्य का रक्त' कैसा लगा ? अपना मत मुझे अवश्य लिखें। —मनहर चौहान



रचनाएँ : इसी लेखनी से

उपन्यास : वैविध्य बोध

'टूटा व्यक्तित्व' : स्वयं टूटने, स्वयं संवरने वाली वह युवती···

'हिरना सांवरी' : छत्तीसगढ़ के रंग और दर्द की कहानी : हिरना उर्फ लक्ष्मी की जवानी···

'रात खो गई' : वर्ग-संघर्ष की परतों के पार देखते, असंगतियों से जूझते सत्येन्द्र की कोमलता-कठोरता···

'सन्तुलन-असन्तुलन' : दो उपन्यास—एक जिल्द··· नगर और महानगर : भिन्न समस्याएं···

→





→

बाल-साहित्य : नई दिशा

'पूपू' : आठ पैरों के दरियाई राक्षस अष्टपद की कहानी—
दिलचस्प उपन्यास के सांचे में

'रूपा और लल्ली' : चींटियों के दैनिक जीवन पर अत्यन्त
रोमांचक, दिलचस्प और ज्ञानवर्द्धक बाल-उपन्यास

'हाथी का शिकार' : असम के जंगलों में : हाथियों के बीच

◉ ◉

विविध

'खूब लड़ी मर्दानी'

'हल्दी घाटी'

'जय भवानी' : तीनों किशोर-ऐतिहासिक-उपन्यास



मनहर चौहान की
कुछ अन्य रचनाएं

कोई एक घर
अरे, ओम्प्रकाश !
तीन श्रेष्ठ युद्ध उपन्यास
सीमाएं
बीस सुबहों के बाद
युद्ध की तेरह श्रेष्ठ कहानियां
मृत्यु-भोज तथा अन्य वैज्ञानिक कहानियां

१

मुकुन्दराव जब औरंगाबाद से गुल के कसबे की ओर रवाना हुआ तो उस ने सपने में भी न सोचा था कि गुल् का घर भुतहा हो गया होगा। जब उस का पुष्ट काबुली घोड़ा उस कसबे की ओर दौड़ रहा था तो मुकुन्द का तन ही नहीं, मन भी उछल रहा था। गुल! कितनी खूबसूरत, कितनी भली!

कई बार मुकुन्द आश्चर्य करता कि केवल चार माहों में ही गुल उस पर इस बुरी तरह कैसे छा गई है। सच पूछा जाए तो गुल का छा जाना कभी-कभी मुकुन्द को बुरा भी लगता। अभी तक कोई नहीं जानता था कि मुकुन्द प्यार के बीज किसी कुंवारी धरती पर छिड़क चुका है। किसी से नेह हुआ नहीं कि पूरी दुनिया में ढिंढोरा पीटने वालों से उसे बहुत चिढ़ थी। अगर कोई जान जाए कि उस ने अपना दिल गुल जैसी लड़की को दिया है, तो कितनी खिल्ली उड़ाए!

मुकुन्द ने भी अपनी ओर से पूरी चेष्टा की थी कि वह प्यार न करे, कम-से-कम गुल से तो न ही करे, लेकिन वह बाँह ?···जब झाड़ी की ओट से बाहर आ कर उस ने 'पानी पिलाओगी ?' पूछा था तो कितनी चौंकी थी गुल, कितनी झेंपी और सिकुड़ी-सिमटी थी गुल! उस की बड़ी-बड़ी आंखों में जो कुंवारापन भरा था, उसे देख कर भला कौन···

तब सुबह होने वाली थी। सूरज की कोर अभी क्षितिज से उभरी

नहीं थी लेकिन रात का अन्धेरा पूरी तरह जा चुका था। पेड़ों पर चिड़ियां जाग गई थीं और शोर कर रही थीं।

'पानी पिलाओगी?' पूछ कर मुकुन्द भूल गया था कि उस ने कुछ पूछा भी है। मोहिनी छा गई थी और पता ही न चला था, कब वह लड़की आगे आई थी और सिहरती हुई कह रही थी, 'लीजिए...'

'लीजिए न?' लड़की ने फिर से कहा था, इस वार कुछ झुंझलाते हुए, मानो उसे कोई सन्देह हुआ हो—और मुकुन्द की तन्द्रा टूटी थी। 'ओह' कहते हुए वह झेंप गया था। दोनों हथेलियों का कटोरा बना वह तुरन्त कमर झुका कर खड़ा हो गया था। लड़की ने अपनी गागर से पानी की धार बना दी थी। उसी वक्त मुकुन्द ने कितना चाहा था कि पलकें उठा कर लड़की को जरा और देख ले, पर हिम्मत बटोर पाता तब न!

एक तो वह पहले से बहुत प्यासा था, साथ-साथ यह जिद भी पैदा हुई कि लड़की दंग रह जाए इतना पानी पी लूं। छह फीट के शरीर में यों इतनी जगह थी कि छोटी-मोटी गागर तो प्यास न लगी होती तो भी खाली हो जाती। यहां लगातार चार घंटों से जीभ तालू से चिपकी हुई थी। गुल की गागर देखते-देखते हल्की हो गई थी। अपनी इस हरकत के बावजूद मुकुन्द उस की आंखों में घूरने का साहस न कर सका, न गुल ने ही कहा कि आप बहुत प्यासे थे। चुपचाप वह फिर से कुएं पर गई थी और जगत पर रखी रस्सी से गागर का गला बांध कर उसे भीतर फेंक दिया था।

कुएं के पास एक पत्थर का कुण्ड था जिस में लबालब पानी भरा हुआ था—जानवरों के लिए। मुकुन्द का थका-मांदा घोड़ा स्वयं ही कुण्ड तक पहुंच गया था और गटगट पानी पी रहा था। उस की लम्बी गर्दन में पानी का हर घूंट एक सरकता हुआ उभार पैदा करता। मुकुन्द ने सोचा, 'बहुत खूबसूरत लड़की से तो बात करने में भी डर लगता है। यह तो मैं था, वरना अगर कोई और होता तो इस से पानी तक न मांग

सकता। देख कर ही इतना घबरा जाता कि कुण्ड के गन्दे पानी में मुंह डाल कर भले ही सन्तोष कर लेता, लेकिन'''यह लड़की? वह कभी न पूछती कि गन्दा पानी क्यों पीते हो, लो, साफ मैं पिलाए देती हूं।'

तभी भीतर से किसी ने कहा, 'क्यों फूले नहीं समा रहे? दम-खम तो तब है जब इसी से इस का नाम पूछो, रहती कहां है यह पूछो'''

और 'माहमी' मुकुन्द को पता चल गया, वह कितने गहरे पानी में है। पानी पीते घोड़े के पास जा कर वह उस की पीठ थपथपा रहा था और हिलती दुम को बेवजह देख रहा था। चाह कर भी वह वापस न घूम सका, युल की ओर पीठ कर के ही खड़ा रहा'''न जाने कैसा-कैसा लग रहा था!

केवल राहत पाने के लिए उस ने सोचना शुरू कर दिया कि इस कसबे तक वह कैसे आ पहुंचा था। कल दोपहर को कुछ साथियों के साथ वह शिकार खेलने के लिए औरंगाबाद के मुगल शिविर से रवाना हुआ था। रवानगी की वह घड़ी जरूर मनहूस रही होगी। तभी तो दिन भर भटकते रहने पर भी कोई शेर क्या, सियार या खरगोश तक दिखाई न पड़ा था। जब शाम घिरने लगी थी और उदास हो कर सब वापसी की सोचने लगे थे तो सहसा हिरनों का एक झुण्ड उधर से गुजरा था। रात बिताने का सुरक्षित स्थान इस हिरनों को नहीं मिला था, जिस से वे बेकल थे। घोड़े दौड़ा दिए गए। कुछ समय तक हिरन झुण्ड में ही भागते रहे, फिर बिखर गए। कोई इधर भागा, कोई उधर। मुकुन्द की टोली भी टूट गई। कोई किसी के पीछे इधर गया, कोई किसी के पीछे उधर।

मुकुन्द जिस के पीछे था, उस हिरन की स्फूर्ति जरूरत-से-ज्यादा सिद्ध हुई क्योंकि बेतहाशा दौड़ता घोड़ा किन-किन जंगली पगडण्डियों से गुजर चुका है, मुकुन्द को इस का ध्यान न रहा। फुर्तीला हिरन मुकुन्द ने मार तो गिराया था लेकिन इस का कोई सबूत नहीं बचा था। दौड़ता हिरन सहसा रुका था क्योंकि सामने गहरा पहाड़ी नाला आ गया। अगले ही

क्षण हिरन किसी और दिशा में दौड़ पड़ा होता लेकिन सनसनाता हुआ मुकुन्द का तीर आया और पेट में धंस गया। हिरन लड़खड़ा कर नाले में उलट गया। जब तक घोड़ा पास आता और मुकुन्द नीचे उतरता, नाले का पानी उस की लाश को काफी दूर ले जा चुका था। मुकुन्द ने नाले की कगार पर से नीचे झांका'''जोशीला पहाड़ी नाला'''कगार इतनी ऊंची और सीधी थी कि उतरने की कोशिश करना बेवकूफी ही होती।

तब उसे पता चला था कि वह भटक गया है। आसपास के वृक्ष उस के जाने-पहचाने नहीं थे; न ऊपर तना हुआ आकाश ही उसे परिचित लग सका। वह भटकता रहा रात भर, कोई साथी मिल जाए, कोई पहचानी पगडण्डी मिल जाए'''और वह इस कसबे में आ गया था।

घोड़ा पानी पी चुका था। वह उस की पीठ थपथपाता रहा। वह जानता था कि गुल गागर भर कर वापस जा चुकी होगी, लेकिन वह अपने को धोखा देता रहा'''वह पीछे ही खड़ी है और कभी-कभी उसे देख भी लेती है''' लाल सूरज क्षितिज की ओट से ऊपर आ गया था और सोना छिटका रहा था।

मुकुन्द घोड़े पर सवार हो कर कसबे में आया। किसी भी आम कसबे जैसा यह कसबा उसे बहुत खूबसूरत लगा। हर खिड़की, हर दरवाजे पर उस की आंखें जा ठहरतीं''' शायद कहीं गुल खड़ी हो! पीठ पर बंधे तरकस, कन्धे से लटकते कमान और पुट्ठेदार घोड़े को कसबे के लोग थोड़ा रुक कर देखते, फिर आगे चल देते। शिकारी घुड़सवारों का दिखाई पड़ना अनहोनी बात नहीं थी।

घोड़ा ठिठक गया और हिनहिनाया। कितनी जोर से लगाम खींची गई थी उस की। वही! हां, वही थी! आंगन में बैठी थी, ज्यों ही वह दिखाई पड़ा, उठ कर भीतर चली गई थी, गिलहरी की तरह। यहां रहती है? मुकुन्द ने पूरे मकान को अंखियाया। नीची छत वाला बड़ा ही साधारण मकान, लेकिन साफ-सुथरा, सुघड़। और कौन-कौन रहता है इस के साथ? उस के खून की तेजी बढ़ आई। वह नीचे उतरा।

मकान के ठीक सामने चारा बिक रहा था। 'यहां खड़े रहने का अच्छा बहाना है यह।' सोचता हुआ वह चारे वाले की ओर बढ़ा। बिना मोल-भाव किए उस ने कहा, "एक पूड़ा डालना तो···" चारे वाले ने पूड़ा उठा कर घोड़े के सामने रखा और रस्सी खोल कर चारा बिखेर दिया। घोड़ा सन्तोष से आगे बढ़ा और मुंह मारने लगा। मुकुन्द की आंखें मकान पर टिकी। चारे वाला मुस्कराया और सस्तेपन से बोला, "मकान को क्या घूरते हो, घूरो मकान वाली को। ह···ह···ह···"

मुकुन्द का जी हुआ, झिड़क दे। फिर अपने पर झुंझलाया भी। 'लड़की मेरी मंगेतर थोड़े ही है जो लोग मेरा रोब मानें और कम-से-कम मेरे सामने चुप रहें।' सोच कर वह मुस्कराया और बोला "कौन घर वाली ?"

"लगता है, कसबे में पहली बार आए हो।" चारे वाला हंसा।

"हां, आया तो पहली बार हूं।"

"शायद कहीं सैनिक हो। कहां ?"

मुकुन्द को समझते देर न लगी कि घर वाली का परिचय पाने के लिए चारे वाले की जरा खुशामद करनी होगी। तभी तो उस ने ऐसा सवाल पूछा है जिस का घर वाली से कोई सम्बन्ध नहीं।

"औरंगाबाद में शिवाजी का मराठा दस्ता है। उसी में हूं।"

"इधर कैसे निकल आए ?"

"शिकार खेलते-खेलते भटक गया हूं। औरंगाबाद यहां से कितनी दूर होगा ?" मुकुन्द ने तय किया कि घर वाली के बारे में पूछेगा ही नहीं। कमबख्त यह खुद बताएगा, बिना खुशामद किए।

"करीब २० मील, पश्चिम में।" चारे वाले ने कहा। इधर-उधर की कुछ बातें कर के वह भांप गया कि यह सैनिक पूछने वाला नहीं और बिना बताए जी न मानेगा, सो उस ने सब बिना पूछे बता दिया। नाम है गुल, विधवा मां के साथ अकेली रहती है, रात को सज-धज कर बैठती है और गीत सुनाती है···कमाई का यही जरिया है···

मुकुन्द आगे न सुन सका। कानों में जैसे गर्म सीसा भर गया हो··· घोड़ा चारा समाप्त कर चुका था। सिक्के फेंक कर वह उस पर सवार हुआ और दौड़ा दिया—बिना जाने, किधर। गुल···इतनी अच्छी गुल··· कमाई का यही जरिया है··· रात को सज-वज कर··· मुकुन्द जल रहा था। 'दूर भाग जाऊंगा मैं, बहुत दूर। कभी इधर न आऊंगा।'

लेकिन भाग सका वह ? बल्कि दिन भर कसबे में और क़सबे के आस पास के वीराने में घूमता रहा, बिना खाए-पिए। सोचता रहा एक ही बात, 'गीत ही तो सुनाती है। चारे वाले ने यह थोड़े ही कहा कि··· क्या हुआ, अगर सुनाती है! पेट के लिए क्या नहीं करना पड़ता ? केवल गीत सुनाती होगी, और 'कुछ' नहीं करती होगी, वरना उतना कुंवारापन, उतनी झेंप कैसे होती उस में ?'

शाम घिरी तो उसे होश आया, वह कितना भूखा है, कितना प्यासा। कसबे के आखिरी मकान से वह बहुत दूर निकल आया था— अमरूद के कुछ वृक्षों और कल-कल बहते एक झरने के पास। अमरूद तोड़ने के लिए वृक्ष पर चढ़ने की ताकत उस में नहीं थी। ढेले मार कर दो-चार गिराए, खाए, झरने का पानी पिया। घोड़े की गर्दन से लिपट कर लाड़ किया, फिर लगाम थाम, कसबे की ओर पैदल चल दिया। चलते हुए उस ने अपनी पगड़ी खोल कर फिर से बांधी, हालांकि वह ठीक ही बंधी हुई थी।

धड़कता दिल लिए जब वह गुल के मकान मे दाखिल हुआ तो वहां पहले से चार-पांच तोंदिल महाजन बैठे हुए थे। सब ने मुकुन्द की ओर नापसन्दगी से देखा। हुक्का चल रहा था। "लीजिए" कहते हुए एक महाजन ने हुक्के को अगले महाजन की ओर खिसकाया। गड़-गड़ की आवाज कमरे में भर गई। कमरा बिल्कुल सजा हुआ नहीं था। मुकुन्द चारों ओर देखता हुआ दरी पर बैठा, महाजनों की क़तार की एक कड़ी बनता हुआ। सब ने फिर उस की ओर नापसन्दगी से देखा और इस बार एक-दो ने एक-दो की ओर निगाह उठा कर मुंह भी बिचकाया। मुकुन्द

ने परवाह न की और सामने के दरवाजे पर टंगे सफ़ेद पर्दे की ओर ताकता रहा। उधर से धीमी हंसी की आवाज़ सुनाई पड़ी। फूल! यह फूल ही हो सकती है।

हुक्का चलते-चलते उस महाजन के पास आया जो मुकुन्द के पास बैठा हुआ था। कुछ देर तक गुड़गुड़ा कर उस ने हुक्का मुकुन्द की बजाय वापस दूसरे महाजन की ओर खिसकाना चाहा लेकिन मुकुन्द का मज़बूत हाथ हुक्के की नाल थाम चुका था। नम्रता से मुस्करा कर उस ने कहा, "मैं भी पीना जानता हूं। मुझे मुकुन्दलाल कहते हैं। महाजन सैनिक हूं। जान पर खेलता हूं तब पैसे कमाता हूं।" मुकुन्द का स्वर तीखा था। दीवार से पीठ टिका कर वह लापरवाही से धुआं उड़ाने लगा।

उसी समय पर्दा हटा और फूल ने प्रवेश किया। दीवार का सहारा छोड़ कर मुकुन्द सीधा बैठ गया। हुक्का पीना उसे कुछ बनावटी सी लगी। उस ने हुक्के को महाजन की ओर सरका दिया और फूल की ओर पलकें उठाईं। वह सामने के आसन पर आसीनता से बैठ गई थी। "तुम ने मुझे देखा था नहीं?" इस सवाल ने मुकुन्द को आश्चर्य किया। [illegible] की तरह दुबली एक बूढ़ा फूल के साथ बाहर आ गई थी। "मत इस की मत हंसी। किसकी कमज़ोर है!" मुकुन्द ने सोचा। फूल का चेहरा भी उसे जितनी सुन्दर थी, उतनी ही लापरवाही इन महाजनों ने आसन फूल को इस तरह बैठने दिया था, यह मुकुन्द को सब रहीं था। [illegible] के लिए उसे हुक्के की तलब लग आई, लेकिन नहीं, फूल के सामने ऐसा वह कैसे पी सकता है।

[illegible]

उठा, समाप्त हुआ। बीच-बीच में सिर हिलाते महाजनों ने 'वाह! वाह!' की आवाजें उगलीं। मुकुन्द को यह सब पार्श्व में मालूम पड़ रहा था—उस के सामने थी केवल गुल। वह इस पर गौर ही न कर सका कि गुल के गायन के साथ वादन नहीं है। वह केवल अपने गले की माधुरी सुना रही है—कमरे में कोई वाद्य नहीं है। न तबला, न बांसुरी, न सारंगी। यदि वह गौर कर पाता तो निर्णय करना बड़ा मुश्किल होता कि वाद्यों का न होना निर्धनता का सूचक है या गुल को उन की आवश्यकता ही नहीं?

गुल लगभग एक घण्टे तक गाती रही। इस लम्बे समय में उस ने मुकुन्द की ओर दो या तीन बार से ज्यादा न देखा, लेकिन वह जानता था कि वह उसे पहचान रही है। गीतों की समाप्ति के बाद गुल की मां ने सब को एक-एक पान दिया। महाजन पान उठाते, गुल की ओर भूखी निगाह डालते, जेब में हाथ सरकाते, चेहरे पर ऐसे भाव उभारते मानो अभी डकार लेने वाले हों, फिर पानदान में ही बने एक खांचे में कुछ सिक्के डाल देते। मुकुन्द ने देखा, वे सिक्के बहुत कम थे।

मुकुन्द को वेश्याओं और गायिकाओं के पास जाने की आदत नहीं थी लेकिन मित्रों के आग्रह करने तथा आग्रह न मानने पर खिल्ली उड़ने से वह दो-एक बार गया था। हर बार मित्रों ने शराब की बोतलों के मुंह व औरतों के कपड़े खोल दिए थे लेकिन मुकुन्द ने केवल गायन-वादन तक ही अपना मनोरंजन सीमित रखा था। मित्रों ने उसे मूर्ख ठहराते हुए कहा था कि अगर किसी लड़ाई में उस का गला उतर गया तो दुनिया की सब से मजेदार चीजों से अपरिचित ही रह जाएगा, लेकिन मुकुन्द ने परवाह नहीं की थी। दो-एक बार लिए गए कोठों के अनुभवों से वह जान गया था कि गायन के बाद अक्सर कितना दिया जाता है। यहां गुल को जो दिया जा रहा था, वह उस के आधे से ज्यादा किसी सूरत में नहीं था। महाजनों की कंजूसी पर मुकुन्द को क्रोध आया। जब पान-दान उस के सामने लाया गया तो उस ने एक की बजाय तीन पान उठा

लिए और जेब में हाथ डाल कर दो दिन पहले मिली तनख्वाह का अधि-काश पानदान के खाचे में रख दिया।

महाजनों ने आश्चर्य से उस की ओर देखा। दो-एक व्यंग्य से मुस्कराए भी। मुकुन्द की आंखें सिकुड़ीं। गुल चुप बैठी थी, सिर झुकाए, पुतली की तरह स्थिर। उस की मां कह रही थी, "बेटे…"

बेटे!

"बेटे, हम इतना नहीं लेते…।" कांपता स्वर।

मुकुन्द मुस्करा कर कुछ अवश्य कहता, पर उसी समय बगल में बैठा महाजन उस की ओर आंख चला कर धीरे से बोला, "[illegible] आगे की बात तय नहीं होगी, समझे? इतना रख लो।"

बुढ़िया पास ही खड़ी थी। धीमे स्वर के बावजूद क्या उस ने यह बात नहीं सुन ली होगी? मुकुन्द की मुट्ठियां भिंच गईं। उस की [illegible] आंखों में खून उतरा और इस से पहले कि वह जान पाता, उस ने क्या किया, वह अपना हाथ चला चुका था।

महाजन हड़बड़ा गया। अगर दोनों हाथों से उस ने अपना [illegible] न दिया होता तो वह उसी जगह कहीं [illegible] गिर गया होता। उस की पगड़ी खुल कर जमीन पर लोट गई। "क्या कर रहे हो!" आतंकित स्वर में कहता हुआ वह अपनी पगड़ी संभालने लगा। मुकुन्द ने फिर से हाथ उठाया, पर बुढ़िया ने आगे बढ़ कर उसे थाम लिया।

[illegible] मुकुन्द [illegible], [illegible],
[illegible] महाजन [illegible] लिया [illegible]
मुकुन्द ने देखा, [illegible] नहीं थी। बुढ़िया [illegible] रही थी, "[illegible]
[illegible] ?"

मुकुन्द ने [illegible],
[illegible] हूं, [illegible] हुआ, [illegible],
[illegible]। मुकुन्द [illegible]
[illegible]। बुढ़िया ने [illegible]

रवाजे पर लटकते परदे की ओर बढ़ी, "इधर आओ।"

वह रसोई का कमरा था, छोटा-सा, जिसे कपड़े बदलने के लिए भी उपयोग में लाया जाता था। एक कोने में गड्ढा कर के दो ईंटों से चूल्हा बनाया गया था। पास ही बर्तन रखे थे। दूसरे कोने में, जहां सहमी हिरनी की तरह गुल खड़ी थी, एक सन्दूक था। 'इस में कपड़े और बिछौने रखे होंगे।' मुकुन्द ने सोचा और गुल की ओर देखा, "आप डर गईं? मैंने आप को आज सुब..." वह रुक गया। गुल की आंखें उस की ओर उठ कर कुछ इस तरह फैली थीं और होंठ इस तरह खुले थे कि वह तुरन्त समझ गया था, सुबह वाली बात नहीं कहनी है—कदाचित् बुढ़िया बुरा मानेगी।

"यह मेरी बेटी है। इस का नाम..."

"मैं जानता हूं।"

"कैसे?"

"सभी जानते हैं।"

बुढ़िया लाचारी से हंसी, "हां, सभी जानते हैं, क्या किया जाए।"

रात देर तक मुकुन्द बातें करता रहा। गुल ने खाना पकाया, तीन के लिए। वह बार-बार उस की ओर देख लेता, उसकी मां की आंखें बचा कर, जो यन्त्र की तरह बड़बड़ाती हुई अपनी गाथा कहती जा रही थी। 'आज मैं ने गुल के लिए किसी से झगड़ा किया', इस सुखद अनुभूति ने मुकुन्द को सराबोर कर दिया था। वह बोला, "इस दुनिया में आज से पहले मेरा कोई नहीं था। न मां, न बाप; न भाई, न बहन। सब मर चुके। लेकिन अब मैं अकेला नहीं हूं, आज मुझे कोई मिला है..." उस ने गुल की ओर देखा नहीं था, पर ऐसा लगा था कि गुल ने उस की ओर अवश्य देखा है।

"मैं तो अब पका आम हूं, जाने कब टपक जाऊं।" बुढ़िया कह रही थी, "तब न मालूम इस का क्या होगा! इस दुनिया में कहीं आदमी बसते हैं? सब भेड़िए हैं भेड़िए। जैसे अभी खा जाएंगे।"

"अम्मा जी, अब मैं हूं, आप किसी तरह की चिंता न करें।"

"हर कोई यही कहता है।"

आत्मीयता के बाद अचानक इतना रूखा वाक्य ? मुकुन्द चौंक गया।

"सच्चे मन से कहने वाला भी इसीलिए पहचाना नहीं जाता।" गुल बोली थी—काफी देर बाद।

मुकुन्द खिल गया।

"हर रात यहां कसबे के महाजन आते हैं और इतना पैसा दे जाते हैं कि किसी तरह हम जिंदा रहें। गुल के पिता को मरे तीन माह हो चुके। मुझे दिल के दौरे पड़ते हैं। दो कदम चली नहीं कि हांप जाती हूं—अभी मरी ! पेट के लिए कुछ करना तो था ही, बेचारी गुल का गला बाजार में आ गया। गनीमत है, केवल गला आया, वरना महाजन तो चाहते हैं, पूरी गुल'''छी : !"

भावुकता से मुकुन्द ने वृद्धा के दोनों हाथ थाम लिए, "बस, आगे न कहिएगा। मेरे रहते आप की बेटी पर कोई आंच नहीं आ सकती।" और वह बोल गया, अपने आप, "और देखिए, फिर से 'हर कोई यही कहता है' वाली बात न कहिएगा।"

गुल के हाथ रोटियां बेलते-बेलते रुके।

बुढ़िया खिलखिला पड़ी, "बुरा मान गए ? मेरा मतलब तुम से थोड़े ही था। दरअसल मैं सठिया गई हूं, वाकई मेरा दिमाग खराब हो गया है। किस से क्या कहना चाहिए, कुछ पता नहीं होता। खैर'''हां, तो महाजन कहते हैं, गुल अगर गले के नीचे भी बिक जाए तो वे हमें माला-माल कर दें। हमारे पास सारंगी आ जाए, तबला आ जाए, जाने क्या-क्या आ जाए।"

मुकुन्द को लगा, परिस्थितियों ने बुढ़िया को जरूरत से ज्यादा स्पष्टवादिनी बना दिया है।

"मैं चाहता हूं," उस ने कहा, "गुल गीत सुनाने का काम न करे।" भावुकता में भी उस ने इतना ध्यान अवश्य रखा कि 'काम' की जगह

'धन्धा' न बोल जाए।

"फिर पेट ?"

इस का जवाब मुकुन्द के पास अवश्य था, लेकिन वह चुप रहा। पहले ही दिन वह कह दे कि मेरी तनख्वाह से तीन लोगों का खर्च आसानी से खिच सकता है, तो बुढ़िया को खटक जाएगा, शायद गुल को भी।

ऐसा प्रस्ताव वह चार-पांच मुलाकातों के बाद ही रख पाया, लेकिन गुल हंस कर कटुता से बोली, "तुम्हारा क्या, आज कट मरो, कल कट मरो।" उस की आंखें मुकुन्द पर टिकीं, "कोई और काम क्यों नहीं कर लेते ?" आंखें कह रही थीं, 'तुम ठहरे सैनिक। कैसे नेह करूं तुम से ? किसी भी दिन तुम मौत से प्यार कर लोगे और मैं···'

मुकुन्द लाचारी से बोला, "कौन-सा काम करूं गुल ? सैनिक बन कर जितना कमा रहा हूं, उस का आधा भी वैसे न कमा पाऊंगा। बिना पूंजी के कोई धन्धा नहीं चलता और यदि नौकरी ही करनी है तो सैनिक की नौकरी क्या बुरी ? सच पूछो तो युद्ध उतना खतरनाक नहीं होता, जितना लोग समझते हैं। हजारों में युद्ध होता है तब जा कर कहीं सौ-पचास मरते हैं। मरने वालों में भी छः फीट के लम्बे-तड़ंगे कम ही होते हैं।" मुकुन्द का इशारा अपने मजबूत डौल की ओर था, गुल को गुदगुदी हो आई, मुकुन्द आगे बोला, "और फिर वैसा जवान तो मर ही नहीं सकता जो···किसी से···"

सिहर गई गुल। जो बात बिना कहे कही जा चुकी है, उसे कहने की क्या जरूरत ? मन के किसी चोर ने ऐसा भी चाहा कि जरूरत हो न हो, बात कही जरूर जाए।···लेकिन बात न कही गई। मुकुन्द ने वाक्य पूरा ही न किया। वह ठठा कर हंस पड़ा। दाहिनी मुट्ठी बाईं हथेली पर मार कर उस ने चट् की आवाज की, फिर बांहों को दो डैनों की तरह फैला दिया। गुल को लगा, अभी ये डैने उसे समेट लेंगे, पर मुकुन्द दूसरी ओर घूम चुका था। हंसता हुआ बोला, "तुम बहुत भोली हो !"

गुल कुढ़ी। समेट लिए जाने के वास्ते उस का जिस्म फट-सा रहा था। प्यासे को पानी दिखाया तो जाए, लेकिन दिया न जाए ! मन हुआ,

रूठ जाए, लेकिन रूठने का कारण क्या देगी?

सैनिक की नौकरी न छोड़ने की बात मुकुन्द ने इसलिए भी कही थी कि इन दिनों बड़े युद्ध होने की सम्भावनाएं कम थीं। आगरे से मिठाई की टोकरी में बैठ कर पलायन करने के बाद शिवाजी ने औरंगजेब से सन्धि कर ली थी। शिवाजी को काबू में करना औरंगजेब के लिए भी कठिन ही था। शिवाजी भी कुछ कारणोंवश औरंगजेब से उलझने की स्थिति में नहीं थे। सन्धि दोनों पक्षों के लिए लाभकारी सिद्ध हुई।

दक्षिण-विजय के महत्वाकांक्षी सपनों ने औरंगजेब की नींद हराम कर रखी थी। इसी कार्य के लिए उस ने औरंगाबाद में अपना सैनिक शिविर स्थापित किया था। उस का बड़ा बेटा मुअज्जम तथा प्रख्यात सेनापति दिलेरखां औरंगाबाद से मुगल सेनाओं का संचालन कर रहे थे।

शिवाजी से सन्धि हो जाने के बाद दूसरा बड़ा राज्य था बीजापुर, जिसे विजित करना औरंगजेब का मुख्य उद्देश्य था। गोलकुण्डा पर भी मुगलों की आंखें गड़ी हुई थी। इन दोनों राज्यों को परास्त करने में बड़े युद्धों की आवश्यकता कम थी, क्योंकि शिवाजी ने मुगल सेनाओं का साथ देना स्वीकार कर लिया था।

यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थिति थी कि सन्धि की अमानत के रूप में शिवाजी का बड़ा बेटा सम्भाजी औरंगाबाद शिविर में रह रहा था। उस के साथ मराठों का एक शक्तिशाली दस्ता था। मुकुन्द उसी दस्ते में एक सैनिक था। उस का गला उतरने की सम्भावना इसलिए भी कम थी कि उस को शिवाजी के पास वापस भेज देने की बातचीत चल रही थी। सम्भाजी की पत्नी येसूबाई उन दिनों पन्हाला के किले में थी। उस का अंगरक्षक बीमार पड़ कर मर चुका था। उस के स्थान पर मुकुन्द को अंगरक्षक बनाया जाए, ऐसा स्वयं येसूबाई का आग्रह था। मुकुन्द कई युद्धों में अपनी स्वामिभक्ति, वीरता एवं चतुराई का परिचय दे चुका था।

अंगरक्षक का पद अपेक्षाकृत कम खतरनाक था। इसी लिए गुल ने भी नौकरी छोड़ देने के लिए मुकुन्द पर ज्यादा जोर न दिया।

"अंगरक्षक बनने के बाद मेरी तनख्वाह ड्योढ़ी हो जाएगी। रहने के लिए राजमहल में ही कमरा मिलेगा। तब मैं यहां से अपनी गुल को ले जाऊंगा और बहुत-से बच्चे···" मुकुन्द ने उसे बांहों में भरते हुए कहा था।

गुल से मिलने के लिए वह थोड़े-थोड़े दिनों की आड़ में औरंगाबाद से यहां जरूर आता—अपने घोड़े को उड़ाता हुआ। गुल ने गाने का काम अभी छोड़ा नहीं था। मुकुन्द से एक पाई भी लेनी उसे स्वीकार नहीं थी। 'उस के आत्माभिमान को चोट पहुंचती है', सोच कर मुकुन्द भी उस पर ज्यादा दबाव नहीं डाल पाया था।



दो दिन पहले मुकुन्द को विदा करते समय गुल ने कहा था, "कल मैं घर की दीवारों पर गोबर का पानी चढ़ाऊंगी। तब देखना, कैसी चमकती हैं।" लेकिन चमकना तो दूर, दीवारें इस कदर बूढ़ी लग रही थीं कि ज्यों ही मुकुन्द घोड़े से उतरा और पगड़ी ठीक करता हुआ दरवाजे की ओर बढ़ा, उस के मन में खटका हुए बिना न रह सका। 'कहीं गुल बीमार तो नहीं ?' मन-ही-मन बुदबुदा कर वह दरवाजे तक पहुंचा। दरवाजा बन्द था। दो बार खट-खट कर के वह उस के खुलने के इन्तजार में खड़ा रहा।

उस का आश्चर्य बढ़ा। पहले तो खटखटाहट हुई नहीं कि दरवाजा खुल जाता था आज इतनी देर कैसे ? शायद मां-बेटी सो रही हों।' मुकुन्द ने फिर से खटखटाहट की—इस बार सांकल झटकारते हुए।

उस की भौंहें सिकुड़ीं। उस ने दरवाजे को ठेल कर देखा। वह खुलने लगा, भीतर से कुण्डी नहीं लगी थी। आशंकित हृदय से वह भीतर घुसा। कोई नहीं था। उस ने ध्यान दिया कि फर्श पर काफी धूल जम गई है और उस में स्वयं के भीतर आने के पद-चिह्न बन गए हैं। मुकुन्द बाहर जाने के कोई पद-चिह्न न देख सका। 'याने माँ बेटी आज न बाहर गई हैं, न भीतर रही हैं।' उस ने निष्कर्ष निकाला।

शाम ढल रही थी। धूप साफ थी। वह सामने का परदा हटा खिड़की के पास पहुंचा। ज्यों ही खिड़की खुली, धूप का तिरछा भाग कमरे में तन गया। खिड़की की तीन सलाखों की परछाइयों से, धूप का वह लम्बा चार भागों में बंटा हुआ था। फर्श पर फैली धूल एक जगह कुछ काली और जमी हुई सी लगी। मुकुन्द ने जूते की नोक से उस भाग को कुरेदा। खाली धूल के निशान। उस की आंखें पहले कुछ फैलीं, फिर सिकुड़ गईं।

परदा हटा कर वह रसोईघर में गया। वहां की हर चीज यथास्थान रखी हुई थी। याने लुटेरे नहीं आए थे। आए हुए होते तो चीजों को जरूर उलटते-पलटते। फिर मुकुन्द अपने पर ही खिझा, 'कैसा मूर्ख हूं मैं! इस घर में है ही क्या? लुटेरे कंगालों को लूटने नहीं आया करते।' बाहर से उस का घोड़ा हिनहिनाया। परदा हटा कर वह रसोईघर से कमरे में निकल आया।

दरवाजे में एक बूढ़ा खड़ा था, [illegible] पर [illegible] उदास चेहरा लटकाए। मुकुन्द ने उसे पहले कभी नहीं देखा था। वह उस की ओर बढ़ा। "कौन है भाई?" यह पूछने की आवश्यकता थी कि वही सवाल उस से पूछा जा चुका था।

"मैं, मैं? मैं एक सैनिक हूं। [illegible]..."

[illegible] है, [illegible] नहीं, [illegible] है, [illegible] हूं।' [illegible]
[illegible]

करीब आ गया था। बूढ़ा उस की आंखों में घूर रहा था, बिना पलकें झपकाए। उस की सफ़ेद दाढ़ी ने होंठों को घेर कर दोनों गाल छिपा लिए थे।

"शायद आप नाम जानना चाहते हैं। मुझे मुकुन्दराव कहते हैं। औरंगाबाद के मराठा दस्ते में नौकर हूं।" मुकुन्द को बूढ़े के रुख से क्रोध तो बहुत आया था, लेकिन वह उस की उम्र का लिहाज कर गया। बूढ़े से गुल और उस की मां का पता पाने की भी उसे आशा थी। बूढ़ा मुस्कराया। दाढ़ी और खरोंच देने वाली उस की आंखें मधुर हो उठीं, "तो तुम आ पहुंचे। मेरे साथ चलो।"

दोनों बाहर निकले। बूढ़े ने दरवाजे को यों ही बन्द कर दिया, बिना बाहर की सांकल चढ़ाए। मुकुन्द ने देखा, फिर से उस का चेहरा कठोर हो गया था। वह कह रहा था, "मैं इस घर का मालिक हूं। गुल मेरी किराएदारिन थी।"

"थी?" मुकुन्द के पैर थम गए। बासी खून का वह दाग...

बूढ़ा खोखली मुस्कान मुस्कराया, "हो सकता है, वह जिंदा हो, हो सकता है, न हो। इसी से मैं ने 'थी' कहा।"

मुकुन्द ने झपट कर उस के दोनों कन्धे पकड़े और पूरी ताकत से हिलाते हुए बोला, "उसे क्या हुआ? जल्दी कहिए, क्या हुआ?" उस का स्वर फट रहा था।

"सुन सकोगे?" बूढ़े की मुस्कान गायब हो गई, "कुछ लोग उसे उठा ले गए।"

मुकुन्द को लगा, वह खड़ा न रह सकेगा। बहुत देर तक वह सुन्न बना रहा। उस की आंखों में खौलते आंसू उभरे। पलकें झुलसीं। उस ने बोलने की कोशिश की तो आवाज गले में रुंध गई। उस ने फिर से कोशिश की, "कब?"

"परसों रात, लगभग दस बजे।" बूढ़े ने आगे चलते हुए कहा।

"वे कौन थे?"

"मैं नहीं पहचान सका।" बूढ़ा सामने के मकान में प्रवेश कर चुका था और मुकुन्द की ओर देखे बिना कह रहा था, "मेरी आंखें बहुत कमजोर हैं, रतौंधी और मोतियाबिन्द दोनों का बीमार हूं। हां, वे लोग घुड़सवार थे, इतना मैं अवश्य कह सकता हूं।"

मुकुन्द को याद आया कि बूढ़े ने कहा था, वे गुन को उठा ले गए—याने वह जीवित होनी चाहिए। वे लाश को थोड़े ही ले जाते। वैसे गुल इतनी खूबसूरत थी कि उस की लाश भी···सिहर गया मुकुन्द। अपनी बीवियों से दूर, मौत के खौफनाक साए में, मरने या मारने का लगातार इन्तजार करते सैनिक—विशेष कर मुगल सैनिक—कई बार अत्यधिक कामुक हो उठते थे। इन सैनिकों को घर-बार छोड़ कर निकले बरसों गुजर चुके थे। जितनी स्त्रियां भोगी जा सकें, भोग लो, न जाने कब मौत का बुलावा आ जाए—ऐसी मनोवृत्ति उन में पैदा हो गई थी, जो स्वाभाविक भी थी। मराठों के छापामार युद्ध करने वाले दलों की देखादेखी मुगल दल भी छापे मारना सीख गए थे और हालांकि शिवाजी-औरंगजेब में सन्धि हो चुकी थी, मुगलों के छापे पड़ना कोई अनहोनी बात नहीं थी। मराठों में इतनी भूख नहीं थी। युद्ध के लिए उन्हें लम्बे अरसे तक घर-बार छोड़ने नहीं पड़ते थे। बीच-बीच में छुट्टियां ले कर वे वैवाहिक जीवन बिता आते थे। धर्म तथा कर्तव्य में आस्था उन्हें खुले व्यभिचार से रोकती थी। वैसे वे भी, दूध के धुले हों, ऐसी बात नहीं थी।

मुकुन्द दीवार का सहारा ले कर खड़ा हो गया था। बूढ़े ने उसे एक कुर्सी पर बिठाया। दूसरी कुर्सी पर खुद बैठा और कहा, "तुम देख सकते हो, यहां से गुल का मकान ठीक सामने पड़ता है। मैं अक्सर यहां बैठ कर उधर देखा करता था। परसों रात दस बजे के करीब मैं किसी शोर के कारण जाग गया। बहुत कम दिखाई पड़ रहा था, फिर भी मैं बाहर निकला। मैं ने कुछ घोड़ों को भागते देखा। मैं ने गुल की चीख को पहचाना। वह चीख घोड़ों के साथ दूर चली गई। मैं ने अपनी पुत-

करीब आ गया था। बूढ़ा उस की आंखों में घूर रहा था, बिना पलकें झपकाए। उस की सफेद दाढ़ी ने होंठों को घेर कर दोनों गाल छिपा लिए थे।

"शायद आप नाम जानना चाहते हैं। मुझे मुकुन्दराव कहते हैं। औरंगाबाद के मराठा दस्ते में नौकर हूं।" मुकुन्द को बूढ़े के रुख से क्रोध तो बहुत आया था, लेकिन वह उस की उम्र का लिहाज कर गया। बूढ़े से गुल और उस की मां का पता पाने की भी उसे आशा थी। बूढ़ा मुस्कराया। दाढ़ी और खरोंच देने वाली उस की आंखें मधुर हो उठीं, "तो तुम आ पहुंचे। मेरे साथ चलो।"

दोनों बाहर निकले। बूढ़े ने दरवाजे को यों ही बन्द कर दिया, बिना बाहर की सांकल चढ़ाए। मुकुन्द ने देखा, फिर से उस का चेहरा कठोर हो गया था। वह कह रहा था, "मैं इस घर का मालिक हूं। गुल मेरी किराएदारिन थी।"

"थी ?" मुकुन्द के पैर थम गए। बासी खून का वह दाग...

बूढ़ा खोखली मुस्कान मुस्कराया, "हो सकता है, वह जिंदा हो, हो सकता है, न हो। इसी से मैं ने 'थी' कहा।"

मुकुन्द ने झपट कर उस के दोनों कन्धे पकड़े और पूरी ताकत से हिलाते हुए बोला, "उसे क्या हुआ ? जल्दी कहिए, क्या हुआ ?" उस का स्वर फट रहा था।

"सुन सकोगे ?" बूढ़े की मुस्कान गायब हो गई, "कुछ लोग उसे उठा ले गए।"

मुकुन्द को लगा, वह खड़ा न रह सकेगा। बहुत देर तक वह सुन्न बना रहा। उस की आंखों में खौलते आंसू उभरे। पलकें झुलसीं। उस ने बोलने की कोशिश की तो आवाज गले में रुंध गई। उस ने फिर से कोशिश की, "कब ?"

"परसों रात, लगभग दस बजे।" बूढ़े ने आगे चलते हुए कहा।

"वे कौन थे ?"

"मैं नहीं पहचान सका।" बूढ़ा सामने के मकान में प्रवेश कर चुका था और मुकुन्द की ओर देखे बिना कह रहा था, "मेरी आंखें बहुत कमजोर हैं, रतौंधी और मोतियाबिन्द दोनों का बीमार हूं। हां, वे लोग घुड़सवार थे, इतना मैं अवश्य कह सकता हूं।"

मुकुन्द को याद आया कि बूढ़े ने कहा था, वे गुल को उठा ले गए—याने वह जीवित होनी चाहिए। वे लाश को थोड़े ही ले जाते। वैसे गुल इतनी खूबसूरत थी कि उस की लाश भी'''सिहर गया मुकुन्द। अपनी बीवियों से दूर, मौत के खौफनाक साए में, मरने या मारने का लगातार इन्तजार करते सैनिक—विशेष कर मुगल सैनिक—कई बार अत्यधिक कामुक हो उठते थे। इन सैनिकों को घर-बार छोड़ कर निकले बरसों गुजर चुके थे। जितनी स्त्रियां भोगी जा सकें, भोग लो, न जाने कब मौत का बुलौवा आ जाए—ऐसी मनोवृत्ति उन में पैदा हो गई थी, जो स्वाभाविक भी थी। मराठों के छापामार युद्ध करने वाले दलों की देखादेखी मुगल दल भी छापे मारना सीख गए थे और हालांकि शिवाजी-औरंगजेब में सन्धि हो चुकी थी, मुगलों के छापे पड़ना कोई अनहोनी बात नहीं थी। मराठों में इतनी भूख नहीं थी। युद्ध के लिए उन्हें लम्बे अरसे तक घर-बार छोड़ने नहीं पड़ते थे। बीच-बीच में छुट्टियां ले कर वे वैवाहिक जीवन बिता आते थे। धर्म तथा कर्तव्य में आस्था उन्हें खुले व्यभिचार से रोकती थी। वैसे वे भी, दूध के धुले हों, ऐसी बात नहीं थी।

मुकुन्द दीवार का सहारा ले कर खड़ा हो गया था। बूढ़े ने उसे एक कुर्सी पर बिठाया। दूसरी कुर्सी पर खुद बैठा और कहा, "तुम देख सकते हो, यहां से गुल का मकान ठीक सामने पड़ता है। मैं अक्सर यहां बैठ कर उधर देखा करता था। परसों रात दस बजे के करीब मैं किसी शोर के कारण जाग गया। बहुत कम दिखाई पड़ रहा था, फिर भी मैं बाहर निकला। मैं ने कुछ घोड़ों को भागते देखा। मैं ने गुल की चीख को पहचाना। यह चीख घोड़ों के साथ दूर चली गई। मैं ने अपनी दृष्-

वधू को जगाया। दीया ले कर हम दोनों गुल के मकान में घुसे। सामने उस की मां की लाश पड़ी थी। पेट में कटार मारी गई थी। तुम ने अभी जो खून का दाग देखा था, वह उसी का था। गुल की चीख सुन कर कोई भी पड़ोसी बाहर नहीं आया था। सब का खून सफेद हो गया है...''

मुकुन्द ने थूक निगला।

''मेरी पुत्रवधू बहुत डर गई। कल मुझे उसे उस के मायके पहुंचाना पड़ा। उसे शक था, उसे भी कोई उठा ले जाएगा। ले जाने वाले उसे मायके से भी ले जा सकते हैं, लेकिन... खैर...मैं चार साल से विधुर हूं। मेरा बेटा रायगढ़ में सैनिक है और कभी-कभी यहां आता है। पुत्र-वधू के जाने के बाद अब मैं बिल्कुल अकेला हूं। मर जाऊंगा तो बदबू आने पर ही लाश उठेगी...''

'तन के राक्षस को खुराक दे कर हो सकता है, घुड़सवारों ने गुल को मार डाला हो।' मुकुन्द सोचता रहा, 'बलात्कारों की निशानी जीवित रखना वे प्रायः ठीक नहीं समझते। लेकिन यह भी हो सकता है, वह जिंदा हो। हत्या करने की बजाय कई बार लड़कियों को किसी गुप्त स्थान में रख कर...आह! इस से तो अच्छा है, गुल मर ही गई हो।'

''गुल रोज तुम्हारा नाम रटती थी। मैं ने तुम्हें दूर से देखा था, लेकिन चेहरा पहचान नहीं पाया था। मैं ने कहा न, मेरी आंखें जवाब दे रही हैं...'' बूढ़ा बुदबुदा रहा था और मुकुन्द गुल की याद के उबलते लावे में डूब गया था।

जब वह उस बूढ़े के घर से बाहर आया तो रात हो चुकी थी। घोड़े की लगाम थाम कर वह चलता रहा। वह प्यासा हो चला था लेकिन पानी पीने की इच्छा नहीं थी। गुल को कितनी अच्छी ख[बर] सुनाने आया था वह! उसे समेट कर वह चार होंठों के दो होंठ [कर] देता, फिर कहता, 'रानी, अब ब्याह के लिए तैयार हो जाओ। [मैं] येसूबाई का अंगरक्षक बन गया हूं। कुछ दिनों में पन्हाला पहुंच कर

सम्हालूंगा। तुम्हें लेने खुद आऊंगा मैं।' गुल कितनी खुश होती !

'शायद गुल को औरंगाबाद के सैनिक ले गए हों। जा कर पता लगाऊं।' यह विचार उस के मन में आया, लेकिन अगले ही क्षण इस का खोखलापन जाहिर हो गया। अपहृत लड़कियों का पता आसानी से नहीं लगता था क्योंकि बात खुलने पर सेना के अधिकारी उन्हें अपने उपयोग के लिए छीन लेते थे और अपहरण का खतरा मोल लेने वाले सैनिक हाथ मलते रह जाते थे। मुकुन्द सम्भाजी का प्रिय सैनिक था जिस से उसे 'अधिकारियों का आदमी' समझा जाता था। यदि गुल औरंगाबाद के सैनिकों के पंजे में है, तो कम-से-कम मुकुन्द को तो उस का पता लग नहीं सकता था। फिर इस का भी क्या तय कि वह औरंगाबाद में ही है ? मुगलों के छोटे-छोटे दस्ते जगह-जगह रखे गए थे। कौन-सा दस्ता उसे कहां ले गया होगा, कैसे जाना जा सकता था ?

हार कर मुकुन्द ने गुल के बारे में कुछ भी न सोचने का फैसला किया, लेकिन मन का अड़ियल घोड़ा बार-बार उसी पगडण्डी पर चलने लगता, 'गुल'''मान लो वह औरंगाबाद में है'''और यह भी मान लो कि मैं उसे ढूंढ लेता हूं। लेकिन ढूंढ कर मैं क्या करूंगा ? मैं अच्छी तरह जानता हूं उसे। अब वह अपने को मेरे लायक न समझती होगी। देख कर भी वह मुझे पहचानने से इन्कार कर जाएगी। उसे ढूंढ कर मैं अपने लिए आग ही बटोरूंगा। मन पहले से धधक रहा है'''नई आग मुझे पागल कर देगी'''मुझे गुल को मर चुकी समझ लेना चाहिए। उसे सैनिकों ने न मारा होगा, तो भी कहीं वह आत्महत्या न कर चुकी हो'''

कसबा काफी पीछे छूट गया था। वह पैदल ही दूर तक निकल आया था। चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था। मुकुन्द को अच्छा लगा। दुःख के आवेग में वह जोर से हंसा और चिल्लाया, "गुल मर गई ! गुल मर गई।" आवाज दूर-दूर तक तिरी। जंगल में उस की धुंधली प्रतिध्वनि भी उठी। मुकुन्द चौंका, फिर चुप हो गया—मानो गूंगा ही पैदा हुआ हो।

3

शाहजादा मुअज्जम और राजकुमार सम्भाजी खिलखिला पड़े। सम्भाजी ने दाद देते हुए कवि कलश की ओर देखा, "गुरुदेव, आप ने यह नई कल्पना किस आधार पर की ?"

कलश बनावटी गम्भीरता से बोला, "हमारे पुराणों में इस के अनेक उदाहरण हैं। इन्द्र के पास हजारों अप्सराएं हैं, जिन के साथ वह स्वच्छंदता से रमण करता होगा। कभी कोई अप्सरा गर्भवती नहीं होती। ठीक विपरीत, जब भी कोई अप्सरा पदच्युत हो कर पृथ्वी पर आती है, ऋषि या राजा से अवश्य पुत्रवती होती है। देवताओं को यदि मैं नपुंसक मानूं तो कहां तक गलत हूं ?"

"जी नहीं, आप बिल्कुल गलत नहीं हैं।" शाहजादा मुअज्जम हंसा, "लेकिन बताइए, आप अपने-आप को ऋषि मानते हैं या राजा ?"

"अगर आप का मतलब अप्सराओं को पुत्रवती करने से है तो मैं राजा भी हूं और ऋषि भी। जब जैसा रूप धारण करना पड़ जाए, चलेगा। आप अपने को क्या मानते हैं ?"

"केवल शाहजादा।"

"आप फायदे में हैं। सल्तनत की फिक्र बादशाह करते रहें, आप शाहजादा होने की मुहब्बत लूटिए और ज्यादा-से-ज्यादा अप्सराओं को..."

वाक्य अधूरा ही छोड़ कर कवि कलश शराब ढालने लगा।

सम्भाजी ने कहा, "आप पीजिए। मैं पर्याप्त पी चुका हूं, और नहीं।"

"पिएंगे कैसे नहीं ? मेरे शिष्य होने के नाते आप को मुझ से भी ज्यादा पीनी चाहिए। शिष्य गुरु से सवाए होते हैं, इस पर मेरा पूरा विश्वास है।" कलश ने सम्भाजी की ओर प्याला बढ़ा दिया, "पद में भी आप मुझ से ऊंचे हैं। मैं ठहरा अदना कवि। प्रयाग का कान्यकुब्ज

ब्राह्मण राजनीति में उतर आया, यह विधि का चमत्कार ही तो कहा जाएगा ? लेकिन आप का जन्म ही राजघराने में हुआ है—शिवाजी महाराज के ज्येष्ठ पुत्र श्रीयुत सम्भाजी महाराज ! आप न पिएंगे तो कौन पिएगा ?"

सम्भाजी ने मुस्करा कर प्याला थाम लिया।

कवि कलश का मूल नाम केशवभट्ट कावजी था। कलश उस की उपाधि थी। भाग, शराब तथा औरत, ये तीन उस की कमजोरियां थीं और संस्कृत का पांडित्य एक मात्र विशेषता।

शिवाजी को औरंगजेब ने आगरा में जब नजरबन्द किया था, तो साथ मे सम्भाजी भी था। मिठाई की टोकरियों में बैठ कर ये दोनों जब उस कैद से बाहर आए, तो शिवाजी को लगा कि केवल नौ वर्ष का सम्भाजी कोंकण तक का लम्बा सफर लगातार घुड़सवारी से न कर पाएगा। उन्होंने उसे मथुरा के पण्डितों के संरक्षण में छोड़ा और स्वयं कोंकण की ओर रवाना हो गए। इन पण्डितों ने डोली, नौका आदि आरामप्रद वाहनों से सम्भाजी को रायगढ़ पहुंचाया। संयोगवश कवि कलश प्रयाग से मथुरा आया हुआ था। यहीं उस का सम्भाजी से परिचय हुआ। सम्भाजी उसे अपने साथ रायगढ़ ले आया। उस की विद्वत्ता से प्रभावित हो कर शिवाजी ने उसे सम्भाजी का शिक्षक नियुक्त कर दिया।

मुअज्जम का प्याला लबालब भर कर सम्भाजी ने कहा, "आप पुरुरवा और उर्वशी की कहानी जानते हैं ?" मुअज्जम ने नकार में सिर हिलाया।

"बड़ी मजेदार कहानी है। उर्वशी हिन्दुओं के देवताओं के राजा इन्द्र की हसीन अप्सरा थी। एक बार वह राक्षसों के पंजे मे फंस गई, लेकिन पुरुरवा नामक राजा ने उसे बचा लिया। दोनों में प्यार हो गया..."

कलश ने जल्दी से घूंट निगला और कहा, "प्यार याने इश्क,

मुहब्बत। बड़ी खौफनाक मुहब्बत थी, दोनों एक-दूसरे के अन्दर घुस गए। हा हा हा! सम्भाजी, 'शतपथ ब्राह्मण' का वर्णन तो याद है न? पुरुरवा उर्वशी को नहाते देख कर कहता है कि हम दोनों विवाह कर एक-दूसरे को भोगें, बरसों तक रमण करें···आहा···बरसों तक···" हिचकी ने उस का वाक्य तोड़ दिया। उस ने शराब का नया घूंट भरा।

सम्भाजी ने शाहजादे की ओर देखते हुए कहानी आगे चलाई, "उर्वशी की शर्त थी कि अगर उस ने पुरुरवा को नग्न··· नग्न याने नंगा···देख लिया तो वह स्वर्ग वापस चली जाएगी।"

मुअज्जम ने दिलचस्पी ली, "तब तो बेचारा पुरंवा कपड़े पहन कर···"

"अजी नहीं, अंधेरे में कपड़े पहनने की क्या जरूरत है।" सम्भाजी ने उत्तर दिया, "खैर···उर्वशी की एक और शर्त थी। वह हर समय भेड़ के दो बच्चे अपने साथ रखती थी···'हर समय' का मतलब समझ गए न?"

"याने पुरंवा और उर्वशी के साथ भेड़ के बच्चे सोते थे? गजब! वे नर-मादा तो नहीं थे?"

"मुअज्जम के इस मजाक पर कवि कलश इतना हंसा कि आसन से नीचे लुढ़क गया। सम्भाजी ने उसे सहारा दे कर ऊपर बिठाया और कहा, "एक बार रात के वक्त कुछ गंधर्व दो में से एक बच्चा चुरा ले भागे। उर्वशी चीखी। पुरुरवा गंधर्वों के पीछे दौड़ा। देवताओं ने रोशनी कर दी।"

"तब उर्वशी ने पुरंवा को नंगा देख लिया?"

"हां, और वह तुरन्त स्वर्ग वापस चली गई।"

"ये देवता शुरू से कमीने रहे हैं।" कलश प्रसन्नता के आवेग में उठा और लड़खड़ाने लगा। नशे की झोंक में उसें औरतें याद आ गईं और वह मुस्कराने लगा। बोला, "शाहजादे की इजाजत हो तो हिक्··· हम संस्कृत का एक शेर हिक्···सुनाएं।"

"क्यों नहीं।"

"सुनिए," कलश लड़खड़ाती जबान सम्हालने की पूरी कोशिश कर रहा था, "हिक्...मृद्वंगी कठिनौ, तन्वि पीनौ, सुमुखि दुर्मुखौ...प्रतएव बहिर्यातौ हृदयात्ते पयोधरौ...हिक्...."

"यह कैसा शेर हुआ? हमारी समझ में तो कुछ नहीं आया।" मुअज्जम ने कहा।

"संस्कृत के शेर जल्दी समझ में नहीं आते, पर हिक्... मैं आप को समझाऊंगा। आप स्तन का मतलब समझते हैं?"

"हां, आप के मुंह से रोज सुनता हूं।"

शाहजादे के व्यंग्य पर सम्भाजी मुस्कराया। शिष्य और गुरु का सम्बन्ध लम्बे अरसे से गौण हो चुका होने के कारण कलश को भी झेंपने की आवश्यकता नहीं थी। उस ने कहा, "इस शेर उर्फ श्लोक में स्तनों के बारे में एक लाजवाब हिक्...बात कही गई है। सुनिए, शायर कहता है कि हिक्...तुम्हारा शरीर कोमल है लेकिन ये स्तन कठोर हैं, तुम छरहरी हो लेकिन ये भरे हुए हैं, तुम सुमुखी याने हसीन हो लेकिन ये दुर्मुख हैं...यहां पर हिक्...शाहजादा-ए-आलम गौर फरमाएं कि दुर्मुख का मतलब बदसूरत नहीं है। भला दुनिया की सब से हसीन हिक्...चीज को...हिक् बदसूरत कैसे कहा जा सकता है...यहां दुर्मुख से मतलब है दो मुंह वाले...हिक्...हा हा !...हिक्... हा हा हा ! हां, तो नाजुकखयाली देखिए कि तुम्हारे में और तुम्हारे स्तनों में किसी प्रकार का मेल नहीं है। इसी से खुदा ने इन दोनों को तुम्हारे दिल में से बाहर उभार दिया है।"

"माफी... माफी..." मुअज्जम उछल पड़ा।

कदाचित् 'शायरी' का यह दौर और आगे चलता लेकिन उसी समय एक अनुचर ने प्रवेश किया और विनम्र स्वर में कहा, "पन्हाला से दूत आया है। राजकुमार सम्भाजी से मिलना चाहता है।"

सम्भाजी को यह रंग में भंग चुभ गया। बोला, "कह दो,

नहीं होता। जी चाहता है, उस की गोद में सिर डाल कर गहरी नींद ले लूं—बस। परन्तु इतने से ही सन्तोष कहां मिलता है ? सस्तेपन के लिए मुझे सस्ती औरतें ढूंढ़नी पड़ती हैं।' इस निष्कर्ष के फल में उसे कभी-कभी एक गुलगुली, घिनौनी इल्ली दिखाई पड़ती लेकिन तुरन्त वह उसे दूर छिटका देता और सोचता, 'मुझे येसू के साथ अन्याय नहीं करना चाहिए।'

फेंकी गई वह इल्ली उस फल को फिर से खोज ही लेती। कवि कलश और मुअज्जम इल्ली को रास्ता दिखाते···वह रहा फल···उधर रहा फल···

सम्भाजी तेजी से पत्र पढ़ गया। संक्षिप्त लेकिन मधुर पत्र···'मैं बीमार हूं···मरने वाली हूं ऐसी हालत तो नहीं है, ठीक ही हूं ; चिन्ता न करिएगा···लेकिन क्या आप आ नहीं सकते ?···दो-एक ही दिनों के लिए ?···आप की दासी, येसू···'

"गुरुदेव," सम्भाजी ने कलश की ओर देख कर कहा, "है तो बुलौवा।"

"येसूबाई का ?"

"हां ! आप ने कैसे जाना ?"

"पढ़ते समय आप के चेहरे के भाव छिपे न रह सके थे। फिर ? अब क्या इरादा है ?" कलश ने दूत को इशारे से बाहर भेज दिया और कान में फुसफुसाते हुए कहा, "मत जाइएगा। बुलबुल बहुत बढ़िया है।'

सम्भाजी की भौंहें उठीं। कपार पर रेखाएं बन आईं।

"बहाना कर दीजिए कि इन दिनों बीजापुर पर हमले की योजन बन रही है। नहीं आ सकता।"

"लेकिन गुरुदेव, वह बीमार है।"

"बीमार-बीमार कुछ नहीं है। इन औरतों की यह आदत हो है।"

"आप उसे नहीं पहचानते।"

"किसी भी औरत को पहचानने की जरूरत नहीं होती, उसे तो…" कहते-कहते कलश रुक गया, क्योंकि बात इस समय मेजुबाई की हो रही थी। बोला, "तबीयत तो नरम-गरम चलती ही रहती है। क्या लिखा है उस ने ? बहुत बीमार है ?"

"नहीं, ऐसा तो नहीं लिखा, लेकिन हो सकता है, सचमुच ज्यादा बीमार हो।"

"मतलब यह कि आप जाना चाहते हैं।"

"काफी अरसे से नहीं मिला हूं। उस का भी तो कोई मन होता है।"

"अ…तो ऐसा करिए, आज ही रवाना होने की बजाय कल या परसों जाइए।"

"क्यों ?"

"भूल गए ? मैं ने अभी-अभी तो आप को बताया था। एक नया बुलबुल फंसा है।"

"नए बुलबुल तो आप रोज फांसते हैं।"

"लेकिन आप ने ऐसा कभी न देखा होगा। उसे आज की रात आप रखिए। यदि रुक सकें तो कल की रात भी रखिए। उस के बाद वह मेरा या शाहजादे का होगा।"

"नहीं गुरुदेव, इस बार मैं न रुकूंगा। हां, जल्दी वापस आने का वादा अवश्य कर सकता हूं।"

"वेश्याओं और राजकुमारों के वादे प्रायः झूठे होते हैं। और… जाने वाले को कोई नहीं रोक सकता। जाइए…शौक से जाइए।" कलश व्यंग्यात्मक हंसी हंसा।

[illegible] को बुरा लगा। सन्यासी का पत्र लेता हुआ बोला, "कई बार बुजुर्गों को भी नहीं मालूम होता कि कब हंसना चाहिए, कब नहीं।"

कलश कट तो गया, लेकिन हंसता रहा। हां, अन्दर का मन [illegible]

उसे अवश्य टालना पड़ा।

सम्भाजी ने जोर से पुकारा, "दूत !"

दूत भीतर आया।

"तेजी से वापस जाओ। सूचना दो कि हम आज ही शाम को रवाना होंगे।"

"'और एकाएक ही सम्भाजी को अपनी मां की याद आ गई''' सईबाई निम्बालकर—छत्रपति शिवाजी की पहली पत्नी'''मां सईबाई, जो सम्भाजी को दो ही वर्षों का छोड़ कर चल बसी थी'''सचमुच यह एक गुत्थी ही थी कि जब भी सम्भा को पत्नी की याद आती, साथ-साथ''' सहसा उस ने येसू से मिलने की अपनी आकांक्षा को और तीव्र होते अनुभव किया'''



"वह कैसे हैं ?" मुकुन्द ने ज्यों ही येसूबाई के कक्ष में प्रवेश किया था, पहला सवाल यही पूछा था उस ने। मुकुन्द सिवा इस के क्या कहता कि बिल्कुल ठीक हैं, हर तरफ से ठीक हैं। उस ने येसूबाई की ओर मुस्कराते हुए देखा था। कितना मासूम और समझदार चेहरा ! उफ़, अठारह साल की उन आंखों में न जाने ऐसा क्या था जो मुकुन्द को हिला गया। उसे लगा, अगर वह कुछ देर और सामने खड़ा रहा, तो सच्चाई को गुप्त न रख सकेगा। अनुमति ले कर वह बाहर निकल आया। आज अंगरक्षक का पद सम्भाले पहला ही दिन है। नहीं। पहले ही दिन सभी बातें कह कर वह येसूबाई का दिल नहीं दुखाएगा।

औरंगाबाद से भेजते समय सम्भाजी ने किसी को कोई बात न

बताने का वचन मुकुन्द से लिया तो था, लेकिन मुकुन्द के लिए इस का विशेष मूल्य नहीं था। 'दो-तीन दिन बाद मौका देख कर बताऊंगा,' सोचता हुआ वह अपने कमरे की ओर बढ़ा, जहां दो चाकर सफाई करने में लगे हुए थे।

कमरा! अब यहां कभी गुल की खिलखिलाहट न गूंजेगी। उदास मन से वह दरवाजे पर खड़ा हो गया और सफाई होते देखता रहा। 'सफाई न हो तो भी क्या अन्तर आएगा? किस के लिए हो रही है सफाई? मेरे लिए? मेरा क्या? मैं जंगल में कांटों पर सोने वाला इन्सान! साफ फर्श और कोमल बिछौना क्या अंगारों की तरह दहकता न लगेगा? उस पर अब मैं आजीवन अकेला सोऊंगा!'

उसे याद आया, एक दिन आवेश में उस ने गुल के शरीर को जरूरत से ज्यादा समेटने की कोशिश की थी तो वह तड़प कर अलग हो गई थी और बोली थी, "अभी नहीं। आगे बढ़ते जाएंगे तो कोई सीमा थोड़े ही है।" और मुकुन्द जबर्दस्ती न कर पाया था। मानो अपना अपराध स्वीकार कर रहा हो, इस तरह बोला था वह, "ठीक कहती हो, गुल! मुझे माफ कर दो।" गुल ने मुस्करा कर उस के बालों में उंगलियां फेरी थीं, "माफी कैसी? बल्कि माफी तो मुझे मांगनी चाहिए जो तुम्हारी चीज तुम्हें नहीं दे रही।"

'वही गुल...अगर वह जिंदा है...हो सकता है, इस समय वह लाचारी से किसी को समर्पित हो रही हो—कइयों को हो चुकी हो और कइयों को होने वाली हो...उफ्!...और मैं यहां खड़ा हूं! अपने कमरे की सफाई कराता हुआ!'

मुकुन्द दूर हट गया। न हटता तो शायद किसी पर झल्लाता हुआ चीख पड़ता।

उस ने सामने से हीरोजी को आते देखा। परन्तु वह अदब के साथ झुका और नम्रता से बोला, "नमस्कार करता हूं।"

"नमस्कार" हीरोजी, औपचारिकता से मुस्कराया और बोला,

"कहो, औरंगाबाद से आने में कष्ट तो नहीं हुआ ?"

"कष्ट कैसा, महानुभाव ?" हीरोजी की वाणी मुकुन्द को गूढ़ मालूम पड़ी।

हीरोजी हंसा, "मैं ने सुना है, औरंगाबाद बहुत रंगीन शहर है। जो वहां पहुंचता है, वहीं का हो जाता है।"

मुगल शिविर के रागरंग की ओर इशारा किया गया था, यह समझते मुकुन्द को देर न लगी। सम्भाजी के मौज-शौक में फंस जाने के समाचार यहां पहुंच चुके हैं क्या ? येसूबाई का पहला सवाल 'वह कैसे हैं ?' और हीरोजी की यह गूढ़ वाणी···

मुकुन्द भोला बनता हुआ बोला, "मैं आप का मतलब नहीं समझा।"

हीरोजी ने रहस्यमयता से आंखें चमकाईं, "वहां बड़े-बड़े वीरों को दुहा जाता है। कोमल उंगलियों से ! सफेद दूध ! तुम्हें अनुभव नहीं क्या ?"

शब्दों की प्रच्छन्न वीभत्सता ने मुकुन्द को कंपा दिया। हीरोजी का ऐसा लट्ठमार रूप उस ने पहले कभी नहीं देखा था।

शिवाजी का प्रिय सभासद व सेनाधिकारी होने के कारण हीरोजी काफी रोबदाब से रहता था और नीचे के पदाधिकारियों से बहुत आवश्यक होने पर ही बात करता था—कम-से-कम शब्दों में। औरों की तुलना में मुकुन्द के साथ वह कम औपचारिकता बरतता था लेकिन इतनी खुली बात उस के मुंह से सुन कर मुकुन्द आश्चर्य में डूबे बिना न रह सका। हीरोजी के मन का कौन-सा गुबार इस रूप में प्रकट हुआ था ?

हीरोजी गलियारा पार कर के एक मोड़ की ओट में हो चुका था। किसी अज्ञात प्रेरणा से मुकुन्द उस के पीछे-पीछे गया। मोड़ पार करने पर उस ने हीरोजी को एक और मोड़ की ओट में होते देखा। उधर सोयराबाई का कक्ष था। शिवाजी की सब से नई रानी सोयराबाई,

राजकुमार सम्भाजी की सौतेली मां और येसूबाई की सौतेली सास।

मुकुन्द ने उस मोड़ को भी पार किया। सोयराबाई के कक्ष के बाद भण्डार-गृह था। जेब में चाबी है या नहीं, यह टटोल कर मुकुन्द सावधानी से आगे बढ़ा। सोयराबाई के खुले दरवाजे पर परदा लटक रहा था। सामने दो मावल दासियां नंगी तलवारें ताने खड़ी थीं। उन्होंने फूहड़ता से मुकुन्द को अभिवादन किया। मुकुन्द ने लापरवाही से जवाब दिया और भण्डार-गृह का ताला खोलने लगा, कम-से-कम खड़खड़ाहट के साथ। हीरोजी गलियारे में नहीं था। गलियारा भण्डार-गृह के बाद समाप्त होता था। हालांकि मुकुन्द के पास कोई ठोस कारण नहीं था लेकिन पता नहीं क्यों उसे लग रहा था कि सोयराबाई और हीरोजी में कोई साठगांठ हो रही है। अंगरक्षक का पद सम्भाले अभी कुछ ही घण्टे हुए थे और मुकुन्द शंकालु स्वभाव का हो गया था, जो उसे अच्छा भी लगा और बुरा भी।

वह भण्डार-गृह में घुसा और अपने लिए थाली, लोटे, गिलास आदि चुनने का बहाना बनाता हुआ बगल के कमरे की बातचीत सुनने का प्रयास करने लगा। महल की मोटी दीवारों से कोई भी आवाज नहीं छन रही थी। मुकुन्द ने सामने की खिड़की खोली। हवा का झोंका भीतर आया'''साथ-साथ फुसफुसाहट के स्वर'''मुकुन्द ने कान लगाए।

सोयराबाई के कमरे की खिड़की, जो इस खिड़की के पास ही थी, खुली हुई थी। सोयराबाई कुछ कह रही थी, हीरोजी हुंकारी दे रहा था। हवा का अगला झोंका पूरा एक वाक्य बहा कर ले आया। यह हीरोजी का स्वर था, "शायद मुकुन्द हमारी ओर हो जाए'''" झोंका डूबा और अगला वाक्य भी डूब गया। काफी इंतजार के बावजूद न नया झोंका आया, न कोई वाक्य। ज्यादा देर रुकना मुकुन्द ने ठीक न समझा, बाहर निकल, झटपट ताला लगा वह तेजी से वापस लौट चला।

"सफाई हो चुकी? कितनी देर है?" अपने कमरे में आ कर उस ने चाकरों से पूछा।

"हो चुकी, हुजूर !" मुकुन्द का गोल लिपटा बिछौना मजबूत खाट पर खोलते हुए एक चाकर ने कहा।

"तुम जाओ, मैं लगा लूंगा।" मुकुन्द ने इनाम के दो सिक्के उन की ओर फेंके और विदा कर दिया। गद्दा ठीक से फैला कर चादर बिछाई और हथेली से सलवटें ठीक करने लगा।

'शायद मुकुन्द हमारी ओर हो जाए''' किस काम के लिए ?' विचारों के तार झनझना रहे थे, मुझे सांठगांठ का जो शक हुआ था, वह ठीक ही निकला'''कैसा षड्यन्त्र रचा जा रहा है ? किस के खिलाफ ?'

फिर शक का यह महल अचानक ढह गया। 'मैं भी खासा बेवकूफ हूं। एक वाक्य सुन लिया और सोच लिया कि षड्यन्त्र हो रहा है ! उस वाक्य में न तलवार की बात थी, न किसी के सिर की, न खजाने की, न गद्दी की। बात थी सिर्फ मुझे मिलाने की। किसी भी साधारण काम के लिए मेरी जरूरत पड़ सकती है और ऐसा वाक्य कहा जा सकता है। यदि मैं इसी तरह की अनर्गल बातें सोचता रहा तो दिमाग खराब होते देर न लगेगी।' वह अपने-आप पर कुढ़ रहा था, 'लेकिन अगर यह सब न सोचूंगा तो गुल के बारे में सोचने लगूंगा। दिमाग इस तरह भी खराब होगा और उस तरह भी।'

मुकुन्द चाहता था, किसी तरह उसे मालूम हो जाए कि गुल सचमुच मर गई है, जिस से उस के जिंदा होने की व्यर्थ आशा पैदा न हो। साथ-साथ वह यह भी चाहता था, किसी तरह उसे मालूम हो जाए कि गुल मरी नहीं है—जिंदा है, जिस से 'अब मैं उसे कभी नहीं देखूंगा', यह निराशा मन में घिरे ही न। अन्तिम रूप से क्या चाहता था मुकुन्द ?

कल की पूरी रात वह जागता रहा था। आज भी उसे नींद न आ सकी। जब पलकें और पुतलियां बुरी तरह दुखने लगीं तो वह अपना कमरा बन्द कर के बेवजह ही गलियारे में निकल आया। सूनी रात के

चमकदार चांद ने चारों ओर दूध छिटका दिया था। रात की पारी वाली सशस्त्र भील स्त्रियां दो-दो, चार-चार की टोलियों में आ-जा रही थीं।

गलियारे में बिछे याद के अंगारों पर नंगे पांव रखता हुआ मुकुन्द अपने कमरे में वापस आया और बिछौने पर ढह गया।

दूसरे दिन उस की नींद बहुत देर से खुल पाई जिस के लिए उसे सोयराबाई के सामने शर्मिन्दा होना पड़ा। जाग कर वह नित्य कर्मों से निपटा ही था कि एक सेविका ने आ कर कहा, "राजमाता आप की प्रतीक्षा कर रही हैं।"

तुरन्त वह सोयराबाई के कक्ष में पहुंचा। देखते ही वह बोली, "बहुत देर से उठे, मुकुन्द जी ?"

वह झेंप गया, "रात को ठीक से सो नहीं पाया था।"

"औरंगाबाद की रंगीनियां याद आ रही होंगी।"

किसी और के शब्द, किसी और के मुंह से ? मुकुन्द चौकन्ना हुआ, "जी ?"

"कुछ नहीं," सोयराबाई हंसी, "आओ, नाश्ता तैयार है।"

जमीन पर बिछाई गई आम की खाल के सामने दो पीढ़ों पर गुड़ के पानी में पके मीठे चावल छोटी थालियों में रखे हुए थे। उन में से लौंग की सौंधी खुशबू उठ रही थी। सेविका ने प्रवेश किया। नीबू का अचार रख कर वह चली गई। सोयराबाई और मुकुन्द पीढ़ों के सामने बैठे। मुकुन्द ने चावल छू कर देखे। इतने गरम नहीं थे कि कौर न भरा जा सके।

"देखो मुकुन्द, मैं तुम से बहुत जरूरी बातें करना चाहती हूं।"

मुकुन्द ने आंखें उठाईं। सोयराबाई ने पानी के गिलास रखने आई सेविका से कहा, "अब और कुछ नहीं चाहिए। अब न तुम भीतर आओ न किसी दूसरे को आने दो।"

"जो आज्ञा।" सेविका विदा हुई।

"मुकुन्द, तुम औरंगाबाद में खुद रह चुके हो। वहां सम्भाजी जैसा जीवन बिता रहा है, तुम से छिपा न होगा। न मुझ से ही छिपा है। गुप्तचरों से मुझे सारे समाचार मिलते रहे हैं। मैं सम्भाजी को वापस बुलाना चाहती हूं। अरे, केवल मीठा ही खाओगे क्या? लो, नीबू लो। हां, तो इस में मुझे तुम्हारे सहयोग की आवश्यकता है।"

मुकुन्द की आंखें चमकीं। "मैं प्रस्तुत हूं," कहते समय उसे कल चोरी से सुना हुआ वह वाक्य याद आ गया, जिस ने उस के मन में शंका के बादल पैदा कर दिए थे। तो बात षड्यन्त्र की नहीं थी, मराठा राजकुमार के उद्धार की थी!...

"सम्भाजी और येसूबाई में बहुत स्नेह है।"

"मैं जानता हूं।" कहते-कहते मुकुन्द रुका। 'स्नेह' शब्द सुनाई पड़ते ही गुल की याद बिजली की तरह उस के मन में लपलपा गई और वह केवल 'हुं,' कह पाया।

"येसूबाई कभी तैयार न होगी कि उस के पति को नजरबन्द किया जाए।"

मुकुन्द एकाएक चौंक पड़ा, "नजरबन्द?"

"हां, यह उस के पिता की आज्ञा है। कर्नाटक-विजय से लौटते समय उन्होंने यही सूचना भिजवाई है।"

"क्या महाराज शिवाजी पन्हाला नहीं आ रहे?"

"नहीं, वह रायगढ़ गए हैं। राजकुमार राजाराम भी उन के साथ वहीं जाएगा। हां, तो अभी येसू की बात चल रही थी। वह तुम्हारा काफी सम्मान करती है, ठीक है न?"

"उन की अनुकम्पा है।" मुकुन्द ने पानी का गिलास उठा कर मुंह से लगाया।

"तुम उसे किसी तरह समझाओ कि वह सम्भाजी को नजरबन्द हो जाने दे, कोई आपत्ति न उठाए।"

"मैं समझाऊं?"

"हां, तुम्हारे सिवा यह काम कोई और न कर पाएगा। इस प्रस्ताव को अगर मैं या हीरोजी रखेंगे तो येसू कदापि नहीं मानेगी। हम दोनों का स्वभाव तीखा है और मुझे मालूम है कि येसू हमें पसन्द नहीं करती। बल्कि कई बार तो लगता है, वह हमें दुश्मन समझे बैठी है। मन की बड़ी गहरी है। बाहर से भले ही मीठा-मीठा बोलती रहे, लेकिन भीतर का चोर पकड़ना हमें भी आता है। खैर...मतलब यह कि यह काम अब तुम्हारा है।

"मैं कोशिश करूंगा।" मुकुन्द को कहना पड़ा।

"सब से पहले तो सम्भाजी को औरंगाबाद से यहां बुलवाना है। यहां आने के लिए उसे येसू एक पत्र लिखे, अपनी बीमारी का बहाना करे। इस के बिना सम्भाजी औरंगाबाद छोड़ने का नहीं। रंगीन प्यार के धागे बहुत मजबूत होते हैं।"

"और यहां आते ही उन्हें नजरबन्द..."

"तुरन्त नहीं, पहले उसे सुधारने की कोशिश की जाएगी। अगर उसे सद्बुद्धि आ गई, तब तो ठीक, अन्यथा नजरबन्द करने के सिवा और चारा क्या है? यही उस के पिता का आदेश भी है।"

"राजकुमार का स्वभाव उग्र है। नजरबन्द करने पर वह आपा खो बैठेंगे।"

"तब उसे सम्भालने की जिम्मेदारी येसू की होगी। अगर उस का स्नेह सच्चा है तो सम्भाजी अवश्य सुधरेगा। येसू को तुम इस तरह समझाओ कि सम्भाजी की नजरबन्दी पत्नी के प्रति उस के प्यार की कसौटी है। क्यों न कसौटी के ही खातिर ऐसा प्रयोग किया जाए?"

"लेकिन यह तो येसूबाई को धोखा देना हुआ।"

"इस में धोखे की क्या बात है? मुकुन्द, अंगरक्षक केवल एक सैनिक नहीं, राजनीतिज्ञ भी होता है। राजनीति में शुभ के लिए अशुभ का सहारा लेना अनैतिक नहीं होता।"

"यों कहिए कि अंधे की हो गई, मैं येसूबाई को समझाऊं

"समझाऊं नहीं, तैयार करूं।"

"हां।"

नाश्ता समाप्त हो चुका था। सोयराबाई ने सेविका को बुलाया और हाथ धोने के लिए पानी लाने को कहा।

भुना हुआ नमकीन धनिया चुटकी में भर कर उसे मुकुन्द की हथेली पर रखती हुई वह बोली, "यह धनिया मुझे तो पान से भी ज्यादा पसन्द है।"

"मुकुन्द ने धनिया इतनी सावधानी के साथ चबाया, मानो कोई प्रयोग करने जा रहा हो। उस का चेहरा गम्भीर था और जबान खामोश।

"क्या सोच रहे हो?"

वह मुस्कराया, "यही कि मराठा राजकुमार के उद्धार में मेरा भी इतना हाथ हो सकता है।"

"मैं तुम्हारी सफलता की कामना करती हूं। देवी भवानी तुम्हारी मदद करें!"

मुकुन्द बाहर निकल आया।

उसी शाम वह येसूबाई के सामने उपस्थित था।

"मुकुन्द जी, मैं ने कल आप से जो पूछा था, वही आज फिर पूछ रही हूं।"

"क्या?"

येसूबाई लजाई, "....'वह' कैसे हैं?"

"आप ही कहिए, मैं कल वाला जवाब दूं या कोई दूसरा?"

"कल तो आप झूठ बोले थे, मुकुन्द जी!" येसूबाई का चेहरा उदास हो गया, "....'वह' वहां क्या करते हैं, कैसे रहते हैं, मुझे सब मालूम है। चाहती थी, आप से भी सुन लूं।"

"जानते हुए भी क्यों जानना चाहती थीं?"

"क्योंकि जो जाना था, उस पर विश्वास नहीं जमता था। कल आप ने जिस तरह 'बिल्कुल ठीक हैं' कहा, उसी से मैं भांप गई कि...."

मुकुन्द जी, उन्हें यहां बुलवा दीजिए।"

"मैं बुलवा दूं ?" मुकुन्द हंस पड़ा, "बुलवाने का अधिकार आप का है या मेरा ?"

थोड़ी और बातचीत के बाद मुकुन्द ने कहा, "ऐसा कीजिए, आप 'बीमार' पड़ जाइए।"

५

"अरे शायर साहब," ज्यों ही कमल ने तम्बू में प्रवेश किया, मुअज्जम बोल उठा, "क्या हुआ ?"

कवि कमल अपने सहरीले, लम्बे बालों को एक झटका दे कर गम्भीरता से हंसा, "बुलबुल ने नोच लिया।"

उस के दोनों गालों पर खरोंच के निशान थे, "उस की उंगलियां कोमल हैं किन्तु नाखून नहीं। बुलबुल बहुत तीखा है। बिल्कुल मनमानी के लायक।"

"बैठिए," मुअज्जम ने पलंग पर जगह बनाई, "पूरी बात बताइए।"

"अगर एक वाक्य में बताऊं तो मैं कुछ नहीं कर सका। अगर कई वाक्यों में बताऊं तो परसों रात मैं बुलबुल के पास गया। उस ने हंस कर मेरा स्वागत किया, फिर खूब शराब पिलाई। मैं धुत हो गया। जब मैं आधे होश में था तो मैं ने उसे ठहाके मार कर हंसते देखा। मैं ने भी हंसने की कोशिश की। उस ने मुझे और पिलाई, हालांकि मैं पीना नहीं चाहता था। जब मैं बेहोश होने वाला था तो उस ने मेरे दोनों गालों पर नाखून गाड़ दिए। उस के बाद मैं कुछ भी न जान सका।"

"तो ?"

"था तो उस के साथ ही, रात भर रहा, दूसरे दिन दोपहर तक रहा—लेकिन मैं बेहोश या आधे होश में था। उसे अपने साथ सुलाने की ताकत मुझ में नहीं थी।"

"विचित्र !"

"मुझे लगता है, वह पागल हो चुकी है।" कलश ने गमगीनी से कहा, "मैं ने उस की आंखों के सामने उस की मां को छुरा भोंका था। बुलबुल का मुलायम दिल अब कड़ा हो गया है।"

"कलश साहब, हम उसे देखना चाहेंगे।"

"बेशक, आज आप ही की बारी है। क्यों न नाई भेज कर पहले उस के नाखून कटवा दिए जाएं ?"

"नहीं, हम चाहते हैं, वह हमें भी खरोंचे।" मुअज्जम हंसा।

"पाक खयाल है। इस में कतई शक नहीं कि आप को मजा आ जाएगा।" कलश ने जीभ चटखाई, "फिर भी इतना जरूर कहूंगा कि आप सावधान रहें। मैं तो कुछ न कर सका, कहीं आप भी 'यों ही' न लौट आएं।"

"ऐसा नहीं होगा," मुअज्जम को बात लग गई, "औरत चाहे जितनी हसीन हो, वह काबू में लाने के लिए होती है।"

"सोचता बन्दा भी यही है, लेकिन यह बुलबुल जरूरत से ज्यादा पिला देता है।"

"हम उतनी नहीं पिएंगे।"

"मैं भी यही सोच कर गया था।"

"हम में और आप में काफी फर्क है।"

कलश ने विषय बदला, "भांग का शौक फरमाएंगे ? मेरे तम्बू में घुट रही है।"

"नहीं। शुक्रिया। आप हमारे लिए सिर्फ नाई भिजवाने का इंतजाम करें।"

"बुलबुल के नाखून कटवाने के लिए ?"

"नहीं उस के लिए हम एक बार मना कर ही चुके हैं।" मुअज्जम की आवाज रूखी थी, "आप खुद देख सकते हैं कि हमारी दाढ़ी काफी बढ़ गई है।"

"समझा," कलश हंसा, "बुलबुल से आप अपने गाल तो खुरचवा लेंगे लेकिन खुद उस के नहीं खरोंचेंगे।"

"आप यहां से जाइए।"

"संस्कृत का कोई शेर सुना दूं ?"

"नहीं, फिर कभी।"

अपमानित होने पर भी मुस्कराते रहने की कवि कलश की ऐसी ढिठाई मुअज्जम को पसन्द नहीं थी। कलश के विदा लेने के बाद वह छोटे-छोटे टुकड़ों में कई बातें सोचता रहा। सब से पहले उसे सम्भाजी की याद आई। सम्भाजी जैसे औरतखोर युवक उस ने बहुत कम देखे थे। प्रायः हर रात उसे नई औरत की जरूरत पड़ती थी। सम्भाजी अपने मराठा दस्ते के साथ औरंगाबाद-शिविर में शामिल हुआ था, तो मुअज्जम को वह शुरू-शुरू में दब्बू-सा मालूम पड़ा था। चारों ओर मुगल सैनिकों की उपस्थिति सम्भाजी को अटपटी लगती थी। लेकिन कुछ ही दिनों में उसे इस की आदत पड़ गई थी। कवि कलश ने तो आते ही अपनी रसिकता का परिचय दे दिया था और मुअज्जम से गहरी दोस्ती बना ली थी। इन दोनों के साथ रह कर धीरे-धीरे सम्भाजी वेश्याओं तथा अपहरण कर के लाई गई लड़कियों के सम्पर्क में आता गया। इस का उस को इतना चस्का पड़ा कि वह इन सभी से आगे निकल गया। वासना की छोरहीन गुफा में सम्भा वास्तव में सब से तेज दौड़ा। देखादेखी में मुअज्जम भी उस के पीछे दौड़ पड़ा था। कभी सम्भा आगे निकल जाता, कभी मुअज्जम। कवि कलश भी पूरी ताकत के साथ दौड़ लगाता था, लेकिन सब से आगे बने रहने की भड़ास उस में नहीं थी। गुफा में दौड़ता हुआ वह बीच-बीच में रुक जाता, आराम फरमाता, भाग छानता और शराब पीता।

भाई-बहनों की धुंधली यादों के बाद मुअज्जम को दक्षिण-विजय की वह बात याद आई, जिस के लिए औरंगजेब ने उसे यहां भेजा था—यह सोच कर कि हमारा बेटा है, ईमानदारी से काम करेगा। और मुअज्जम यहां गुलछर्रे उड़ा रहा था—राज्यों पर हमलों तथा कर-वसूली का लगभग सारा भार सेनापति दिलेरखां पर छोड़ कर।

मुअज्जम मन-ही-मन मुस्कराया, 'मैं जानता हूं, कि दिलेरखां मुझे पसन्द नहीं करता, लेकिन इस से क्या फर्क पड़ता है ? मैं हूं शाहजादा। बात मेरी चलेगी, काम वह करेगा।'

"क्या मैं दखल देने की जुर्रत कर सकता हूं ?" एक कर्कश और रोबीले स्वर ने उस के विचारों के धागे तोड़ दिए। दरवाजे पर दिलेरखां खड़ा था।

"आइए, आइए, आप की उम्र बड़ी है। अभी मैं आप ही के बारे में सोच रहा था।"

"क्या सोच रहे थे ?" दिलेरखां मुस्कराया।

"यही कि आप बहुत बहादुर हैं।"

"शुक्रिया !" दिलेरखां ने व्यंग्य किया, "लेकिन शाहजादे, यह बात सोचने की नहीं, पीठ पीछे कहने की है।"

"कहने से पहले हर बात क्या सोची नहीं जाती ?"

"कई बातें केवल सोची जाती हैं, कही नहीं जातीं।"

"हम ऐसी कोई बात नहीं सोच रहे थे।" मुअज्जम ने अंगूर की तश्तरी दिलेरखां की ओर बढ़ाई।

"भला मैं यह कैसे जान सकता हूं !" दिलेरखां ने अंगूर के गुच्छे में से एक तीली तोड़ी। छत की ओर सिर उठा कर वह उस तीली को अपने खुले होंठों पर झुलाने लगा, फिर चार-पांच अंगूर मुंह में डाल कर मुस्कराया। दिन-ब-दिन वह बातचीत करने में साहसी होता जा रहा था, जो मुअज्जम को कई बार बुरी तरह खटक जाता था। मुअज्जम ने कहा, "हां, वाकई यह न आप जान सकते हैं, न कोई और।

"मैं अपने जासूसों पर भरोसा करता हूं।" दिलेरखां मुस्कराया, "सम्भाजी पन्हाला में नजरबन्द हैं।"

"नजरबन्द ? किस ने किया ?"

"उन के अब्बाजान शिवाजी ने।"

"क्यों ?" मुअज्जम चौंका।

"शिवाजी का कहना है कि शराब और औरतें अच्छी चीजें नहीं हैं—खास कर उन के लिए, जो किसी राजा या बादशाह के सब से बड़े बेटे हों।"

यह व्यंग्य मुअज्जम पर भी था, जिस ने उसे तिलमिला दिया। धीमे स्वर में 'हुं' कहने के बाद उस ने पहरेदार को आवाज दी। पहरेदार सामने आया और झुका, "हुजूर ?"

"शायर कलश जहां भी हों, फौरन यहां भेजे जाएं।"

"जो आज्ञा।" वह बाहर हो गया।

कुछ देर बाद तम्बू का रेशमी परदा हिला। मुअज्जम और दिलेरखां ने उत्सुकता से उधर देखा, लेकिन वह कलश नहीं था। पहरेदार ने प्रवेश किया था, "शायर अपने तम्बू में भांग छान रहे हैं और यहां आने की बजाय··· "वह झिझका, "···आप को वहीं बुलाते हैं।"

मुअज्जम दिलेरखां की ओर देख कर कटुता से बोला, "कभी तो जी चाहता है, शायर का गला उतरवा लूं। अदब बिल्कुल नहीं करता।"

"लेकिन वह शायरी अच्छी करता है।"

"हमेशा नहीं," मुअज्जम इस व्यंग्य की भी उपेक्षा कर गया, "पहरेदार ! शायर से कहो, हमें उन से बहुत जरूरी काम है।"

कुछ देर बाद झूमता हुआ कलश भीतर आया, "सलाम-नमस्कार-प्रणाम !···मैं हाजिर-उपस्थित हूं।"

"बैठिए। होश में तो हैं ?"

"हूं नहीं, लेकिन आ सकता हूं।"

"पन्हाला में सम्भाजी को नजरबन्द किया गया है।"

"क्यों ?" कलश तुरन्त समझ गया कि यह मजाक का समय नहीं है।

सारी बात बता कर मुअज्जम ने कहा, "अगर वह न आ पाए तो मराठों का दस्ता आप को ही सम्भालना होगा।"

कलश ने इस का उत्तर देने की शुरूआत तो गम्भीरता से की, लेकिन वह दो-तीन शब्द भी न बोल पाया था कि होंठों पर मुस्कराहट आने लगी, "आप मेरी युद्ध-कला की कसौटी करना चाहते हैं ? मैं वादा और दावा करता हूं कि सम्भाजी से ज्यादा चतुराई और बहादुरी से लड़ूंगा। लेकिन एक बात है। क्यों न पहले हम उन को आजाद कराने की कोशिश करें ?"

यह प्रस्ताव मुअज्जम और दिलेरखां दोनों को बहुत पसन्द आया, क्योंकि युद्ध में कवि कलश की उपयोगिता कितनी थी, दोनों खूब समझते थे। मुगल शिविर में सम्भाजी का चरित्र गिरने के बाद शिवाजी से नए मराठा सैनिक या सेनापति भाग कर नकारात्मक उत्तर पाने की लज्जा उठाने का कोई अर्थ नहीं था। इस स्थिति में कवि कलश के सिवा और कोई सेना-नायक इन लोगों के पास नहीं था।

मुअज्जम ने शंका की, "लेकिन सम्भाजी पन्हाला से भागना पसन्द करेंगे ?"

"क्यों नहीं," कवि कलश ने किलक कर कहा, "वहां उन की बीवी है लेकिन बुलबुलें तो नहीं हैं।"

"आप का कहना ठीक है, लेकिन एक और पहलू पर गौर किया जाना चाहिए। यदि सम्भाजी पन्हाला से भागते हैं तो इस का मतलब है, उन का रिश्ता हमेशा के लिए शिवाजी से और शायद बीवी से भी टूट जाएगा। शिवाजी उसे कभी माफ नहीं करेंगे।"

"किसी की माफी की परवाह तब की जाती है जब उस की इज्जत की जाती हो। मैं सोचता हूं, सम्भाजी के दिल में शिवाजी के लिए उतनी इज्जत नहीं है, जितनी···" दिलेरखां ने उत्तर दिया। उस का

अधूरा वाक्य कवि कलश ने पूरा किया,"जितनी एक बाप के लिए एक बेटे के दिल में होनी चाहिए।"

"बिल्कुल ठीक।" दिलेरखां तुरन्त बोला।

मुअज्जम मुस्करा उठा, "ठीक है, हमला कुछ दिन रोक लिया जाए और पहले सम्भाजी को हासिल किया जाए।"

कलश उठ खड़ा हुआ, "आप तो भांग लेंगे नहीं। मैं चलूं, थोड़ी और चढ़ाऊं।" चलते-चलते अचनाक रुक कर उस ने कहा, "अरे, मैं नाई भिजवाना तो भूल ही गया! अभी भिजवाता हूं।"

दिलेरखां ने भी विदा ली। कुछ समय बाद नाई आ पहुंचा। वह सफेद चूड़ीदार पायजामे और अचकन में था। चेहरे से वह राजपूत मालूम पड़ता था। उस ने उस्तरा निकाल कर हथेली पर चमकाया, फिर मुअज्जम के गालों पर काफी देर तक सुगन्धित मलाई रगड़ता रहा।

रात होते ही मुअज्जम ने गुल के तम्बू में प्रवेश किया। चारों ओर झीने, रेशमी परदे टंगे हुए थे। बीच में पलंग था, जिस की चादर फूलों और इत्र से महक रही थी। तम्बू के रक्षक बहुत दूर रह कर उस की रक्षा कर रहे थे, ताकि गुल के प्रतिरोध तथा उसे भोगने वाले के कामुक स्वर उन तक न पहुंच सकें। केवल एक सशस्त्र परिचारिका तम्बू के अन्दर उपस्थित थी, जिसे बलात्कार देखने की इतनी आदत पड़ चुकी थी, जितनी किसी जीवित प्राणी को सांस लेने की हो सकती है। गुल को उत्तेजक प्रसाधन और कम-से-कम वस्त्रों में सजा कर उस ने पलंग पर बिठा दिया था। मुअज्जम को देखते ही वह परदा हटा कर एक आड़ में चली गई, बिना मुस्कराए या चेहरे पर किसी और तरह के भाव उभारे।

'मैं आया हूं', यह दिखाने के लिए मुअज्जम जरा खांसा, लेकिन गुल निर्विकार ही बैठी रही। उसकी पीठ मुअज्जम की ओर थी। 'मुझे

लगता है, वह पागल हो गई है।' कवि कलश का यह वाक्य मुअज्जम के कानों में गूंज गया। आगे बढ़ कर वह पलंग के पास रखी एक कुर्सी में धंसा और एक तिपाई सामने खींच कर शराब ढालने लगा। प्याले में एक ऊंचाई से शराब की धार गिरने की आवाज हुई। गुल थोड़ी सिहरी, लेकिन उस ने पीछे घूम कर न देखा। दूसरी लड़कियां तो सब से पहले भयभीत दृष्टि से आने वाले को देखती थी, मानो अदाजा लेना चाहती हों कि यह आदमी कितना बर्बर होगा। दोनों हाथों में शराब से लबालब प्याले ले कर मुअज्जम उठा और पलंग का आधा चक्कर काट कर गुल के सामने आ गया। 'कलश बिल्कुल ठीक कहता था', वह मन-ही-मन बुदबुदाया, 'इतनी खूबसूरत आंखें मैं ने पहले कभी नहीं देखी।'

"लो, पियो।" उस ने एक प्याला गुल की ओर बढ़ा दिया। गुल की बड़ी-बड़ी पलकें उठीं। काजल की रेखा ने उस के कोयों का दूधियापन और दूधिया कर दिया था। उस के पतले होंठ हिले। प्याला थाम कर धीमे स्वर में वह बोली, "आप कहें तो पी लू लेकिन मुझे कै हो जाएगी।" स्वर की निरीहता और मिठास पर मुअज्जम फिदा हो गया। मुस्करा कर उस ने प्याला वापस रख देना चाहा, लेकिन तब तक गुल उसे उसी के होंठों की ओर बढा चुकी थी, "आप पीजिए।"

"पिलाओ।" मुअज्जम आगे झुका। कोमल, जवान हाथ की उन बारीक उंगलियों ने वह प्याला उस के होंठो से लगाया। वह एक ही सांस में पी गया। दूसरा प्याला भी गुल को ही थमा कर मुअज्जम ने उसी के हाथों पिया। अतुल सन्तोष से वह झूम गया।

"तुम्हारा नाम क्या है ?"

"गुल !" ऐसा स्वर, जो न खुश था, न नाराज; न डरा हुआ, न उत्सुक। मुअज्जम को अटपटा लगा। वह पलंग पर तभी बैठ पाया, जब गुल ने "बैठिए" कहा। 'यह पागल नहीं हो सकती। कलश बेवकूफ है।' सोचता हुआ वह गुल की पिंडलियों की ओर देखता रहा, जिन का गोरापन झीने वस्त्रों में से छन रहा था।

अधूरा वाक्य कवि कलश ने पूरा किया,"जितनी एक बाप के लिए एक बेटे के दिल में होनी चाहिए।"

"बिल्कुल ठीक।" दिलेरखां तुरन्त बोला।

मुअज्जम मुस्करा उठा, "ठीक है, हमला कुछ दिन रोक लिया जाए और पहले सम्भाजी को हासिल किया जाए।"

कलश उठ खड़ा हुआ, "आप तो भांग लेंगे नहीं। मैं चलूं, थोड़ी और चढ़ाऊं।" चलते-चलते अचनाक रुक कर उस ने कहा, "अरे, मैं नाई भिजवाना तो भूल ही गया! अभी भिजवाता हूं।"

दिलेरखां ने भी विदा ली। कुछ समय बाद नाई आ पहुंचा। वह सफेद चूड़ीदार पायजामे और अचकन में था। चेहरे से वह राजपूत मालूम पड़ता था। उस ने उस्तरा निकाल कर हथेली पर चमकाया, फिर मुअज्जम के गालों पर काफी देर तक सुगन्धित मलाई रगड़ता रहा।

रात होते ही मुअज्जम ने गुल के तम्बू में प्रवेश किया। चारों ओर झीने, रेशमी परदे टंगे हुए थे। बीच में पलंग था, जिस की चादर फूलों और इत्र से महक रही थी। तम्बू के रक्षक बहुत दूर रह कर उस की रक्षा कर रहे थे, ताकि गुल के प्रतिरोध तथा उसे भोगने वाले के कामुक स्वर उन तक न पहुंच सकें। केवल एक सशस्त्र परिचारिका तम्बू के अन्दर उपस्थित थी, जिसे बलात्कार देखने की इतनी आदत पड़ चुकी थी, जितनी किसी जीवित प्राणी को सांस लेने की हो सकती है। गुल को उत्तेजक प्रसाधन और कम-से-कम वस्त्रों में सजा कर उस ने पलंग पर बिठा दिया था। मुअज्जम को देखते ही वह परदा हटा कर एक आड़ में चली गई, बिना मुस्कराए या चेहरे पर किसी और तरह के भाव उभारे।

'मैं आया हूं', यह दिखाने के लिए मुअज्जम जरा खांसा, लेकिन गुल निर्विकार ही बैठी रही। उसकी पीठ मुअज्जम की ओर थी। 'मुझे

कहा। तब बेचारे को नाखून गड़ गए।"

"ओह ! लेकिन वह राजकुमार नहीं था।" मुअज्जम मुस्कराया।

"कहता तो था कि राजकुमार हूं।"

"वह उल्लू था।"

"था तो आदमी।"

"आदमी सही, अब उस की बात मत करो।"

"अच्छा !" उस की आवाज मीठी तो थी, लेकिन इतनी भावहीन और शून्य कि मुअज्जम को लगा, वह झुंझला पड़ेगा। उस ने गुल की ओर ताका। काफी देर तक वह ताकता रहा। गुल न मुस्कराई। 'मैं कहूंगा तभी मुस्कराएगी क्या ?' इस प्रश्न ने शाहजादे को कुरेद दिया, साथ ही मन में एक उत्सुकता भी जगाई।

"मुस्कराओ भला !"

गुल ने मुस्करा कर दिखाया, "और ? या बस ?"

अचानक झुंझलाहट के बादल छंट गए और मुअज्जम की खुली हंसी फूट पड़ी। इस भोली अदा ने उसे वाकई गुदगुदा दिया था, "अब थोड़ा हंस कर भी दिखाओ।"

गुल हंसी।

"खिलखिलाओ !'

वह खिलखिलाई, "आता है न ?"

मुअज्जम ने उसे भींच लिया। यह आवेग कामुकता का नहीं, प्यार का था। "तुम बहुत अच्छी हो।" उस ने उस के बाल चूमे, पलकें और होंठ चूमे। दोनों हथेलियों में चेहरा थाम कर उस ने उस की आंखों में आखें पिरो दीं, "बताओ, मैं कैसा हूं ?"

वह कोई जवाब न दे सकी।

"अच्छा हूं ?"

उस ने 'न' में सिर हिलाया। मुअज्जम मुस्कराने लगा। आज से पहले जितनी लड़कियां उस ने ली थीं—सहमी हुई, फड़फड़ाती लड़कियां

"देखेंगे ?" गुल पिंडलियां नंगी करने लगी। आत्मसमर्पण का यह तीखापन सहा न जाएगा, इस का अहसास मुअज्जम को तभी हुआ, जब अपने-आप उस के मुंह से 'नहीं' निकल गया। गुल ने छुटकारे की कोई सांस न ली। मुअज्जम को खटका हुआ। 'दिमाग थोड़ा-बहुत खराब जरूर है।' न चाहते हुए भी वह इतना सोचने पर मजबूर हो गया। उस ने हाथ बढ़ा कर गुल के कन्धे दबाए। कई लड़कियों को विवस्त्र कर चुके मुअज्जम को आज पहली बार लगा कि उस ने कंधा दबा कर कोई साहस का काम किया है। उस ने गुल को करीब खींचना चाहा। वह खुद ही उठ कर बिल्कुल पास आ गई। न सिहरी, न डरी, न शरमाई।

"जानती हो, मैं कौन हूं ?"

"सजाने वाली ने बताया था कि आज भी राजकुमार आएंगे।"

"राजकुमार नहीं, शाहजादा।"

"शाहजादा।" गुल ने दोहराया।

चुप्पी...

"मुझे अपनी उंगलियां दिखाओ।" मुअज्जम ने बड़ी कोमलता से उस की हथेलियां अपने हाथ में लीं। उस के नाखून कटे हुए थे।

"कब कटे ?"

"क्या, नाखून ?"

"हां।"

"आज सुबह।"

"क्यों ?"

"पिछली बार जो राजकुमार आया था, उसे ये गड़ गए थे।"

"राजकुमार ?"

"हां, पिछली बार बड़े-बड़े बालों वाला एक राजकुमार आया था न ? मैं उसे जितनी शराब पिलाती थी, वह और ज्यादा मांगता था। उस ने मुझे खिलखिलाने को कहा, फिर चेहरे पर उंगलियां फेरने को

कहा। तब बेचारे को नाखून गड़ गए।"

"ओह! लेकिन वह राजकुमार नहीं था।" मुअज्जम मुस्कराया।

"कहता तो था कि राजकुमार हूं।"

-"वह उल्लू था।"

"था तो आदमी।"

"आदमी सही, अब उस की बात मत करो।"

"अच्छा!" उस की आवाज मीठी तो थी, लेकिन इतनी भावहीन और शून्य कि मुअज्जम को लगा, वह झुंझला पड़ेगा। उस ने गुल की ओर ताका। काफी देर तक वह ताकता रहा। गुल न मुस्कराई। 'मैं कहूंगा तभी मुस्कराएगी क्या?' इस प्रश्न ने शाहजादे को कुरेद दिया, साथ ही मन में एक उत्सुकता भी जगाई।

"मुस्कराओ भला!"

गुल ने मुस्करा कर दिखाया, "और? या बस?"

अचानक झुंझलाहट के बादल छंट गए और मुअज्जम की खुली हंसी फूट पड़ी। इस भोली अदा ने उसे वाकई गुदगुदा दिया था, "अब थोड़ा हंस कर भी दिखाओ।"

गुल हंसी।

"खिलखिलाओ!'

वह खिलखिलाई, "आता है न?"

मुअज्जम ने उसे भींच लिया। यह आवेग कामुकता का नहीं, प्यार का था। "तुम बहुत अच्छी हो।" उस ने उस के बाल चूमे, पलकें और होंठ चूमे। दोनों हथेलियों में चेहरा थाम कर उस ने उस की आंखों में आंखें पिरो दीं, "बताओ, मैं कैसा हूं?"

वह कोई जवाब न दे सकी।

"अच्छा हूं?"

उस ने 'न' में सिर हिलाया। मुअज्जम मुस्कराने लगा। आज से पहले जितनी लड़कियां उस ने ली थीं—सहमी हुई, फड़फड़ाती लड़कियां

-सब से उस ने पूछा था, 'मैं कैसा हूं' और सब ने उस की तारीफ थी। शायद इसलिए···शायद क्यों, केवल इसलिए कि उन्हें जान से मारा जाए। उन सब के थरथराते जिस्म मुअज्जम की आंखों के सामने घूम गए। 'गुल को कंपकंपी क्यों नहीं होती ? अगर मैं हुक्म द तो जरूर यह कांप कर दिखाए !' मुअज्जम को लगा कि उस का बचप लौट आया है और गुल नाम की यह हसीन गुड़िया उसे खेलने के लिए दे दी गई है। उस ने उसे फिर चूमा।

"तुम्हें डर नहीं लगता ?"

"किस से ?"

"आदमियों से ?"

"पहले लगता था।"

"अब नहीं लगता ?"

"क्योंकि अब मुझे मालूम है कि ज्यादा-से-ज्यादा वे किसी की जान ले सकते हैं। जो राजकुमार आप से पहले आया था, उस ने मेरी मां को मार डाला था।"

मुअज्जम की बांहों में सिहरन दौड़ गई। बहुत देर तक वह खामोश रहा। "अगर वह तुम्हें भी मार डालता, तो ?"

"तो मैं मर जाती।" गुल ने इतनी आसानी से कह दिया कि फि मे मुअज्जम ने उसे आवेग मे चिपटा लिया, "तुम्हें मरने से डर न लगता ?"

"कुछ लड़कियों को लगता है, मुझे नहीं लगता। जब हम जाते हैं तो कहां होते हैं ? कहीं नहीं। मरने पर भी हम कहीं होते।"

मौत की इस सीधी, सरल परिभाषा ने मुअज्जम को गम्भी दिया। गुल का मानसिक सन्तुलन सचमुच ठीक नहीं है यह उस हुए लहजे से जाहिर था। 'अपनी मां की मौत देखने का इसे गह लगा है।' मुअज्जम ने सोचा। वह पलंग पर बैठा न रह सका

खिड़की के सामने जा कर शराब ढाली।

"मैं ने सुना है, तुम बहुत अच्छा गा लेती हो ?"

"हां, मां के मरने से पहले मैं यही काम करती थी। लेकिन…" लेकिन…"

"लेकिन क्या ?"

"वे गाने अब मुझे याद नहीं हैं। बहुत कोशिश करूं तो दो-एक कड़ियां सुना सकती हूं। आप कहें तो नए गाने सीख लूं।"

मुअज्जम चुप रहा। "तुम जिंदा हो, क्या इस की तुम्हें खुशी है ?" काफी देर बाद उस ने पूछा।

"हां।"

"क्यों ? अभी तो तुम ने कहा था कि मरने से तुम्हें डर नहीं लगता।"

"फिर भी जिंदा रह कर मैं खुश हूं।"

"क्यों ?" मुअज्जम को जरा मजा आया।

"इसलिए कि मेरे पास आने वाला दूसरी लड़कियों के पास नहीं जाएगा। यानी मेरे जिंदा रहने से शायद कुछ लड़कियां खराब होने से बच जाएं।"

तम्बू में प्रवेश करते समय मुअज्जम की नसें कामावेग से बुरी तरह उत्तेजित थीं। लेकिन ज्यों-ज्यों समय बीत रहा था और गुल बातें कर रही थी, उत्तेजना फीकी पड़ रही थी। मुअज्जम ने शराब का घूंट निगला। वह नहीं चाहता था कि उत्तेजना कम हो। 'औरत चाहे जितनी हसीन हो, वह काबू में लाने के लिए होती है।' बार-बार उसे अपना ही वाक्य याद आ रहा था। विचारों का यह काला भौंरा '…'जरूर यह लड़की कुंवारी होगी। कलश वाकई इस के साथ नहीं सो पाया। इस की बनावट कहती है कि इसे अभी तक किसी ने नहीं छुआ है। यह कुंवारी मेरे लिए है… शाहजादा मुअज्जम के लिए है …'

भावुकता का जो उफान कुछ देर पहले आया था, वह क्रमशः डूबने

गा था। जीवित मांस की भूख उस के दिमाग में गर्म भाप की तरह भरती जा रही थी।

आधी रात के बाद वह तम्बू से बाहर आया। उस का सिर घूम रहा था···मैं ने अच्छा नहीं किया···गुल···मुझे माफ··· औरत चाहे जितनी हसीन हो, वह···मैं ने अच्छा नहीं किया···

खामोश रात में फीकी चांदनी जल रही थी। पड़ाव के सैनिक अपने-अपने तम्बुओं में बेखबर सोए थे। पहरेदार गश्त लगा रहे थे। दो-दो, तीन-तीन तम्बू छोड़ कर खम्भों पर पीली मशालें जल रही थीं, धुआं उगलती हुईं। उन की उदास रोशनी छोटे-छोटे दायरों में फैली हुई थी।

मुअज्जम अपने तम्बू की ओर बढ़ा। उस के पुट्ठे दर्द कर रहे थे और शराब की सुरसुरी पैरों को लड़खड़ा रही थी। बिखरे बालों को कपाल पर से हटा कर उस ने जम्हाई ली और जान-बूझ कर पलकों को कई बार झपकाया ताकि दुखती पुतलियों को राहत मिले।

कवि कलश का तम्बू करीब आया। भीतर रोशनी थी। 'शायर जाग रहा है क्या?' मुअज्जम उत्सुकता से दरवाजे की ओर बढ़ा। जमीन पर भाले टेकते हुए गश्त दे रहे सैनिक उसे पहचानते ही अदब से झुके। मुअज्जम झिझका। कहीं शायर भीतर किसी के साथ अस्तव्य··· न हो।

"शायर अकेले हैं?" उसे बेशर्मी से पूछना पड़ा।

सैनिक नम्र हो कर बोला, "जी हां, हुजूर!"

मुअज्जम भीतर गया।

कवि कलश जागता हुआ चित लेटा था, गर्दन तक चादर··· हुए। केवल सिर हिला कर उसने मुअज्जम की ओर देखा औ··· मुस्कान के साथ पूछा, "कहां से आ रहे हैं? अपने तम्बू से या गु···

मुअज्जम थोड़ा मुस्कराया, थोड़ा हंसा। उस की लाल आंखे··· झोलदार कुर्सी में धंसता हुआ बोला, "गुल के तम्बू से। मैं आ···

ही चुका था, हम दोनों में काफी फर्क है।"

"मैं उसे न ले सका, इस का एक गहरा कारण था।"

"भेद मिटाना चाहते हैं क्या ?"

"नहीं," कलश तम्बू की छत की ओर देखने लगा, जो हवा के झोंके से हिल रही थी, "मैं ने उस की मां की हत्या की थी। अब उस के पास गया तो लगातार महसूस होता रहा कि तम्बू में उस की मां का खून है। डर से छुटकारा पाने के लिए मैं शराब पीता रहा...."

"आप तो कह रहे थे कि गुल ने जबर्दस्ती पिलाई थी ?"

"एक ही बात है। बहरहाल, शराब मेरे पेट में गई। आप ने यह नहीं पूछा कि मैं अभी तक क्यों जाग रहा हूं।"

"लीजिए, अब पूछ रहा हूं। बताइए !"

"पहले पूछिए।"

"फिर से भांग चढ़ाई है क्या ?"

"पहले पूछिए।"

"आप अभी तक जाग क्यों रहे हैं ?"

कलश की आंखें छलछला आईं, "मेरे दिमाग में तूफान उठ रहा है। ब्राह्मण हो कर भी मैं ने कई हत्याएं की हैं। मैं...मैं..."

"शायद, आंख मूंद कर सो जाइए। पागलपन की बातें मत सोचिए।" तड़प कर मुअज्जम बाहर निकल आया।

यह अपने तम्बू की ओर घिसट रहा था। जूतों के नीचे मोटी धूल की किरकिरी उस के जिस्म के भीतर तक रेंग आती थी। दो-एक बार उसेपीछे से गुल की धीमी सिसकी सुनाई पड़ने का शक हुआ। एक बार तो बिल्कुल ऐसा लगा, गुल बड़े-बड़े कदम उठाती हुई पास आ गई है। तुरन्त उस ने पलट कर देखा। एक मशाल धुआं उगलती नजर आई—बस !

६

"येसू, आश्चर्य है, तुम ने मुझे क्षमा कैसे कर दिया।" गोद में लेटे सम्भाजी ने हाथ बढ़ा कर येसू की कमर भींची। वह उस के बालों में उंगलियां फेरती रही। उस का तन सन्तुष्ट था, मन शान्त। उस की आंखों में खुशी के आंसू उभरे। वह मुस्कराई। गोद में निरीहता से मुंह छिपाए सम्भाजी की ओर देख कर उस ने मधुर स्वर में कहा, "आश्चर्य क्यों ?"

"नारी कभी सहन नहीं कर सकती कि उस का पति किसी दूसरी...."

येसू ने उसके मुंह पर हथेली रख दी, "शी···चुप रहिए··· !"

"नहीं येसू, मुझे अपने सारे अपराध कबूल कर लेने दो।"

"उस से क्या होगा ?" येसू हंसी।

"शान्ति मिलेगी।"

"कबूल आप तब करिए, जब मैं करने को कहूं।"

"तुम कहती नहीं हो, इसीलिए तो मन चाहता है।"

"आप बस, चुपचाप लेटे रहिए।"

"येसू, एक बात खटकती है। मैं यहां आते ही नजरबन्द हो गया।"

"तो क्या हुआ ?" येसू हंसी, "न हुए होते तो भी आप को जाने थोड़े ही देती !"

"मेरी पीड़ा की कल्पना करो। चौबीसों घंटे एक ही बात मन घुटती रहती है कि मुझ पर कोई विश्वास नहीं करता।"

"मेरी आंखों में भी अविश्वास है क्या ?"

"नहीं, लेकिन राजमाता सोयराबाई, हीरोजी, गुरुन्द, एक-एक सेवक-सेविका—सभी मुझे गहरे अविश्वास से देखते हैं। कई बार इतना दुःख होता है कि भाग जाऊं यहां से।"

येसू का हृदय कांप गया। सूनी गुफा में जैसे कोई चीख पड़ा हो… भाग जाऊं!…भाग जाऊं!…

"अरे येसू, क्या हुआ?" सम्भाजी ने जल्दी हड़बड़ा कर उसे झोंक दिया। "कुछ नहीं," उस ने पलकें झपकाईं। आंसू चू गए।

"मैं बुरा हूं येसू, बहुत बुरा…" सम्भाजी ने उसे गर्दन के पीछे प्यार से चूमा।"

"नहीं…ना… आप ने कुछ नहीं किया।" येसू की आवाज़ कांपने लगी।

"पगली कहीं की, क्या तुम सोचती हो, मैं अकेला भागूंगा? अगर मैं भागा…"

येसू ने उस का मुंह बन्द कर दिया। सम्भाजी ने धीरे-से उस की हथेली हटाई और गम्भीरता से कहा, "लोगों की ये बातें मुझ से सही नहीं जातीं। कई बार लगता है, मैं किसी को थप्पड़ मार बैठूंगा। हीरोजी को देख कर तो मुझे आग-सी लग जाती है। उस का मुस्कराने का ढंग, आंख झपकाने का ढंग, कमरे में आने और जाने का ढंग—सब से केवल एक बात टपकती है, दुनियादार! ढोर का पिंजड़ा भी इतना बड़ा होता है कि वह घूम-फिर सके। मुझे तो ऐसा जकड़ दिया गया है… उफ़! बता नहीं सकता, मेरी क्या हालत है। सच मानो येसू, अगर तुम न होतीं, अब तक मैं जरूर भाग चुका होता। न जाने तुम में ऐसा क्या है, जो कहता है कि यहीं रुको। अगर मैं भागा, तुम्हें साथ ले कर ही भागूंगा।"

"और मैं न चली, तो?"

"चलोगी कैसे नहीं, जबरन ले जाऊंगा—हाँ!" और वह फूल की डलिया की तरह पति की बलिष्ठ भुजाओं में उठाई जा चुकी थी। आनन्द की अनुभूति ने उसे कुछ देर के लिए स्तब्ध कर दिया, लेकिन अगले ही क्षण वह तड़पी और छिटक कर दूर खड़ी हो गई। सम्भाजी हतप्रभ रह गया। ज्यों ही वह आगे बढ़ा, येसू ने तीखे स्वर में कहा,

"आप उठा कर ले जाएंगे और···और ऐसी सेज पर सुला देंगे, जहां पहले से कोई सो रही होगी।" येसू के गले में एक जोर की सिसकी फंसी। उस ने मुंह में आंचल भर लिया। सम्भाजी के पैरों में कंपकंपी रेंगी, क्रोध की नहीं, आत्म-धिक्कार की। पहली बार···हां, पहली बार आज येसू ने भी कह दिया···कि तुम चरित्रहीन हो···व्यभिचारी हो··· उसी येसू ने, जिस ने अभी कुछ देर पहले पूछा था, "मेरी आंखों में भी अविश्वास है क्या?" मन की आग कितनी सफाई से छिपाई थी उस ने! अब वह दूर खड़ी रो रही थी और सम्भाजी में साहस नहीं था कि उस के करीब जाए।

आंचल से आंसू पोंछ कर येसू ने पति की ओर आंखें उठाई और भीगे स्वर में कहा, "मुझे क्षमा कीजिए!"

सम्भाजी ने होंठ काटे। क्षमा! अपराध मेरा, क्षमा भी मैं करूं? उसे येसू से डर लगा। उस की निरीहता के सामने वह हार रहा था। वह अपने स्थान से हिल भी न सका। येसू धीरे-धीरे उस के पास आई, "आप का कोई अपराध नहीं है। आप की संगत बुरी थी। मैं आप को दोष नहीं दे सकती।"

"नहीं येसू, दोष मेरा था। मैं चाहता तो कीचड़ में भी कमल की तरह रह सकता था। मैं ने ही गिरना चाहा और गिरा।"

"ऐसा न कहिए!"

बवण्डर में पेड़ के तने के साथ बेल लिपटती है, उसी तरह येसू सम्भाजी से लिपट गई।

सुबह होने को थी।

सैनिकों के शक्तिशाली दस्ते द्वारा सुरक्षित सोयराबाई की डोली रायगढ़ की ओर बढ़ रही थी। वह शिवाजी से मिलने जा रही थी। उस का लाड़ला बेटा राजाराम भी रायगढ़ में था।

पन्हाला से डोली रवाना हुई, उस समय सुबह काफी चढ़ चुकी

थी। पन्हाला अभी मुश्किल से पन्द्रह मील पीछे छूटा होगा कि दोपहर होने को आई। सोयराबाई ने डोली का परदा हटाया और सामने के घोड़े पर अकड़ कर बैठे मुकुन्द से कहा, "पास ही शायद कोई जलप्रपात है ?"

"जी हां, राजमाता !"

"उस के पास डोली रुकवा कर भोजन की तैयारियां की जाएं।"

"जो आज्ञा।" घोड़े को एड़ लगा कर मुकुन्द आगे चला गया। सामने पांच घुड़सवारों की एक कतार चल रही थी। बीच के घुड़सवार ने शिवाजी का सूरजमुखी झण्डा उठा रखा था। मुकुन्द ने उन घुड़सवारों को जलप्रपात की ओर बढ़ने की सूचना दी, फिर वह डोली की तरफ लौटने लगा। दूर से उस ने देखा कि हीरोजी का घोड़ा सोयराबाई की बगल से चल रहा है।

डोली के परदे की ओर झुक कर हीरोजी बातें कर रहा था। मुकुन्द के पास आते ही वह बोला, "राजमाता चाहती हैं, भोजन के पश्चात् थोड़ा टहलने का कार्यक्रम रहे।"

"अवश्य," मुकुन्द ने कहा, "यह जलप्रपात अपने सौन्दर्य के लिए प्रसिद्ध है।"

जलप्रपात का शोर उभरा। सोयराबाई ने डोली से झांका। दूर एक काली चट्टान दिखाई पड़ी जिस की चोटी से पानी की पतली, फेनिल धारा गिर रही थी। गीली चट्टान धूप में चमक रही थी। आस-पास की भूमि हरियाली से पटी हुई थी। वृक्षों पर चिड़ियों का शोर मधुर लग रहा था।

भोजन की समाप्ति के बाद हीरोजी, मुकुन्द और सोयराबाई, केवल ये तीनों एक पगडण्डी पर चल पड़े। हीरोजी ने मुकुन्द की ओर गहरी दृष्टि फेंकी, "राजकुमार सम्भाजी का नजरबन्द होना ठीक रहा या नहीं ?"

"मुझे इस सम्बन्ध में एक बात खटकती है।"

"क्या ?" सोयराबाई ने प्रश्न किया।

"आप ने कहा था कि राजकुमार को आते ही वन्दी नहीं बनाया जाएगा। पहले उन्हें समझाने की कोशिश की जाएगी, वन्दी असफलता मिलने पर ही बनाया जाएगा। हुआ ठीक उल्टा। ज्यों ही वह आए, पहरा विठा दिया गया। अगर येसूबाई बीच में न होतीं तो राजकुमार का क्रोध वश में लाना असम्भव रहता।"

"मैं ने सोचा था, तुम्हें खटकने वाली बात काफी बड़ी होगी लेकिन देखता हूं, छोटी-छोटी बातों से परेशान होने की तुम्हारी आदत अभी गई नहीं है।" हीरोजी मुस्करा पड़ा, "सम्भाजी को आते ही क्यों पहरे में डाल दिया गया, पहले उन्हें समझाया क्यों न गया, आदि प्रश्न तब उठते हैं जब सम्भाजी को समझा सकने की सम्भावना होती। उन के बारे में जो सूचनाएँ प्राप्त होती रही थीं, उन से मैं ने और राजमाता ने यही निष्कर्ष निकाला कि उन्हें समझाना व्यर्थ है। समझाने की कोशिश करने पर वह सावधान हो जाते और शायद पहरा विठाने से पहले ही पन्हाला छोड़ना चाहते। इसी से ज्यों ही वह आए, नजरबन्द कर लेना हम ने कहीं उचित समझा।"

"हूं," मुकुन्द दूसरी ओर देखने लगा।

"पतन की खाई में जो एक बार गिरा, गिरा। वह बाहर नहीं आ सकता।" सोयराबाई ने कहा।

"मेरा मत विपरीत है।" मुकुन्द ने विरोध किया, "पतन के बाद उत्थान अवश्य होता है। बल्कि ऐसा उत्थान ज्यादा स्थायी होता है क्योंकि पतन का वह अनुभव व्यक्ति की विवेक-बुद्धि को तीक्ष्ण कर देता है।"

"अपना-अपना मत है, मैं ऐसा नहीं सोचती।"

"आप ठीक कहती हैं—अपना-अपना मत है।"

"तुम पिछले कुछ दिनों से कुछ असन्तुष्ट लग रहे हो।"

"मैं ? ...नहीं।"

"क्यों हीरोजी, आप को मुकुन्द में कोई परिवर्तन दृष्टिगोचर नहीं होता ?"

"होता है, बल्कि मैं भी पूछने ही वाला था कि बात क्या है। किसी से आंखें तो नहीं लड़ा बैठे, मुकुन्द जी ?" हीरोजी शैतानी से मुस्कराया। मुकुन्द को आश्चर्य हुआ। एक उच्च सेनाधिकारी, वह भी हीरोजी जैसा अकड़ कर चलने वाला, किसी अंगरक्षक से ऐसा प्रश्न करे ?

"नहीं।" मुकुन्द ने अपना आश्चर्य व्यक्त न होने दिया और कुछ-कुछ झेंपने का अभिनय किया। सोयराबाई खिलखिला पड़ी, "पुरुष भी 'नहीं' कह कर 'हां' कह सकते हैं, मैं ने पहली बार देखा। किसी से आंखें नहीं लड़ी हैं तो लड़ जाएंगी। क्यों मुकुन्द, अभी तुम्हें जो वेतन मिलता है, उस का दुगुना मिलने लगे तो विवाह कर के तुम ठाठ से नहीं रह सकते ?"

वार्तालाप में इतनी आत्मीयता क्यों भरी जा रही है, यह मुकुन्द की समझ से बाहर की बात थी। कोई अप्रत्याशित प्रस्ताव रखा जाने वाला है, किसी रहस्य पर से परदा उठने वाला है—आत्मीयता इस की भूमिका तो नहीं ? मुकुन्द के मन में कौंध-सी हो आई।

फिर उस का दिमाग झनझनाने लगा। झनझनाहट इस की नहीं थी कि परदा उठने पर जाने कौन-सा रहस्य सामने आएगा। किसी की याद की थी यह झनझनाहट···मीठी, कड़वी, प्रिय, अप्रिय, मधुर और दुःखदायी याद···भावावेग का ज्वालामुखी मन के भीतर ही बुझा कर स्वाभाविक हंसी के साथ वह बोला, "मुझ में इतनी रुचि लेने के लिए आभार। मुझे अकेले रहने की स्वतंत्रता से बहुत मोह है।"

"विवाह से पहले सब यही कहते हैं।" सोयराबाई गम्भीर हुई, "ज्यों ही विचार पक्का हो, बताना। तरक्की हो जाएगी।"

"एक और बात बताओ, मुकुन्द," तुरन्त हीरोजी ने पूछा, "शिवाजी महाराज के बाद अगर सम्भाजी को शासन मिला, क्या राज्य में तबाही न फैल जाएगी ?"

मुकुन्द चौंक कर भी न चौंका, "तबाही ?"

"हां, तबाही।" हीरोजी चलते-चलते रुक गया और आकाश की ओर देखने लगा, मानो वहां भविष्य की घटनाओं के दृश्य उभरे हुए हों। जलप्रपात का शोर पार्श्व की गहराई में धुंधला हो गया था। चिड़ियों की चहचहाहट के टुकड़े हवा में उतरा रहे थे।

"राजकुमार मुगल शिविर में भ्रष्ट हो चुका है। सत्ता मिलने पर यह मराठा शासन छिन्न-भिन्न कर देगा। यह कोने-कोने से सुन्दरियां मंगवाएगा और उन्हीं में डूब जाएगा। वीर शिवाजी के शासन का भविष्य अंधकारमय है।" हीरोजी का स्वर भावुक था। सोयराबाई ने राहत पाने के लिए एक बार खखारा।

"ऐसा नहीं होगा। अगर ऐसा हुआ तो···" मुकुन्द समझ न पाया कि वाक्य किस तरह पूरा करे।

सोयराबाई ने पगडण्डी का मोड़ पार किया और कहा, "अगर होने वाला हो, तो भी हम न होने दें।"

"कैसे ?" मुकुन्द उत्सुकता से आगे आया।

सोयराबाई चुप्पी साध गई। हीरोजी भी चुप था। मुकुन्द अकुलाने लगा, "राजमाता, आप कुछ कह रही थीं ?"

सोयराबाई के कदम रुके। धीमे स्वर में वह बोली, "देखो मुकुन्द, यह न सोचना कि मैं अपना स्वार्थ देख रही हूं; और यह भी न सोचना कि मैं और हीरोजी कोई षड्यन्त्र रच रहे हैं। हम केवल तुम्हारी सलाह लेना चाहते हैं। भूल जाओ कि मैं राजाराम की मां हूं और भूल जाओ कि मैं तुम्हारी राजमाता हूं। हम सब मराठों के शुभचिंतक हैं। बताओ, सम्भाजी की जगह अगर राजाराम को शासन मिले तो कैसा रहे ?"

"लेकिन राजमाता, अभी वह छोटे हैं। केवल नौ वर्ष के।"

"उम्र से क्या होता है ! जब तक वह बड़ा नहीं हो जाएगा, उस के नाम पर सारा काम मैं सम्भालूंगी।"

मुकुन्द काफी देर तक विचारमग्न रहा। फिर उस का चेहरा खिल

उठा, "मैं आप से सहमत हूं।"

"शाबाश! काफी समझदार हो।" हीरोजी ने उस की पीठ थपथपाई।

"अब हमें लौटना चाहिए। काफी दूर तक आ चुके।" सोयराबाई का स्वर सन्तुष्ट था।

वापसी में इन लोगों में ज्यादा बातचीत न हुई। मुकुन्द की नसों का तनाव बढ़ गया था। बहुत प्रयास के बाद वह अपना चेहरा स्वाभाविक रख पा रहा था। डोली करीब आई तो सोयराबाई ने मुकुन्द की ओर मुस्कान फेंकी, "मैं लगभग एक माह में लौटूंगी। हीरोजी से मिलते रहना।"

"जी!" मुकुन्द भी मुस्करा उठा।

"मैं उत्तराधिकार के बारे में राजाराम के पिताजी से बात करूंगी। हमारी आज की बातचीत गुप्त रहे। समझे न?"

हीरोजी ने आगे बढ़ कर डोली के कहारों को हांक लगाई, "उठो-उठो, राजमाता आ गईं। आराम बहुत हो चुका।"

कहार उठे। घुड़सवारों ने घोड़े सम्भाले।

सोयराबाई के साथ हीरोजी को रायगढ़ तक जाना था और मुकुन्द को बीच राह से ही पन्हाला लौट जाना था। वह कुछ दूरी तक डोली के साथ चला, फिर सोयराबाई से बोला, "अनुमति दें तो यहां से वापस लौटूं?"

"हां-हां, क्यों नहीं," सोयराबाई ने समझौते के स्वर में कहा, "अपने समाचार भिजवाते रहना।"

७

सोयराबाई को रायगढ़ पहुंचा कर हीरोजी वापस आया तो मुकुन्द काफी दुबला हो गया था। उसे देखते ही हीरोजी ने पहला सवाल किया, 'मुकुन्दजी, बीमार थे क्या ?"

"नहीं।" मुकुन्द ने कहा। हीरोजी को अपने मन की पीड़ा कैसे बता दे वह ! गुल की याद घुन की तरह उसे खोखला कर रही थी। हर रात उस के कमरे में आग का तूफान उठता और धुआं घुटता। हीरोजी यह सब जान ले, तो भी वह शायद कोई मदद नहीं कर सकता था।

और हीरोजी कैसे जान ले यह बात ! ज्यों-ज्यों वह मुकुन्द से आत्मीयता बढ़ा रहा था, मुकुन्द उस के प्रति चौकन्ना होता जा रहा था।

उस रात हीरोजी ने उस के कमरे का दरवाजा ठेला तो वह खुल गया। भीतर से कुण्डी नहीं लगी थी। 'लगाना भूल गया होगा, हीरोजी ने भीतर प्रवेश किया। वह एकदम चौंक गया। मुकुन्द धुत पड़ा था और कमरे में थी शराब की बू। मुकुन्द पीता है ? हीरोजी ने दरवाजे उढ़का दिए। कोने में ढीबरी जल रही थी जिस के पीलेपन में मिट्टी के पात्र के टुकड़े बिखरे हुए थे। टुकड़ों के आकार से लगता था, कोई छोटी मटकी यहां फूटी है। 'मटकी में लाया होगा।' उस ने मुकुन्द की ओर देखा, जिस ने कसमसा कर करवट बदली।

"मुकुन्द ?" उस ने हल्के स्वर में पुकारा।

मुकुन्द का हाथ उठा और फट की आवाज के साथ फर्श पर गिरा। वह औंधा हो कर बिस्तर को भींचने लगा। हीरोजी उस के ऊपर झुका। मुकुन्द फुसफुसा रहा था, "गुल···मेरी गुल···"

नाम, जो हीरोजी ने पहली बार सुना। उस ने भौंहें सिकोड़ीं। वह मुकुन्द से एक महत्वपूर्ण बात करने आया था, पर उसे होश होता तब

न ! यह गुल कौन है ? शराब…क्या मुकुन्द को इसकी आदत है ? शिवाजी जैसे शराब के घोर विरोधी के राज्य में शराब प्राप्त करना… हीरोजी ने मुकुन्द को टटोला, लेकिन उस ने आँखें खोलने तक से इन्कार कर दिया। हीरोजी बाहर निकला। गलियारा पार कर वह सीढ़ियाँ उतरने लगा। पहरेदारों के अभिवादनों का उत्तर देता हुआ वह महल के बगीचे में आया। उस के मस्तिष्क में विचारों के ज्वार उठ रहे थे, सल्तनत ने कहीं तो पहरेदारों की सहानुभूति खरीद ली है। देशमुखों ने उन पर ऐसा जादू डाला है कि वह अपने सारे कर्तव्यों को भूल चुका है। यदि यही स्थिति रही तो उस को सल्तनत को कोंकण से उखाड़ते देर न लगेगी। तब राजाराम को सिंहासन कैसे मिलेगा ?'

वह बगीचे के कुंजों में टहलता रहा। महल के पहरेदार मुकुन्द का जितना आदर करते हैं, वह उन्हीं तरह देख-भाल हुआ था। उस दिन की घटनाओं के पश्चात् हीरोजी को अनुभव तो हुआ था कि मुकुन्द का झुकाव सल्तनत की ओर कम है, परन्तु इसी कारण काम बिगड़ सकता था। मुकुन्द का झुकाव सल्तनत की ओर से धीरे-धीरे हट कर राजाराम की ओर हो जाए—इस के बाद असंभव की कल्पना की जा सकती थी।

सहसा !

हीरोजी ने मुड़ कर देखा। बगीचे के दूसरे छोर पर उस ने सल्तनत की सिपाहियों की भीड़ देखी। वह ठिठकी नहीं थी।

'तो यह हीरोजी…' कह कर वे मुस्कराये, 'कुछ लोगों को यह भीड़ हवेली की भीड़ से क्या बतायेगी ?'

हूँ [illegible] की [illegible], [illegible] का [illegible] था— और इस से [illegible] हो सके [illegible] था, [illegible] हैं। [illegible] के प्रति [illegible] का [illegible] बनाना। [illegible] उस की [illegible] और [illegible] राजसत्ता के [illegible] की [illegible] बनाई जाएँ ?

हीरोजी अच्छी तरह जानता था कि सम्भाजी सिंहासन पर आते ही उसे अवश्य पदच्युत कर देगा। सिंहासन यदि राजाराम को मिलता है तो पदच्युत होना तो दूर, पदोन्नति हो जाएगी। सोयराबाई ने हीरोजी से वादा किया था कि वह उसे प्रधान मन्त्री बना देगी। अगर मुकुन्द तैयार हो जाए तो'''सम्भाजी के पहरेदार अपने-आप हम से मिल जाएंगे।' टहलते-टहलते हीरोजी के कदम बार-बार तेज होने लगते, 'मुकुन्द को मिलाए बिना सम्भा की हत्या असम्भव है। मुकुन्द के सामने एकाएक प्रस्ताव रखने में खतरा भी है। कहीं वह बिदक कर सम्भा को ही सावधान न कर दे।'

आज वह प्रस्ताव रखने की पूर्वभूमिका तैयार करने के लिए ही आया था, लेकिन मुकुन्द था नशे में धुत।

ढम-ढम-ढम'''कड़िक-कड़िक'''ढोल-नगाड़े पीटे जा रहे थे। दोपहर का सूरज आग उगल रहा था। हीरोजी और मुकुन्द के वस्त्र पसीने से तर थे। लू में उन के बाल बिखर गए थे। कुछ सैनिकों के साथ वे शिकार खेलने निकले थे। दस-दस की टोलियां ढोल, नगाड़ों, डिब्बों आदि के साथ दूर-दूर तक फैल गई थीं और हांका कर रही थीं। ढम-कड़िक्क'''ढम-कड़िक्क'''

फुर्तीले हिरनों का एक झुण्ड सामने से निकला। मुकुन्द का घोड़ा दौड़ा लेकिन अकस्मात् रुक गया। हीरोजी ने पास आ कर पूछा, "रुके क्यों ?"

"शिकार न कर सकूंगा।"

"क्यों ?"

"मुझे अजीब-सा लग रहा है।" मुकुन्द घोड़े से उतरता हुआ हताशा से बोला। एक दिन वह इसी तरह शिकार खेलने निकला था और भटक कर गुल के गांव जा पहुंचा था'''पुरानी यादें घू-घू कर रही थीं। वह बुदबुदाया, "आप जाइए, मैं कहीं छाया में बैठूंगा।"

"मुकुन्द, तुम शीघ्र ही किसी वैद्य से सलाह लो। जवानी में ऐसे लक्षण ठीक नहीं।" हीरोजी भी घोड़े से उतरा, "शराब तो नहीं पीते?"

"जी?" मुकुन्द चौंका।

"मैं ने पूछा, शराब तो नहीं पीते?"

"नहीं।"

"तब ठीक है। मैं ने सोचा, औरंगाबाद में शायद आदत पड़ गई हो। वहां तो खूब चलती होगी?"

"लड़ाई के दौरान नहीं चलती, वैसे चलती है। मैं उस से दूर रहा।"

"क्यों?"

"बस, दूर रहा इसलिए रहा।"

"फिर तो?"

"आप शिकार पर नहीं जा रहे हैं क्या?" मुकुन्द अपने घोड़े को खींचता हुआ एक छाया की ओर बढ़ा।

"नहीं! इस इलाके में दो शेर थे, जिन्हें शिवाजी मार चुके। अब केवल हिरन, सांभर, सियार वगैरह बचे हैं। मेरे लिए उन का शिकार तुच्छ है। उस में सैनिकों को दिलचस्पी लेने दो। ऐसे शिकार से तो अच्छा है, मैं तुम्हारे साथ बातें करता रहूं। तुम्हारा भी मन लगा रहेगा।"

मुकुन्द भी अकेलापन नहीं चाहता था। बोला, "आइए! वैसे आप को मेरे शराब पीने का शक कैसे हुआ?"

"शक? शक कैसा? मैं ने तो यों ही पूछा था।" हीरोजी मुस्कराया, "और मान भी लो कि तुम पीते हो। इस में बुराई क्या है? लेकिन महल में तुम्हें काफी दिक्कत होती होगी। पन्हाला में शराब चोरी से बिकती है। बेचने वाले उन्हें तो बेचते नहीं जो महल में काम करते हों। उन्हें पकड़े जाने का डर लगता है।"

मुकुन्द जमीन पर लेटा। उस ने पगड़ी उतार कर सिर के नीचे । हीरोजी ने आज पगड़ी नहीं पहनी थी। वह लेटा नहीं, दाहिने थ पर भार दे कर बैठ गया और बोला, "शराब तीन तरह की होती । एक वह, जो पी जाती है। दूसरी वह, जिसे लोग औरत कहते हैं —राजकुमार सम्भाजी की प्रिय शराब...।"

"अब वह ऐसे नहीं हैं।" मुकुन्द ने विरोध किया।

"जो एक बार ऐसा हो गया, उसे फिर से वैसा होने में देर नहीं लगती। तुम ने अभी दुनिया नहीं देखी।"

मुकुन्द चुप रहा।

"और तीसरी शराब है सिंहासन। सिंहासन में दो चीजें शामिल होती हैं। एक धन, दूसरी सत्ता। यह संसार इन्हीं तीन शराबों से बना है।"

"आप ने तो शराब पर खासा अच्छा भाषण दे दिया, मान्यवर!" मुकुन्द मुस्कराए बिना न रह सका लेकिन हीरोजी गम्भीर बना हुआ था, "तीसरी शराब, याने सिंहासन वाली शराब सब से पहले प्राप्त करनी चाहिए। सत्ता और धन अथवा सत्ता या धन मिलने पर दूसरी दो शरा अपने-आप उपस्थित हो जाती हैं। मुकुन्द जी, उन्नति के लिए कई ब भावुकता का दामन छोड़ कर वास्तविकता की शरण लेनी पड़ती है।

लेटा हुआ मुकुन्द कोहनी के बल उठा और बोला, "मैं एक नि दन करना चाहूंगा, यदि आप क्षमा का वचन दें।"

"क्या ?"

"मुझे न केवल आज, बल्कि कई बार लगा है कि आप कुछ चाहते हैं और कहते-कहते रह जाते हैं। भूमिका तो बंधती है, कि आगे नहीं चलती।"

"तुम्हारे सूक्ष्म अध्ययन की प्रशंसा करनी पड़ेगी। हां, मुकु यही है।"

मुकुन्द के माथे पर बल पड़े!

"मैं इस समय सेना-नायक हूं," हीरोजी ने कहा, "लेकिन मेरे जैसे कई सेना-नायक रायगढ़ में हैं। तुम अंगरक्षक हो। तुम्हारे जैसे कई अंगरक्षक अकेले शिवाजी के पास हैं। सोचो, तीसरी धारा हम से कितनी दूर है ! हम उस की झलक तो पाते हैं, लेकिन उसे छू कभी नहीं सकते। हमारा सारा जीवन अभावों में बीत जाएगा, जबकि थोड़े-से प्रयास से ही हमें तीसरी और तीसरी के साथ पहली व दूसरी धाराएँ भी मिल सकती हैं।" वह कुछ रुका, फिर बोला, "अगर सिंहासन सम्भाजी को मिल गया तो मैं कभी प्रधान-मन्त्री नहीं बनूंगा और तुम कभी सेनापति नहीं बनोगे।"

"सेनापति ?"

"हां। राजमाता सोयराबाई ने वचन दिया है कि अगर राजकुमार राजाराम को सिंहासन मिला तो मुझे प्रधान-मंत्री और तुम्हें सेनापति बना दिया जाएगा।"

"सम्भावित पदोन्नति की यह सूचना आप ने पहली बार दी, लेकिन राजमाता राजकुमार राजाराम को सिंहासन दिलाना चाहती हैं, यह मैं उन्हीं के मुंह से और आप ही के सामने सुन चुका हूं। जीवन याने तीन धाराएँ, आप की यह भूमिका बेकार रही।"

"नहीं मुकुन्द, भूमिका आवश्यक थी। मैं इस से आगे भी कुछ कहने जा रहा हूं।"

मुकुन्द की प्रश्नात्मक दृष्टि हीरोजी पर टिकी।

"येसूबाई के प्रयास से सम्भाजी अपने दुर्गुण छोड़ रहा है। शिवाजी यदि उस से प्रभावित हो गए तो राजाराम का हक छिन जाएगा।"

'हक तो पहले सम्भाजी का है।' मुकुन्द ने कहना चाहा पर किसी अज्ञात प्रेरणा से वह चुप रह गया।

"इस का केवल एक उपाय है।" हीरोजी आगे झुका और मुकुन्द के कान में फुसफुसाया, "सम्भाजी का सफाया।"

आनाकानी की औपचारिकता के बाद मुकुन्द तैयार हो गया, "आप

ने इस योजना में मुझे शामिल किया, इस के लिए जितने धन्यवाद दिए जाएं, कम हैं।"

"इस में धन्यवाद देने की कोई बात नहीं है मित्र, यह तो लेना-देना है। सहयोग दो और तीसरी शराब लो।"

"सम्भाजी के चौकीदार चौबीसों घण्टे चौकन्ने रहते हैं।"

"उन्हें विश्वास में लेना तुम्हारा काम है।"

"हां, लेकिन इस में समय लगेगा।"

"समय हर काम में लगता है। हमें जल्दबाजी में खेल बिगाड़ना नहीं है, लेकिन साथ-साथ शीघ्रता भी करनी है।"

"एकाध माह अवश्य लगेगा।"

"हां, पर उस से ज्यादा नहीं।"

"मैं पूरी कोशिश करूंगा।"

"और देखो, मैं जानता हूं कि तुम शराब पीते हो।"

"वह तो मैं आप के भाषण से ही समझ गया था। कभी चोरी से देख लिया होगा।"

"उस के नियमित प्रबन्ध का जिम्मा मेरा। तुम्हें परेशान होने की आवश्यकता नहीं है।"

मुकुन्द ने मुस्करा कर आभार-प्रदर्शन किया।

गुल...
शराब का एक घूंट।
गुल—
दूसरा घूंट।
गुल...
तीसरा, चौथा, पांचवां, छठवां...

"तुम बाहर रहो। हम कुछ गुप्त वार्तालाप करना चाहते हैं।"

मुकुन्द ने परिचारिका को विदा कर दिया और सम्भाजी तथा येसूबाई की ओर देखा, "मालूम है, आप यहां केवल शत्रुओं से घिरे हुए हैं ?"

येसूबाई ने मजाक किया, "मुकुन्दजी, 'इन्हें' तो आप भी शत्रु ही नजर आते हैं। कहते हैं, मुकुन्दजी की आंखों में अविश्वास झलकता है।"

सम्भाजी मुस्कराया, "जो लगता है, कहता हूं।"

"मैं शत्रु नहीं हूं, लेकिन कुछ लोग चाहते हैं कि हो जाऊं।" मुकुन्द ने गम्भीरता से कहा और पिछले दिनों की सारी घटनाएं सविस्तार सुना दीं। येसूबाई आतंकित हो गई।

"मुझे पहले से शंका थी।" सम्भाजी ने कहा।

"मुकुन्दजी, अब क्या होगा ?" येसूबाई ने पूछा।

"जब तक मैं हूं, आप को आंच नहीं आ सकती। हीरोजी ने मुझे एक माह का समय दिया है। इस दौरान हमें कोई उपाय कर लेना चाहिए।" मुकुन्द ढारस बधाता हुआ बोला।

सम्भाजी ने कहा, "अच्छा मुकुन्द, अब तुम जाओ। कल दोपहर को फिर बात करेंगे।"

मुकुन्द उठा, "मैं ने पहरेदारों को विशेष सावधान रहने की सूचना दे दी है। रात को स्वयं मैं गश्त दूंगा। यह हमारे हक में बड़ी अच्छी बात है कि सभी पहरेदार हीरोजी और राजमाता को नापसन्द करते हैं।"

ज्यों ही मुकुन्द दरवाजे से बाहर हुआ, सम्भाजी ने येसूबाई की ओर आंखें उठाईं। येसूबाई गहरी सांस ले कर पलंग पर बैठ गई थी। काफी देर तक दोनों मौन बने रहे। सम्भाजी सप्रयास मुस्कान के साथ बोला, "सोयराबाई मुझे फूटी आंखों नहीं सुहाती थी। अगर वह रायगढ़ न चली गई होती तो अभी—इसी क्षण जा कर मैं उस का गला उतार लेता। फिर जो होता, देखा जाता। हीरोजी भी आज सुबह भूपालगढ़ चला गया है, वरना उस का गला तो एक झटके में उड़ जाता। बहुत

मोटा नहीं है।"

येसूबाई ने थूक निगला। आज तक उस ने किसी की जान निकलते नहीं देखी थी, न वह देखना ही चाहती थी। पति की इन बातों ने उसे सिहरा दिया।

"येसू, बताओ, अब यहां से भाग चलना ठीक है या नहीं? या और कोई उपाय है?"

वह चुप रही।

"अब भी यहीं रहना चाहती हो?" इस बार सम्भाजी के स्वर में व्यंग्य का पुट था।

"भागने पर कुल की कितनी बदनामी होगी?"

"और राज्य के उत्तराधिकारी का गला कटने पर नहीं होगी?" सम्भाजी हंस पड़ा, "देखो येसू, इस परिस्थिति के दो ही अन्त हो सकते हैं। या तो मेरी हत्या हो या सोयराबाई और राजाराम की। दोनों पक्ष अब जिंदा नहीं रह सकते।"

"एक उपाय और है।"

"क्या?"

"सारा झगड़ा सिंहासन का है। हम कह देते हैं कि हमें सिंहासन नहीं चाहिए।"

"क्यों नहीं चाहिए?" सम्भाजी उग्रता से बोला। येसूबाई के पास इस का जवाब नहीं था।

"लेकिन भाग कर हम आप के पिताजी के रोष के पात्र बनेंगे।"

"रोष के पात्र तो इस समय भी हैं। मैं कैद हूं। मेरे साथ तुम भी कैद हो। केवल एक मुकुन्द हमारा आदमी है। रही पहरेदारों के अपने साथ होने की बात, उन्हें पैसों का लालच हमारे दुश्मन भी बना देगा। यहां मेरे हाथ कटे हुए हैं। मेरा सैनिक दस्ता औरंगाबाद में है। एक बार वहां पहुंचने दो। फिर सब की खबर लूंगा।"

"नहीं, मैं आप को औरंगाबाद नहीं जाने दूंगी।"

"क्यों? डरती हो कि मैं फिर से पतित हो जाऊंगा?"

येसू ने सिर हिला कर हां कहा। सम्भाजी मुस्कराया। उसे बांहों में समेट कर बोला, "जब तक तुम मेरे साथ हो, किसी और का जादू थोड़े ही चलेगा !" उस का गला भर्रा आया, "सच येसू, तुम पास रहती हो तो लगता है, मेरी ताकत दुगुनी हो गई है और मैं बड़े-से-बड़ा आघात सह जाऊंगा। लेकिन ज्यों ही तुम दूर होती हो, मैं पतन की खाई में छलांग लगा देता हूं। तुम्हारा अभाव सहा नहीं जाता तो शायद मन का विद्रोह ही है जो इस तरह प्रकट होता है।"

"मैं ह.. ।' के शिविर में कैसे रह सकूंगी ?"

"शुरू में अटपटा लगेगा लेकिन बाद में आदत पड़ जाएगी। फिर मैं जो तुम्हारे साथ रहूंगा।"

"शायद आप के पिताजी हमें औरंगाबाद से बुलवा लें।"

साथ भाग चलने की स्वीकृति येसूबाई ने इस वाक्य से दे दी थी। सम्भाजी ने उष्णता से उस का चुम्बन लिया, "तुम कितनी भोली हो ! उन का बुलौवा नहीं आएगा और यदि आएगा भी तो हम नहीं जाएंगे।" उस की भौंहें सिकुड़ कर जुड़ गईं, "येसू, बहुत बड़ा तूफान आने वाला है..."

षड्यन्त्र की सूचना देने के बाद मुकुन्द एकाएक ही सम्भाजी और येसूबाई के बहुत करीब आ गया था। येसूबाई मुकुन्द के कमरे में नहीं जाती थी, न सम्भाजी जाता था। मुकुन्द से कुछ पूछने इत्यादि की आवश्यकता होती तो किसी को भेज कर उसे बुलवा लिया जाता। लेकिन आज ये दोनों उस के कमरे की ओर चले गए। कमरा भीतर से बन्द था। सम्भाजी ने दरवाजे पर थाप दी। जवाब न आया। उस ने दूसरी बार थाप दी। कोई जवाब नहीं।

उसी समय दूर से हीरोजी आता दिखाई पड़ा। भूपालगढ़ से वह आज सुबह ही लौटा था। सम्भाजी और येसूबाई को देख कर वह मुस्कराया और बोला, "नमस्कार ! स्वास्थ्य कैसा है ?"

"आप से अच्छा।" सम्भाजी ने व्यंग्य से कहा। हीरोजी एक क्षण के लिए भौंचक रह गया, फिर हंसा, "हां, मुझ से अच्छा अवश्य होगा। भूपालगढ़ में खजाने की जांच-पड़ताल इस बार काफी कठिन रही। चेहरे से क्या मैं थका मालूम पड़ता हूं ?"

"चेहरे से नहीं, आंखों से।"

"चेहरे से मेरा तात्पर्य आंखों से ही था। मुकुन्द को बुलाने आप स्वयं..."

"हां, सोचा, इसी बहाने गलियारे में टहल आएं। क़ैदी को महल से निकलने की आज्ञा नहीं है।"

"मैं आप की लाचारी समझ सकता हूं।"

सम्भाजी ने जरा नाराजगी के साथ काफी जोर से थाप दी। भीतर से आवाज आई, "कौन ?" येसूबाई की आंखें फैलीं, "भीतर मुकुन्दजी नहीं हैं। यह आवाज उन की नहीं हो सकती।"

"खोलो मुकुन्द !" सम्भाजी ने ऊंचे स्वर में कहा।

कुण्डी की खड़खड़ाहट हुई और दरवाजा खुल गया। सामने बिखरे बालों के साथ मुकुन्द खड़ा था, "आप ? यहां ?"

"हां। काफी देर से दरवाजा भड़भड़ा रहा हूं।" सम्भाजी भीतर घुसा, "सोचा, मुकुन्दजी के ठाठ देख आएं।"

येसूबाई और पीछे-पीछे हीरोजी अन्दर आए।

"आप कब लौटे ?" मुकुन्द ने हीरोजी से पूछा।

"आज ही सुबह।"

मुकुन्द ने एक कटोरे में से तीन-चार इलायचियां निकाल कर अपने मुंह में डालीं, और कहा, "क्षमा कीजिएगा, मुझे झपकी आ गई थी। ज्यादा परेशानी तो नहीं हुई ? बैठिए !"

सब ने एक-एक कुर्सी ली।

येसूबाई ने पूछा, "मुकुन्दजी, इलायची की आदत कब से डाल ली ?"

मुकुन्द झेंपा, "आदत तो नहीं है, कभी-कभी ले लेता हूं। आप

लेंगी ?" उस ने कटोरा येसू की ओर बढ़ा दिया। येसू ने एक दाना उठाया, "आप के कमरे में अजीब-सी महक है।"

"नहीं तो।" मुकुन्द ने चौथी इलायची मुंह में डाली।

"मुकुन्द !" सम्भाजी ने आगे झुक कर कठोरता से कहा, "तुम ने शराब पी है।"

येसूबाई चौंक गई। मुकुन्द के मुंह से एक शब्द न फूट सका। वह नीचे देखने लगा। इतनी आसानी से स्वीकृति ? हीरोजी को आश्चर्य हुआ। [illegible] "आप[illegible]

कुछ पलों [illegible] !" असहनीय चुप[illegible] एकाएक ही मुकुन्द ने उठ कर अलमारी खोली। उस के हाथ में एक छोटी मटकी थी, जिस का मुंह कपड़े से बन्द था। "कमरे में बू फैलेगी, क्षमा चाहता हूं, लेकिन इसे सब के सामने फूट जाना चाहिए।" आगे बढ़ कर उस ने मटकी को मोरी के छेद के पास रखा और पैर से दबा कर तोड़ दिया।

"मैं रोज सोचता था, आज छोड़ूंगा, कल छोड़ूंगा, लेकिन छूटती नहीं थी। शायद मन का चोर चाहता था कि कोई आ कर रंगे हाथों पकड़े और मैं सब के सामने छोड़ूं। तब फिर से शुरू करने में डर तो लगे।" वह मुस्कराया।

"छोड़नी थी तो शुरू क्यों की ?" बच्चों की तरह येसूबाई ने पूछा।

"शुरू क्यों की ? यों ही कर दी। पहले चखने के लिए पी, फिर थोड़ी और पी, फिर पीने लगा।" मुकुन्द ने कहा और सोचा, 'कण्डा भीतर ही भीतर जलता है। बाहर से केवल राख दिखाई पड़ती है। कण्डा किसी को बताता थोड़े ही है कि मैं जल रहा हूं।'

जब येसूबाई और सम्भाजी विदा होने लगे तो हीरोजी भी उन के साथ-साथ चला गया, लेकिन कुछ ही देर में लौटा और व्यंग्य से बोला, "मुकुन्दराव, संन्यासी हो गए ? सचमुच छोड़ दी ?"

मुकुन्द हंसा, "आप क्या कहते हैं श्रीमन्, यों थोड़े ही छूटती है ! येसूबाई की भावुकता का लाभ उठा रहा था। भूपालगढ़ से लाए हैं

क्या ?"

"हां ।" हीरोजी मक्कारी से मुस्कराया, "खास तुम्हारे लिए । रात को कुल्हड़ पहुंचवा दूंगा ।"

"धन्यवाद ! आभारी हूं ।"

हीरोजी को विदा कर के उस ने दरावाजा भीतर से बन्द किया और बुदबुदाया, "खास तुम्हारे लिए ! रात को कुल्हड़ पहुंचवा दूंगा ! मूर्ख !"

उसी दिन शाम को एक सेविका ने मुकुन्द की ओर पता म मुड़ा एक कागज बढ़ाया । मुकुन्द ने उसे खोला । लिखा था, 'आदरणीय चाचाजी, आप मुझे पहचानते न होंगे लेकिन मैं आप को पहचानता हूं । आप मेरे दूर के चाचा लगते हैं । मैं आप से मिलने के लिए बहुत उत्सुक हूं ।' मुकुन्द को आश्चर्य हुआ । जहां तक उसे मालूम था, उस का कोई भतीजा नहीं था । उस ने पत्र के नीचे देखा । वहां किसी आनन्दराव ने हस्ताक्षर किए थे । वह आगे पढ़ने लगा, 'आशा है, आप मुझे निराश नहीं करेंगे । मैं पन्हाला की उत्तरी सराय में ठहरा हुआ हूं । यदि सम्भव हो तो आज रात को वहीं मिलें ।'

"तुम्हें यह किस ने दिया ?" उस ने सेविका की ओर आंखें उठाईं ।

"उत्तरी सराय में मेरा भाई नियुक्त है । सराय के एक आदमी ने उस से मालूम कर लिया कि मैं यहां काम करती हूं । उस ने उस के जरिए यह भिजवाया और कहलवाया कि आप के लिए है ।"

"मेरा नाम ले कर कहलवाया था ? कहीं ऐसा तो नहीं कि किसी और का पत्र मुझे दे रही हो ?"

"नहीं। पत्र आप ही के लिए है।"

"तुम ने पत्र भिजवाने वाले को देखा?"

"नहीं।"

वह विदा हुई। मुकुन्द सोच में पड़ा। अन्त में उस ने निर्णय लिया कि उत्तरी सराय जा कर इस व्यक्ति को देखा अवश्य जाए।

शाम झुकी। मुकुन्द तलवार, ढाल और कटार धारण कर के तैयार हो गया। "आवश्यक काम से बाहर जा रहा हूं, शीघ्र ही लौटूंगा। सावधान रहना!" चौकीदारों से कह कर वह सीढ़ियां उतरा और अस्तबल में जा कर घोड़ा खोलने लगा।

उत्तरी सराय के दरवाजे पर उतर कर वह रखवाले की कोठरी की ओर बढ़ा। रखवाला गन्दी अचकन पहन कर हुक्का गुड़गुड़ा रहा था। पास ही दो दीपक अपनी पीली आंखें उघाड़ कर अन्धेरे को घूर रहे थे।

"यहां कोई आनन्दराव ठहरे हुए हैं?"

रखवाले ने मुकुन्द की राजकीय पोशाक देखते ही खड़े हो कर नमस्कार किया, "जी हां, इधर आइए!" दीपक उठा कर उस ने चमरौधों में पैर डाले। वह एक कोठरी के पास रुका। "आनन्दराव जी!" उस ने पुकारा और दरवाजे की सांकल खड़काई, "आनन्दराव जी हैं?"

दरवाजा खोलने वाले ने मुकुन्द को देखते ही नम्रता से पूछा, "आप, मुकुन्दराव जी?"

"जी हां।"

"मैं धन्य हुआ। नमस्कार! मुझे ही आनन्दराव कहते हैं। आ जाइए!"

मुकुन्द भीतर गया। उसे लगा, यह आवाज कहीं सुनी हुई है। रखवाला लौट गया। आनन्दराव ने भीतर से दरवाजे की कुण्डी चढ़ाई। "कहिए चाचाजान, पहचाना या नहीं?" उस ने नकली दाढ़ी-मूंछ उतार कर रख दी। वह कवि कलश था।

"आप?"

"हां, मैं। तुम अंगरक्षक क्या हुए, किसी खूबसूरत और डरपोक लड़की की तरह चौबीसों घण्टे दीवारों में रहने लगे हो। तुम से मिलने या खत भिजवाने के लिए मैं बीस दिनों से कोशिश में हूं।"

"लेकिन आप ने यह नाटक..."

"करना पड़ा। मुझे एक शक है। येसूबाई ने सम्भाजी को मेरे खिलाफ जरूर भड़काया होगा। मैं वेश्याओं और राजकुमारों का भरोसा नहीं करता। पत्नी के बहकावे में आ कर राजकुमार गुरु की हत्या भी करवा सकता है। इसी से मैं छिप कर आया।"

"आने का प्रयोजन ?"

"बताता हूं, बताता हूं, जल्दी क्या है ? लो, अखरोट खाओ।" उस ने झोली में से अखरोट निकाल कर मुकुन्द की ओर लुढ़का दिए। एक अखरोट को बाएं हाथ से पकड़ कर उस ने उस पर दाहिनी मुट्ठी पछाड़ी। अखरोट टूटा। भीतर का मेवा निकाल कर कवि कलश ने आंखें चमकाईं, "खुदा भी कई बार कमाल करता है। देखो, इस मेवे का आकार बिल्कुल दिल जैसा है।" मुकुन्द के होंठों पर मुस्कान आई।

"पहले यह बताओ कि सम्भाजी के हालचाल क्या हैं ?"

"बहुत अच्छे।"

" 'अच्छे' को अच्छी तरह समझाओ।"

"येसूबाई ने उन की बुरी आदतें सुधार दी हैं।"

"आदत कोई बुरी नहीं होती। मैं जानता था, येसूबाई ऐसा करेगी। शिष्य महोदय कभी गुरु को याद करते हैं ?"

"मेरे सामने कभी आप की चर्चा नहीं हुई।"

"मुझे हार्दिक खेद हुआ सुन कर, लेकिन जाने दो। भुलक्कड़ों में राजकुमारों की गणना होती है। मुकुन्द, मेरा एक काम करवा दोगे ? मैं सम्भाजी से मिलना चाहता हूं।"

"क्यों ?" कवि कलश का यों छिप कर आना बिना गहरे कारण के नहीं हो सकता, मुकुन्द जानता था।

"गुरु और शिष्य में कई बातें गुप्त भी हो सकती हैं।"

"गुरु और शिष्य की गुप्तता ऐसी नहीं होती कि उन के प्रिय पात्र न जान सकें।"

"तुम अपने को सम्भाजी का प्रिय पात्र समझते हो?"

"शुरू से रहा हूं। इन दिनों तो विशेष हूं।"

"बधाई!" कवि कलश आगे झुका, "पन्हाला में सम्भाजी सुरक्षित हैं?"

"मतलब?"

"देखो, हम अनावश्यक विवाद न करें। मुझे रायगढ़ के गुप्तचरों से समाचार मिले हैं कि सोयराबाई राजाराम को उत्तराधिकार दिलाने के फेर में है। मैं राजकुमार सम्भाजी को औरंगाबाद ले जाने के लिए आया हूं। पन्हाला में उन का वध हो सकता है।"

काफी देर तक दोनों खुसपुसाते रहे।

"मेरे साथ आओ!" मुकुन्द ने एक पहरेदार को इशारा किया। फिर वह सम्भाजी के कमरे की ओर बढ़ा। पिछले दिनों हीरोजी द्वारा दिए गए धन के लालच के कारण इन पहरेदारों का रुख कुछ और हो चला था। पहरेदार पीछे-पीछे चला। आधी रात का समय झींगुरों की फीकी तान से रहस्यमय हो उठा था। आकाश में चांद नहीं था। थे केवल सितारे; मुलमुलाते, झपकते सितारे...।

महल की दीवार में बने एक खांचे में मशाल लगी थी। उस का धुआं छत की ओर बह रहा था। ये दोनों उस के पास से गुजरे। उन की छायाएं क्रमशः लम्बी हो कर धुंधलेपन में खो गईं।

सम्भाजी के कमरे का दरवाजा बन्द था। सामने खड़ी दो सशस्त्र भीलनियों ने मुकुन्द को देखते ही अभिवादन किया। मुकुन्द ने रोशनदान की ओर पलकें उठाईं। भीतर जल रहे दीये का उजाला उस की आंखों में प्रतिबिम्बित हुआ।

"राजकुमार को सूचना दो कि मुकुन्द आया है।"

एक भीलनी दरवाजा ठेल कर भीतर गई और कुछ पलों में लौट आई, "जाइए, महानुभाव !"

"आओ !" मुकुन्द ने पहरेदार से कहा। दोनों भीतर घुसे। पहरेदार आश्चर्य में था कि यहां उस का क्या काम है लेकिन इस आश्चर्य में आशंका मिली हुई नहीं थी। मुकुन्द ने दरवाजा उढ़का दिया। दो-तीन परदे पार हुए थे कि अचानक पहरेदार के नाक-मुंह किसी मजबूत हथेली ने दबोच लिए। एक परदे की ओट से सम्भाजी निकल आया था। कनपटी की विशेष नस पर पड़े मुकुन्द के ताकतवर मुक्के ने पहरेदार को तत्क्षण बेहोश कर दिया।

कुछ देर बाद अकेला मुकुन्द बाहर आया। दरवाजा उढ़का कर वह गलियारा पार कर गया। "सुनो, तुम से एक काम था।" उस ने एक और पहरेदार को बुलाया। दोनों वापस लौटे। भीलनियां हट गईं। दोनों ने कमरे में प्रवेश किया। एक परदा पार हुआ, फिर दूसरा, फिर तीसरा'''और यह पहरेदार भी उसी तरह बेहोश हो कर जमीन पर लोट गया।

आतंकित येसूबाई सिहरती हुई एक ओर खड़ी थी। सम्भाजी और मुकुन्द ने झटपट दोनों पहरेदारों के कपड़े उतारे, सम्भाजी ने उन कपड़ों का एक जोड़ा येसूबाई की ओर उछाल दिया। येसूबाई ने झुक कर उसे उठाया। वह एक आड़ में चली गई। कपड़ों का दूसरा जोड़ा सम्भाजी पहनने लगा।

इतनी घबराई होने पर भी येसूबाई किसी पहरेदार की ही अदा से सधे कदम उठा सकी जिस से सम्भाजी और मुकुन्द की चिन्ता काफी कम हो गई। येसूबाई के लम्बे बाल पगड़ी के नीचे आ गए थे। दरवाजा खोल कर तीनों बाहर निकले। मशालों के कांपते उजाले के साथ चल रही अंधेरे की आंखमिचौनी ने उन के चेहरों को छिपा दिया था। आज मुकुन्द ने जान-बूझ कर कम मशालें जलवाई थीं।

सीढ़ियां उतर कर तीनों खुले में आ गए। मुकुन्द ने यहां के रक्षकों से कहा, "राजकुमार के सिर में दर्द उठा है। हम वैद्य को बुलाने जा रहे हैं। सावधान रहना !"

"जी !" रक्षक झुके।

तीनों अस्तबल में पहुंचे। घोड़े खोलते हुए मुकुन्द फुसफुसाया, "अगर मां भवानी ने चाहा तो सब मंगल होगा।"

"मैं तेज घुड़सवारी न कर सकूंगी।" येसूबाई निरीहता से बोली।

"कोई बात नहीं," सम्भाजी ने ढारस दिया, "थोड़ी दूर तक जितनी तेज़ी से हो सके, चलो। आगे मेरे घोड़े पर आ जाना। यहीं से साथ बिठाऊंगा तो किसी को शक हो सकता है।"

खामोशी की छाती पर तीन घोड़ों की टापें पड़ीं। कुछ समय बाद वे टापें दो घोड़ों की हो गईं। येसूबाई को आगे बिठा कर सम्भाजी का घोड़ा तीर की तरह हवा को चीर रहा था। उस के ठीक पीछे था मुकुन्द का घोड़ा। अन्धेरे में चिकनी परछाइयों की तरह फिसलते आकार !

सड़क के एक मोड़ पर कवि कलश पन्द्रह घुड़सवार रक्षकों के साथ आ मिला। काजल के गर्भ में से पन्हाला के किले की दीवार उभरी जो क्रमशः स्पष्ट होती गई।

कलश ने घोड़ा बढ़ा कर सम्भाजी के साथ किया, "अब तक हमारी दूसरी टुकड़ी छापा मार चुकी होगी। दरवाजे के पहरेदार हैं ही कितने !"

दरवाजे के पास पहुंच कर इन्हें केवल इतनी देर रुकना पड़ा कि हांपते घोड़े दस-बारह बार दुम फटकार सकें। हल्की आवाज के साथ धीरे-धीरे दरवाजे का मुंह खुल रहा था, जिस में आकाश का परदा क्रमशः दाएं-बाएं बढ़ा हो रहा था। दूसरी टुकड़ी के कुछ सैनिक घायल हुए थे, किन्तु मरा एक भी नहीं था। दरवाजे के दो पहरेदारों के गले उतर गए थे। बाकी को रस्सों से बांध और मुंह में कपड़े ठूंस कर जमीन

लावारिस लुढ़का दिया गया था।

सब बाहर आए। दरवाजों को बंद कर के उसी ओर से उन की कुण्डी चढ़ा दी गई। वातावरण में फिर से बेशुमार टापें भर गईं।

लगभग एक घण्टे बाद घोड़े रोक देने पड़े। लगातार इतनी तेज घुड़सवारी येसूबाई ने कभी नहीं की थी। धचकों से उस के पेट में दर्द होने लगा था। उस का चेहरा गिर गया था, जैसे वह कोई अपराधिन हो। सम्भाजी ने उसे सहारा दे कर नीचे उतारा। वह लड़खड़ाई। "सम्भल कर···" सम्भाजी ने कहा और मुकुन्द से पूछा, "हम कितनी दूर आ गए होंगे?"

"पांच कोस तो अवश्य।"

"इस का पेट-दर्द कम हो, तब तक हमें रुकना पड़ेगा।"

"विशेष खतरा नहीं है।" मुकुन्द ने उत्तर दिया, "महल के बेहोश पहरेदार होश में आएंगे, उस समय भी हिलना-डुलना तो दूर, गले से आवाज तक न निकाल सकेंगे। मैं ने उन्हें कस कर बांधा है और मुंह में इतना कपड़ा ठूंसा है कि किसी तरह सिर्फ सांस ले सकें। कल सुबह तक इस पलायन का पता किसी को नहीं चल सकता।"

"फिर भी हमें रात-भर में ज्यादा-से-ज्यादा दूर निकल जाना चाहिए।" सम्भाजी ने येसू को एक पेड़ के तने से टिकाते हुए लिटाया।

"इस में सन्देह नहीं।"

"राजकुमार अपने साथ 'दुर्मुखी' भी ले आए? चलो, अच्छा रहा।" यह कवि कलश का स्वर था।

सम्भाजी को चोट पहुंची, "गुरुदेव, यह उपहास का समय नहीं है।"

'दुर्मुखी' शब्द के साथ जिस सांकेतिक अश्लीलता का सम्बन्ध था, उस की याद ने सम्भाजी को तिलमिला दिया। कलश ने तुरन्त अपनी भूल स्वीकार कर ली, "मुझे क्षमा करें!" घोड़े को खींचता हुआ वह दूसरी ओर हट गया।

जब सुबह के आकाश में सिंदूर की फसल लहलहाई और इतिहास

की कभी खत्म न होने वाली किताब का नया पन्ना खुला तो बहादुरगढ़ ज्यादा दूर नहीं था, जहां दिलेरखां और मुअज्जम इन का इन्तज़ार कर रहे थे। १३ दिसम्बर १६७८ की रात बीत चुकी थी।

६

"बीजापुर के हमले में आप साथ नहीं रहेंगे?" कवि कलश ने शहज़ादा मुअज्जम से पूछा।

"मुझे औरंगाबाद लौटना होगा। वहां मेरा भाई आने वाला है और मैं उस से मिलना चाहता हूं।"

"आप नहीं चलेंगे तो मैं भी नहीं जाऊंगा।"

"क्यों?"

"आप अपने भाईजान से मिलना चाहते हैं या किसी और से, मैं खूब समझता हूं।"

"और किस से?"

"नाखून वाला बुलबुल आप को दीवाना कर रहा है।"

मुअज्जम हंसा, "हो सकता है, एक कारण यह भी हो लेकिन यही अकेला कारण नहीं है। इस भाई को मैं पसन्द करता हूं। शायद आप ने उसे देखा हो। उस का नाम अकबर है। वह बहुत अच्छा योद्धा तो है ही, खयालों का भी निहायत सुलझा हुआ इन्सान है। उस से बातें कर के दिल को अजीब खुशी होती है।"

एक सेवक ने प्रवेश कर कहा, "मुकुन्दजी कवि कलश से मिलना चाहते हैं।"

"यहीं भेज दो," कलश ने कहा और मुअज्जम पर आंखें टिकाई।

"कारण चाहे जो हो लेकिन मैं आपके साथ औरंगाबाद अवश्य लौटूंगा।"

"शौक से। गुल ने आप के दिल में भी गुल खिलाए हैं, मैं खूब जानता हूं।"

"जिस के दिल में गुल नहीं खिलते, वह शायर नहीं हो सकता।"

सम्भाजी और येसूबाई को बहादुरगढ़ पहुंचे तीन दिन बीत चुके थे। बहादुरगढ़ का शिविर बड़ा नहीं था, लेकिन सम्भाजी के लौटने के बाद बीजापुर पर हमला करने की योजना बहुत तेजी के साथ ठोस की जा रही थी, जिस से औरंगाबाद के भी अधिकांश दस्ते यहीं आ गए थे। खुले मैदान में नए-नए तम्बू गाड़े जा रहे थे। दिन-भर जमीन में खूंटे धंसाने की ठक-ठक येसूबाई को ऊबा देती। रात को सहसा एक साथ कई घोड़े हिनहिना उठते तो वह चौंक कर जाग उठती और सुबह तक करवटें बदलती रहती। हवा से हिलती तम्बू की छत अभी गिर पड़ेगी, ऐसा भय उसे विकल कर देता। तड़प कर वह पति की ओर देखती लेकिन सम्भाजी को ऐसे वातावरण की आदत पड़ी हुई थी। उसे जगाने का उस से साहस न हो पाता। कई बार उस का दिल डूबने-सा लगता, क्योंकि वह सोचती, 'यहां हजारों पुरुषों के बीच मैं अकेली हूं।' उस के जिस्म में झुरझुरी आ जाती।

हर समय वह अपने तम्बू में छिपी रहती। बाहर निकलने पर मुगल सैनिकों की आंखें जिस तरह उस पर आ टिकतीं, उस से वह डर जाती। 'मुझ से यहां नहीं रहा जाता,' कई बार वह पति से शिकायत करना चाहती, लेकिन फिर सोचती, 'यहां नहीं रहेंगे तो कहां जाएंगे?' पन्हाला से बड़ी लाचारी के साथ पलायन करना पड़ा था, अतः पलायन उचित था या अनुचित, इस पर सोचना ही व्यर्थ था। 'किसी तरह यहां की आदत डालनी ही होगी,' हर समय वह मन-ही-मन दुहराती रहती, 'अच्छा लगे, चाहे न लगे।'

शाहजादा मुअज्जम और दिलेरखां उस के तम्बू में नहीं आते थे।

उन्हें येसूबाई ने दो-एक बार देखा था और वे उसे उतने मोहक नहीं लगे थे जितने कि उस ने सोच रखे थे। उन की आंखें क्रूर थीं, जो कहती थीं कि हमें हर तरह के दृश्य देखने की आदत है, लेकिन साथ-साथ उन में ऐसी रेखाएं भी थीं जो कहती थीं, हम इज्जत करना भी जानती हैं। जब परिचय कराया गया था तो राजकुमार मुअज्जम कम और सेनापति दिलेरखां थोड़ा अधिक मुस्कराया था। मुअज्जम ने कहा था, 'मुझे आपसे मिल कर खुशी हुई।' और दिलेरखां ने कहा था, 'राजकुमार के साथ मैं आप का भी स्वागत करता हूं।' उन की आवाजें कर्कश थीं, लेकिन जब उन्होंने मुस्कान के साथ झुकते हुए ये वाक्य कहे थे तो कर्कशता कम, ईमानदारी ज्यादा झलकी थी। 'इन्हीं लोगों ने मेरे पति को पकड़ा, और घेरना था,' इस विचार ने येसूबाई को नफरत से भर दिया जिस से उस की मुस्कान सूखी ही रह गई थी।

हां, कवि कलश के दो-तीन चक्कर रोज जरूर लगते थे। वह सम्भाजी को बुलाने के बहाने आता। यदि सम्भाजी उपस्थित होता तो वह उसे साथ ले कर बाहर चला जाता। येसूबाई समझ न पाती कि गुरु-शिष्य में ऐसी क्या बातें होती हैं जो उस के सामने नहीं की जा सकती। और यदि सम्भाजी अनुपस्थित होता तो वह येसूबाई से पूछता, "कहिए, यहां माफिक आ रहा है?"

येसूबाई छोटा-सा जवाब देती, "हां।"

कवि कलश के साथ उस की बातचीत की शुरुआत प्रायः हर बार इसी तरह होती। उस के हां कहने के बाद कलश दूसरी बातें पूछने लगता। पूछने के ढंग से साफ अहसास होता कि वह यहां थोड़ा और रुके रहने की कोशिश में है। येसूबाई को अटपटा तो लगता, लेकिन वह इसे मन का भ्रम समझ कर टाल जाती। पति को इस की सूचना वह नहीं दे सकती थी क्योंकि आखिर तो कवि कलश सम्भाजी का था।

आते ही सम्भाजी हमले की योजनाओं में व्यस्त हो गया था।
भाविक रूप से वह येसूबाई को अब उतना समय न दे पाता था,
ना अपनी कैद के दिनों में दे सकता था। मुकुन्द येसूबाई का अंग-
क कम, मित्र अधिक था। अकेलापन दूर करने के लिए वह उस से
र तक बातें करती रहती।

"मुकुन्दजी, कुछ है, जिसे आप छिपाते हैं।"

"नहीं-नहीं, आप से क्या छिपाना ?"

"देखिए, आप कैसे हड़बड़ा गए।"

"बात छिपाना कोई अपराध तो है नहीं, जो हड़बड़ा जाऊं। आप
को अवश्य भ्रम हुआ है।"

"नहीं बताते तो जाने दीजिए।"

"कोई बात हो तो बताऊं।"

आप की आंखों में एकाएक उदासी घिर आती है। तब आप
जबर्दस्ती मुस्कराते हैं और दिखाने की कोशिश करते हैं कि आप उदास
नहीं हैं।"

"मैं ने कहा न, आप को भ्रम हुआ है।"

भीतर-ही-भीतर जलता कण्डा...

मुकुन्द येसूबाई के सामने बैठा न रह सका। "ओह, याद आया,
कवि कलश ने मुझे बुलाया था," कह कर वह बाहर निकल आया। तेज
धूप की कौंध से बचने के लिए आंखें सिकोड़ता हुआ वह यों ही एक ओ
चल पड़ा।

कुछ न सूझा तो वह कलश के तम्बू की ओर ही बढ़ा। कलश
नहीं था। भीतर भांग घुट रही थी। घोंटने वाले ने बताया, "शाह
की ओर गए हैं। अभी लौटते होंगे। बैठिए !"

काफी देर तक इंतजार करने पर भी जब कलश न लौटा तो
की बेचैनी बढ़ी। बिना किसी महत्वपूर्ण काम के, केवल मिलने
इतनी देर तक बैठे रहना उसे न भाया। वह बाहर निकल आय

'कहां जाऊं' की समस्या में परेशान हो उठा। फिर मन में यह जिद उभर आई कि कवि से मिलना जरूर है। वह बातूनी है। कोई बात न होगी तो भी बात करने लगेगा और समय कट जाएगा। वह शाहज़ादा मुअज़्ज़म के तम्बू की ओर बढ़ा, इस बार कुछ ऐसी तेजी से कदम उठाता हुआ, मानो सचमुच किसी जरूरी काम से जा रहा हो।

द्वारपाल ने उसे रोका।

"कवि कलश भीतर हैं?" उस ने पूछा।

"हां।"

"भीतर कहलवाइए कि मुकुन्द मिलना चाहता है।"

द्वारपाल ने एक सेवक भेजा जो तुरन्त लौट आया, "आप जा सकते हैं।"

परदा हटा कर मुकुन्द ने तम्बू में प्रवेश किया। बातचीत में खलल न पहुंचे इसलिए वह बिना पदचाप किए आगे बढ़ा। उस के पांव ठिठक गए।

शाहज़ादा कह रहा था, "शौक से। गुल ने आप के दिल में भी गुल खिलाए हैं, मैं खूब जानता हूं।"

कवि कलश का स्वर था, "जिस के दिल में गुल नहीं खिलते, वह शायर नहीं हो सकता।"

गुल!

सहसा मुकुन्द को ध्यान आया, अगर शाहज़ादा या कवि उसे यों चुपचाप खड़ा देख लें तो खामख्वाह शक कर बैठें कि हमारी बातें चोरी से सुनना चाहता है। "नमस्कार!" कहता हुआ वह आगे बढ़ आया।

"बैठो मुकुन्द, तुम बड़े मौके से आए।" कवि कलश ने एक आसन की ओर इशारा किया, "तुम मुझ से क्यों मिलने आए हो, यह बाद में बताना, पहले मेरी बात सुन लो।"

मुकुन्द बैठा, "यों ही मिलने चला आया।"

"पहले तो यों ही कभी नहीं आते थे।" वाक्य का 'यों ही' इस

ह बोला गया कि मुकुन्द ने अपने को अपराधी-सा महसूस किया।
रा आना अप्रिय रहा हो तो लौट जाऊं' कह कर वह शायद उठ खड़ा
ता, लेकिन अभी-अभी सुना रहस्यमय शब्द 'गुल' उस के मन में झंकार
दा कर रहा था। इस के साथ ही कवि कलश का तुरन्त हंस पड़ना
उस की हिचक दूर कर गया।

"कैसा साहब-ए-आलम ?" कलश शाहजादे की ओर देख कर खिल-
खिला रहा था, "इसे कहते हैं दिल की आवाज का जादू। मुकुन्द कभी
यों ही मुझ से मिलने नहीं आता। आज कैसे आ गया ? मेरे दिल की
आवाज ने उसे बुलाया।"

फिर वह मुकुन्द से मुखातिब हुआ, "मैं बीजापुर के हमले में नहीं
जाना चाहता। मैं शाहजादे के साथ औरंगाबाद लौटूंगा। वहां हमें कुछ
गुल खिलाने हैं..."

"जी ?"

"चुपचाप सुनते रहो। सम्भाजी मुझे हमले में अपने साथ रखना
चाहते हैं। मैं अपनी अनिच्छा स्वयं उन से नहीं कह सकता क्योंकि उन
के आग्रह के सामने मुझे झुकना पड़ेगा। यह बात उन्हें तुम बताओगे।"

"क्यों नहीं, लेकिन आप हमले में साथ क्यों नहीं..."

"कहा न, मुझे और शाहजादे को औरंगाबाद में कुछ गुल खिला
हैं।"

"गुल ?"

"हां, गुल। तुम नहीं समझोगे।"

मुअज्जम बोला, "किसी को कोई गुल नहीं खिलाने हैं। मेरा
भाई यहां आने वाला है और मैं उस से मिलना चाहता हूं। कुल
कर बात है इतनी, लेकिन बतंगड़ बनाना शायरों की आदत होती

कलश मुस्कराया। मुकुन्द ने मुस्कान देखी। औरंगाबाद...
जब वह बाहर आया तो अपने-आप उस के पैर मेहरूबाई के

ग्रोर उठ गए। दूर से उस ने तम्बू के सामने एक हाथी देखा। उत्सुकता से उस की चाल मे तेजी ग्राई। हाथी के पास ही उस का महावत खड़ा था। "किस का है ?" मुकुन्द ने प्रश्न किया।

"देवी येसूबाई का।"

"कही सैर को जा रही हैं ?"

"दास को नही मालूम।"

उसी समय तम्बू मे सम्भाजी बाहर ग्राया। "कहो मुकुन्द, हाथी कैसा है ?"

"खूबसूरत। किस लिए ग्राया है ?"

"तुम बीजापुर के हमले मे साथ रह सको, उस का प्रबन्ध किया है।"

"मैं ग्राशय नही समझा।"

"हम तुम्हारी स्वामिनी को हमले में साथ रखेंगे। यह हाथी उन की सवारी के लिए है। अंगरक्षक होने के नाते तुम्हें भी चलना पड़ेगा।"

एक क्षण की चुप्पी के बाद मुकुन्द बोला, "मैं युद्ध-भूमि मे नहीं डरता। ग्राप की ग्राज्ञा हुई तो ग्रवश्य चलूंगा। क्या यह ग्राप का ग्रन्तिम निर्णय है ?"

"हां। क्यों ?"

"मैं एक निवेदन करना चाहूंगा।"

"ग्रवश्य।"

"ग्राप ने मेरी स्वामिनी से पूछ लिया है ?"

"हां। उन्होंने कहा है कि साथ चलेंगी।"

"युद्ध-भूमि का क्रूर वातावरण क्या उन से सहन होगा ?"

"लेकिन मुकुन्द, उन्हें मुझे से कोई बात छिपाने की क्या..."

"भला ग्राप साथ चलने को कहें ग्रौर देवी इन्कार कर जाएं ? मृत्यु का भय भी उन से ऐसा नही करा सकता। परन्तु ग्राप ही सोचिए, पाच कोस की घुड़सवारी ने ही उन्हें कितना थका दिया था। युद्ध-भूमि में तो..."

"हाथी की सवारी आरामदेह होती है।"

"मैं आप की बात मानता हूं परन्तु चारों ओर मची मारकाट के
[य] वह न देख सकेंगी।"

सम्भाजी सोच में पड़ा।

"आप बाहर ठहरिए, स्वामिनी से मैं पूछ कर आता हूं।" मुकुन्द
तम्बू में गया।

शाम गहरी होने लगी थी। येसूबाई दीपदान में रुई की तीलियां
रख कर तेल दे रही थी। मुकुन्द को देखते ही उस ने कहा, "मुकुन्दजी,
आप ने हाथी देखा ?"

"हां, मैं इसी सम्बन्ध में आप से बात करने आया हूं। सच बताइए,
आप खूंखार युद्ध-भूमि देख सकेंगी ?"

"क्यों नहीं, बल्कि मैं तो बहुत उत्सुक हूं कि युद्ध कैसे होता है।"

"मैं मान नहीं सकता।"

"क्यों ?" येसूबाई मुस्कराई।

"आप से वह सब नहीं देखा जाएगा।"

"मुकुन्दजी, ऐसी बात नहीं है। जहां मेरे पतिदेव, वहां मैं।"

मुकुन्द ने समझाने की बहुत कोशिश की पर असफलता ही हाथ लगी।
औरंगाबाद···गुल···

कैसे बताए मुकुन्द कि वह हमलावरों के साथ नहीं जाना चाहता
उसे औरंगाबाद बुला रहा है। औरंगाबाद में कोई है। उस का वि
कहता है, वह औरंगाबाद में ही है और कवि कलश को उस की जानक
है। किसी-न-किसी तरह वह कवि कलश से उस का पता उगलवा ले
'बातचीत में तुम ने दो-चार बार "गुल" शब्द सुन लिया और
जाने क्या-क्या सोचने !' मन उस की खिल्ली भी उड़ा रहा था,
वहीं मन यह भी सोचने से न रह पाता था कि हो सकता है, उस
के बारे में बात हो रही हो। कवि कलश या मुअज्जम के सैनिक
उठा कर ले जाएं, इस में आखिर अस्वाभाविकता है कहां ?

एक बार जा कर सारी खोजबीन करना नितान्त आवश्यक था। यदि सचमुच गुल मिल गई, तब तो कहना ही क्या, लेकिन अगर खोजबीन न की गई तो सारी जिन्दगी गले में शक की फांसी पड़ी रहेगी।

लेकिन यदि येसूबाई पति के साथ युद्ध-भूमि में रहेगी तो उस के अंगरक्षक को औरंगाबाद जाने की इजाजत कैसे मिलेगी?

रात भर वह तड़पता रहा। याद के कड़ाह में वह अर्ध-जीवित मछली की तरह भुन रहा था···कभी इस करवट···कभी उस करवट···

'और कुछ न सूझा तो मैं त्यागपत्र दे कर भी औरंगाबाद चला आऊंगा।' यह तुक्का भी उस के मन में आया, पर उस का खोखलापन जाहिर होने में देर न लगी। त्यागपत्र देने पर उस का सम्बन्ध सैनिक व राजकीय क्षेत्र से टूट जाता। फिर वह कवि कलश से मिलता जुलता रखने का प्रयास करता तो 'किसी का जासूस है' ऐसी सशंकित निगाहें उस पर टिकतीं।

यदि गुल औरंगाबाद में है, तो सैनिकों के सैकड़ों तम्बुओं में से उस का तम्बू कौन-सा है, यह तभी मालूम हो सकता था जब कलश और मुकर्रम के आने-जाने पर चौबीसों घण्टे दृष्टि रखी जा सके। तम्बू का पता चलने के बाद उस में प्रवेश पाना भी कोई सरल कार्य नहीं था। 'रक्षकों को विशेष सूचना होगी कि सिवा इन-इन के कोई स्त्रियां भी अन्दर न जाएं।' गहरी जासूसी करना त्यागपत्र दे कर असम्भव ही था।

रात की खामोशी ने और भी कई बचकाने उपाय उसके दिमाग में भर दिए, जो उस समय तो बचकाने न लगे, किन्तु ज्यों ही सुबह हुई, उन का खोखलापन स्पष्ट होता गया। स्वयं मुकुन्द को आश्चर्य हुआ कि वह कैसी बेपाए की बातें सोचता रहा था।

हंबीरराव और सम्भाजी आक्रमण की रूपरेखा तैयार कर चुके थे। उस के अनुसार सैनिक दस्ते कल शाम को रवाना हो जाने थे। ज्यों-ज्यों समय बीत रहा था, मुकुन्द पर हताशा का असर तेज हो रहा था।

लेकिन उस शाम एक गुप्तचर ऐसे समाचार लाया कि मुकुन्द की

यह समस्या अपने-आप सुलझ गई।

"यह नहीं हो सकता नाथ, इतने क्रूर न बनिए !" येसूबाई सम्भाजी से लिपट कर हिचकियां भर रही थी। आधी रात का समय था लेकिन निस्तब्धता नहीं थी। कुछ घण्टों में होने वाली रवानगी की तैयारियों में सैनिकों के दल इधर-उधर आ-जा रहे थे। वे आपस में ठिठोली कर रहे थे और उन के अधिकारी ऊंचे स्वर में आज्ञाएं दे रहे थे। घोड़ों की हिनहिनाहट सैनिकों की रगें फड़का देती थीं और वे बेवजह अपनी आवाजें कर्कश कर लेते थे। इस गुलगपाड़े की लहरें तम्बू के भीतर तिर रही थीं। दूर से कभी सियार बोलते, कभी कुत्तों की भूंक सुनाई पड़ती।

"क्रूर मैं बन रहा हूं या तुम ?" सम्भाजी ने स्नेह से उस की पीठ थपथपाई।

"अपना अपराध मेरे सिर मढ़ना चाहते हैं ?" आंसू पोंछते हुए येसूबाई ने उलाहना दिया।

"सोचो, इस के सिवा उपाय क्या है ?"

"मैं आप के साथ चलूंगी।"

और यही सम्भाजी नहीं चाहता था। गुप्तचर के दिए समाचारों ने परिस्थितियां बदल दी थीं।

शिवाजी ने बादशाह औरंगजेब के साथ की हुई सन्धि भंग कर दी थी। पन्हाला से सम्भाजी के पलायन करने और मुगलों से जा मिलने के कारण वह अत्यन्त क्रुद्ध थे। पहले सन्धि के अनुसार शिवाजी बीजापुर के आक्रमण में मुगल सेनाओं का साथ देने वाले थे, लेकिन अब उन की सैनिक टुकड़ियां उल्टे बीजापुर ही रवाना हो चुकी थीं—मुगल आक्रमण का सामना करने के लिए !

बीजापुर और शिवाजी में पुरानी दुश्मनी थी। शिवाजी ने मुगलों का सहयोग ले कर उन की शक्ति नष्ट कर देने की योजना बहुत सोच-समझ कर बनाई थी, लेकिन सम्भाजी के भागने के बाद वह उसी बीजापुर

को सहायता देने पर मजबूर हो गए थे। कोई और मौका होता तो बीजापुर शिवाजी का प्रस्ताव कभी स्वीकार न करता, लेकिन अब जान पर आ पड़ी थी, तो बिना मांगे मिली यह सहायता भी वरदान ही लगी थी।

सम्भाजी और दिलेरखां ने आशा रखी थी कि बीजापुर के आक्रमण में घनघोर युद्ध नहीं होगा, क्योंकि मुगलों की तुलना में बीजापुर की शक्ति बहुत कम थी, लेकिन शिवाजी की इस नाटकीय सहायता ने युद्ध की भयंकरता बढ़ा दी थी। ऊंट किस करवट बैठेगा, यह अब भी नहीं भांपा जा सकता था, तब तक वाकई युद्ध शुरू न हो जाए।

"येसू, तुम समझती क्यों नहीं? मैं तुम्हें साथ नहीं ले जा सकता।"

"क्यों?"

सम्भाजी गम्भीर हो उठा, "देखो, बहुत सम्भव है, मैं युद्ध में काम आऊं।" तुरन्त येसूबाई ने उस का मुंह बन्द करना चाहा, पर हाथ को बीच से ही थाम कर वह कहता रहा, "दुर्भाग्य से [illegible] होता तो मैं तुम्हें अवश्य साथ ले जाता, परन्तु अब तो युद्ध बहुत ही भयानक होने की सम्भावनाएं हैं। [illegible] कठिनाइयां हैं। एक यह कि मैं तुम्हारी [illegible] में युद्ध पर पूरा ध्यान न दे पाऊं। दूसरा यह कि [illegible] हो जाओगी। क्योंकि सम्भव है, [illegible]।"

"नाथ, मैं [illegible]।"

"पगली, [illegible] आवश्यक नहीं होती।" सम्भाजी ने [illegible]।

"मुझे केवल एक बात मालूम है—मैं आप [illegible] नहीं रह सकती।"

येसूबाई ने नन्हीं बच्ची के भोलेपन से सिर हिला कर हां कही।
सम्भाजी के गर्म होंठ उस के होठों पर आ गए, "ओह, मेरी अच्छी
येसू..." फिर सम्भाजी ने उस का सिर उठाया, "सुन, यह कमजोरी
इतने दिनों के तेरे साथ मे दूर हो चुकी है। अब तुम पास रहो न रहो,
लगता यही है कि पास ही बैठी हो, सट कर। अब मैं नहीं गिर सकता
येसू, कभी नहीं गिर सकता।"

"मुझे आप पर विश्वास नहीं है।"

"मुझे तो है।" सम्भाजी मुस्कराया, "मनोबल से नहीं मानोगी तो
मुझे तुम्हें आज्ञा देनी पड़ेगी।"

"आप की आज्ञा का अनादर करने का मुझे हक नहीं है क्या ?"

"विवाद करती जाओगी तो इस का कोई अन्त नहीं। मेरी इच्छ
है कि तुम औरंगाबाद में गुरुदेव कलश के संरक्षण में रहो। गुरुदेव यु
में नहीं चल रहे हैं। वहां उन पर और मुकुन्द पर तुम्हारी रक्षा
उत्तरदायित्व होगा। बीजापुर में मैं अकेला लड़ूंगा। हर समय मेरे ध्य
में रहेगा कि तुम सुरक्षित हो और मेरी प्रतीक्षा कर रही हो। यह वि
मुझ में स्फूर्ति भर देगा।"

आंसुओं में डूबी येसूबाई की आंखें दयनीय हो उठी थीं। स
से न सहा गया। वह दूसरी ओर देखने लगा, "येसू, अगर मैं
तो मुकुन्द से कहना, तुम्हें पन्हाला पहुंचा दे।"

"नाथ!" धैर्य का बांध टूट गया, रुदन बह निकला।

"मेरे पिता मुझ से रुष्ट हैं, तुम से नहीं।"

सुबह होने को थी। चिड़ियां जाग गई थीं।

१०

जो हाथी बीजापुर जाने के लिए आया था, वही अब औरंगाबाद की दिशा में बढ़ रहा था। सजी-धजी अम्बारी में येसूबाई बैठी थी। रात भर रोते रहने से उस की आंखें लाल हो गई थीं। पति-वियोग तथा आशंका के डरावने बादलों ने उस की कान्ति हर ली थी। आज उस ने अन्य दिनों की तुलना में माथे पर काफी बड़ा टीका लगाया था—कुमकुम का टीका, पर उस के मन को दिलासा नहीं मिल रही थी।

सुबह अभी-अभी पकी थी। घनी झाड़ियों, पेड़ों, लताओं आदि के बीच से हाथी चल रहा था। धूप चिकनी पत्तियों को शीशे की तरह चमका रही थी। हाथी के गले में बंधा काठ का घण्टा घनघना रहा था। उस के मोटे पैरों के नीचे टहनियां, पत्तें आदि कुचले जाने की आवाजें हो रही थीं।

मुकुन्द अपने घोड़े पर था। "उधर देखिए, जंगली हाथी।" उस ने घोड़ा आगे ला कर येसूबाई की तरफ देखा और एक ओर इशारा किया। येसूबाई ने अम्बारी से झुक कर नजर दौड़ाई। लगभग पचास हाथियों का एक झुण्ड बेफिक्री से घास चर रहा था। पास ही एक छोटा-सा जलाशय था। दो हथनियां उस के कीचड़ में लोट रही थीं। कुछ बच्चे सूंड़ में पानी भर कर फव्वारे उड़ा रहे थे। येसूबाई मुस्कराई।

आगे सशस्त्र घुड़सवार चल रहे थे। वे चार-चार की कतारों में थे। मुकुन्द कभी आगे निकल जाता, कभी येसूबाई के साथ चलता और कभी जुलूस के पीछे जा कर कवि कलश या शाहजादा मुअज्जम से बातें करने लगता। ये दोनों एक रथ में आमने-सामने बैठे थे।

'कितना धीरे चल रहा है जुलूस!' मुकुन्द के मन में मीठी कुढ़न भरी हुई थी, 'इन घोड़ों को, हाथी को, रथ को पंख क्यों नहीं लग जाते?' सचमुच वह उड़ कर औरंगाबाद पहुंच जाना चाहता था।

सुबह तड़के ये लोग बहादुरगढ़ से रवाना हुए थे। सम्भाजी ने
येसूबाई को विदा करते हुए कहा था, 'जाओ प्रिये, और मेरे लौटने की
प्रतीक्षा करो। विश्वास रखो, मैं अवश्य लौटूंगा।' हाथी चल पड़ा था।
आवेश से होंठ चबाती येसूबाई ने एक बार भी मुड़ कर पीछे न देखा
था। 'मैं सुबह रवाना हुई हूं और वह शाम को चल पड़ेंगे। औरंगाबाद
पहुंच कर मैं चैन से पलंग पर सोऊंगी, उधर मेरा प्रियतम मृत्यु से
साक्षात्कार करेगा। मेरे जैसी दुर्भाग्यशालिनी भला कौन होगी!' उस
के मन में विचारों के घन चल रहे थे, लेकिन पति की आज्ञा के सामने
वह लाचार थी।

"मुझे नींद आ रही है। लेटूंगा।" कहता हुआ शाहजादा मुअज्जम
रथ में निढाल होने लगा।

"मैं ने आप से कहा ही था कि चलने से पहले नहा लें वरना
आलस्य आएगा," कवि कलश ने शिकायत की, "लेकिन मेरी सुनता
कौन है।"

"आप ठीक कहते हैं, पर मुझे लगता है कि आप भी नहा कर नहीं
आए।"

"आप ने कैसे जाना?"

"आप के चेहरे से लगता है।"

"पहले आप अच्छे मजाक किया करते थे, अब ऐसा नहीं है।"

मुकुन्द का घोड़ा रथ के पीछे-पीछे चल रहा था। बड़े ध्यान से मु
इन की बातें सुन रहा था। 'हो सकता है, गुल के बारे में कोई नय
पकड़ में आ जाए,' इस आशा से वह किसी-न-किसी बहाने रथ के
पीछे मंडरा रहा था।

शाहजादा जरा बेफिक्री से पसरा, "मैं सो रहा हूं। चाहें
भी सो जाएं। झेंपने की जरूरत नहीं है।"

"शुक्रिया, आप अकेले सोइए!"

"हां, रथ में मैं अकेला भी सोऊं तो क्या हर्ज है। औरं

तो अकेले आप को सोना पड़ेगा।"

व्यंग्य ने कवि कलश को जैसे नोच लिया हो। सामने से उठ कर वह शाहज़ादे के पास आ बैठा, "क्या आप समझते हैं, मुझे उस से डर लगता है?"

मुअज्ज़म हंसा, "चोर की दाढ़ी में तिनका! मैं ने यह तो नहीं कहा।"

"शाहज़ादा-ए-आलम, जो शख़्स उसे उठा कर ला सकता है, वह उस के साथ सो भी सकता है।"

मुकुन्द की भौंहों पर हल्के बल पड़े।

"आप दो बार गए और दोनों बार यों ही लौट आए। ख़ुद आप ही ने मुझे बताया था।"

"हां, और उस का कारण भी बताया था। उस की मां मेरे हाथों मरी थी और मैं···ख़ैर, जाने दीजिए। मैं शपथ लेता हूं, औरंगाबाद पहुंच कर सब से पहले उस को अपने साथ सुलाऊंगा और उस के बाद ही···"

सड़ाक!

मुकुन्द चाबुक फटकार कर तेज़ी से आगे निकल गया। अब और कुछ सुनने की आवश्यकता नहीं थी। सारी कड़ियां जुड़ गई थीं। मुअज्ज़म और कलश की बातों में आए सर्वनाम 'उस' और 'वह' किस के लिए थे, यह बिल्लौरी कांच की तरह साफ़ था। गुल···मेरी गुल···वह औरंगाबाद में है···पता आख़िर चल ही गया···ख़ुशी की झीनी फुहार [illegible] कर गई।

लेकिन इस फुहार में जितनी ठण्डक थी, उस से ज़्यादा [illegible] थी। ओह, कितनी कामुकता से कलश ने कहा था, 'औरंगाबाद पहुंच कर सब से पहले···' मुकुन्द को लगा, क्रोध से वह [illegible] बैठेगा, अभी जा कर कलश का गला पकड़ लेगा। [illegible] को दबाने के लिए उस ने होंठों [illegible]

बनता खेल इस तरह बिगाड़ा नहीं जा सकता। औरंगाबाद गुल के तम्बू का पता लगाना अभी शेष है। कलश या मुअज्जम भी तरह का शक नहीं होना चाहिए। यदि वे सावधान हो गए कहां है, इस का पता लगाना बहुत कठिन हो जाएगा।

'मैं गुल का कुछ लगता हूं, उन्हें यह नहीं मालूम।' घोड़े सहलाते हुए उस ने सोचा, 'मेरे हक में यह अच्छा ही रहा'...

"हुजूर?"

शब्द ने उसे चौंकाया। सामने एक घुड़सवार झुकता हुआ था, "शायर कलश ने आप को याद फरमाया है।"

"मैं कुछ सोच रहा था। जुलूस से काफी पिछड़ गया। नहीं" ने स्वस्थ होते हुए कहा। दोनों ने घोड़े दौड़ा दिए।

"मैं उपस्थित हूं।" वह रथ के पास पहुंचा। कलश और अधलेटे पड़े थे और जाग रहे थे।

"तुम इस इलाके को अच्छी तरह जानते हो। आसपास कोई है?" कवि कलश ने प्रश्न किया।

"एक हम पीछे छोड़ आए। एक आने वाला है।"

"राजमाता...अ...राजमाता? अभी तो माता नहीं हुई राजमाता से अनुमति ले कर जुलूस को झरने पर रुकवाओ। समय हो रहा है। जब तक सैनिक चूल्हा जलाएंगे, मैं और शा आलम झरने में नहाएंगे।"

'हां, आज आप नहाए नहीं हैं।' कहते-कहते मुकुन्द रु पर कवि जान जाता कि उस ने उन की बातें सुनी हैं।

"जी," कह कर वह येसूबाई के हाथी की ओर बढ़ा।

"कवि कलश चाहते हैं, झरने के किनारे पड़ाव डाल की व्यवस्था की जाए। मुझे आप से अनुमति लेने भेजा है

"मेरी अनुमति?"

"हां। क्यों?"

वह अपने तम्बू में हांपता हुआ घुसा जो येसूबाई के तम्बू के के पास ही था। एक गायिका येसूबाई के मनोरंजन के लिए बुलाई गई थी। उस के गायन के स्वरों पर मुकुन्द के जलते कानों ने ध्यान न दिया।

कुछ ही क्षणों में वह बाहर निकला—जेब में ठुंसे चिथड़ों और तीर-कमान के साथ। वह किसी ताकतवर बारहसिंगे की तरह वापस भागा। उस तम्बू के ठीक सामने के तम्बू में उस ने प्रवेश किया। बगल के तम्बू में कव्वाली रंगत पर थी। मशाल जलती छोड़ कर सारे सैनिक वहीं चले गए थे। पास ही तेल का कटोरा रखा था। मुकुन्द ने जेब से चिथड़े निकाले और तेल में डुबा दिए। फिर उन्हें कई तीरों की नोकों पर लपेटा। एक नोक मशाल से जला कर वह बुदबुदाया, 'जय भवानी!'

बाहर निकल कर उस ने कान तक प्रत्यंचा खींची और तीर छोड़ दिया। सनसना कर वह गुल के तम्बू में धंसा। कपड़ा धधक उठा।

झपटता हुआ वह एक तम्बू की ओट में हो गया और दूसरी नोक जला कर कपड़े के पार कर दी। कुछ ही देर में तम्बू चारों दिशाओं से लपटें पकड़ चुका था।

पूरी ताकत से हाथ घुमा कर मुकुन्द ने तीर-कमान एक ओर फेंक दिए।

हल्ला मच गया था। "आग! आग!" चारों ओर से सैनिक दौड़े और मुकुन्द उन में शामिल हो गया। जगह-जगह रखी गई रेत और पानी की बाल्टियां उठा कर सैनिक झपटे।

कलश अभी बाहर नहीं निकला था। मुकुन्द ने छलांग लगा कर आग की एक लपट पार की। बावरा हो कर वह गुल को तलाश कर रहा था। तम्बू के ढांचे का एक भाग टूट कर उस की दाहिनी बांह पर गिरा। जल उठी कमीज का हिस्सा उस ने चीर कर फेंक दिया। धुएं का काला गोला उस की आंखों के ठीक सामने घिर आया। वह बुरी तरह खांसने लगा।

"बुझाओ! बुझाओ!" का शोर···

"गुल ! पागल हुई हो ? चलो ! मर जाओगी !" कमरे की एक दीवार की आड़ से कलश का हड़बड़ाया स्वर !

तलवार की नोक से उस ने कपड़ा चीरा और दोनों हाथों से उसे फैला कर उधर कूद गया। वहां की मशाल जमीन पर गिर गई थी, तेल का कटोरा उलट गया था। तेल ने आसपास की आग और भड़का दी थी।

गुल !

वह खामोश थी। आग भी उसे चीखने पर मजबूर न कर सकी थी। कलश उस का हाथ पकड़ कर दरवाजे की ओर खींच रहा था और वह पूरे जंगलीपन से अपने को छुड़ा रही थी।

'गुल बाहर नहीं जाएगी ! यहीं जल मरेगी !' मुकुन्द के मस्तिष्क में बिजली कौंध गई। उस ने जलता दीपदान उठाया और पीछे से कलश के सिर पर पूरी ताकत से मारा। 'अप्' की धीमी कराह के साथ कलश झुक गया। उस के सहरीले बाल लाल हो रहे थे—पीतल के दीपदान ने हड्डी खोल दी थी। दीपदान की बातियां बुझ गई थीं जिन में से धुएं के कांपते तार उठ रहे थे। झल्ल से मुकुन्द ने दीपदान एक ओर फेंका। अब गुल उस की बाहों में थी। वह उसे भींच रहा था, जैसे प्यार से मार डालेगा। "गुल ! मेरी गुल ! मेरी गुल !" वह बोलने की कोशिश कर रहा था लेकिन रुंधा गला शब्दों को उलझा रहा था। आगे झूल आए बाल उस के और गुल के मस्तक के बीच पिस रहे थे।

"बुझाओ ! बुझाओ !"

पानी पड़ने की छुन्न भीतर आती, साथ ही धुएं के बड़े-बड़े गोले, जो इन दोनों को घेर लेते।

कड़ड़ड़ करता हुआ ढांचा टूटा। मुकुन्द ने गुल को एक ओर घसीट लिया। बाहर से किसी सैनिक ने रेत की बाल्टी उलीची। रेत सीधी मुकुन्द पर आई। मुकुन्द ने गुल का चेहरा दोनों बाहों में छुपाया और अपनी आंखें भींच लीं। रेत के नुकीले कण उस के चेहरे पर बरस गए।

उसे अब कुछ नहीं नहीं चाहिए था। उसे अब किसी की परवाह नहीं

थी। बेहोश पड़े, आग से घिरे कवि कलश को वह भूल चुका था। उस ने बांहों के बन्धन ढीले किए। गुल लुढ़कने लगी। अब उसे पता चला, गुल बेहोश है। उस ने उसे कन्धे पर लादा। कई सैनिक पानी और रेत फेंकते हुए चीख रहे थे जिन में से कुछ ने बेहोश कलश को उठा लिया। इस के पहले कि कोई मुकुन्द को पहचान पाता, वह धक्का-मुक्की को काटता हुआ बाहर निकल आया। दौड़ कर वह एक तम्बू की आड़ में हुआ। फूला हुआ दम भरने के लिए उस ने दो-तीन गहरी सांसें लीं। गुल के बाल खुल कर पीठ पर छा गए थे। मुकुन्द ने आसपास विकल दृष्टि दौड़ाई।

जलते तम्बू का कांपता, सिहरता उजाला जमीन पर बिछा हुआ था। मुकुन्द के गाल जल रहे थे। वे करीब-करीब झुलस गए थे। उस ने जब पलकें झपकाईं तो भीतर खरोंच-सी मालूम पड़ी। आंखों में रेत चली गई थी। गला सूख रहा था। उस ने थूक निगलने की कोशिश की। दांतों में रेत किरकिरा उठी और पूरे शरीर को एक विचित्र झुरझुरी ने हचमचा दिया।

वह दूसरे तम्बू की आड़ में हुआ और दूसरे से तीसरे। उस ने एक बंधे हुए घोड़े का रस्सा काटा। एक हाथ से गुल का निढाल शरीर थामता, दूसरे हाथ से लगाम सम्भालता वह चांदनी में पारे की तरह फिसल गया।



दोनों एक घनी झाड़ी की आड़ में थे। वहां चांदनी में परछाईं बनी हुई थी। जुगनू उड़ रहे थे—काली हवा में कौंधते, छेद बनाते और मूंदते

हुए। दूर कहीं मेंढक टर्रा रहे थे। पेड़ के तने से बंधा मुकुन्द का घोड़ा चुपचाप खड़ा झपकी ले रहा था।

"तुम नहीं जा सकतीं।"

"मुकुन्द, अब मैं तुम्हारे लिए योग्य नहीं हूं।" गुल उठ खड़ी हुई। मुकुन्द ने उस की साड़ी पकड़ कर एक शक्तिशाली झटका दिया। वह उस पर गिर पड़ी। मुकुन्द ने उसे भींच लिया। गुल ने पाश से छूटने की कोई कोशिश न की। न कुछ बोली, न पलकें उठा कर मुकुन्द की ओर देखा। अधजले कपड़ों में से मुकुन्द की छाती दीख रही थी—घने बालों वाली, चौड़ी और तांबे जैसी। मुकुन्द ने गुल का चेहरा उस पर रगड़ा।

"मैं केवल इस आशा में जिंदा रहा कि तुम कभी-न-कभी मुझे अवश्य मिलोगी।"

"लेकिन मैं तुम से मिलने की आशा में नहीं जी रही हूं।" उस ने जरा कसमसा कर मुकुन्द की बांहों के बन्धन ढीले किए।

"तो ?"

"मैं कब की आत्महत्या कर चुकी होती, लेकिन मैं ने सोचा कि जीवित रह कर शायद मैं कुछ लड़कियों को बर्बाद होने से बचा लूं। मुझे भूल जाओ। तुम्हारी गुल मर चुकी है। यह तो शाहजादे और दलाल की रखैल है। यह तुम्हें नहीं मिल सकती…मुकुन्द, मुझे शाही शिविर में पहुंचा दो…"

"अगर न पहुंचाऊं, तो ?"

इस का जवाब गुल के पास नहीं था। उस ने कातर दृष्टि से मुकुन्द की उन आंखों में देखा, जो कठोरता से धधक रही थीं। "बोलो, अगर न पहुंचाऊं, तो ?"

गुल जमीन पर बैठ गई। उस के गाल आंसुओं से भीग गए थे। बार-बार वह थूक निगल रही थी। मुकुन्द उस के करीब बैठा और भर्राए गले से बुदबुदाया, "तुम जाने को मेरे साथ नहीं समझती लेकिन

मैं तो समझता हूं। मैं तुम्हारे बिना नहीं रह सकता।"

दोनों पास-पास बैठे हुए थे—कितने परिचित और कितने अपरिचित! दोनों के जिस्म का चप्पा-चप्पा फट रहा था। चांदनी खौफनाक रूप से बूढ़ी थी।

"मेरी ओर देखो!" मुकुन्द ने आग्रह किया और उस की उंगलियों में उंगलियां उलझा दीं। गुल की आंखें उठीं। बिना पलकें झपकाए वह उन साहसी, आत्मविश्वासी, प्यार से कौंधती और आवेग से धधकती आंखों में देखती रही। वह फिर बुदबुदाई, "मैं तुम्हारे लायक नहीं रही।"

"देख गुल, यह तू ने एक बार भी और कहा तो गला घोंट दूंगा।"

"लो, घोंट दो।" उस ने अपना सुराहीदार गला आगे कर दिया। मुकुन्द उसे दबाने लगा। कुछ देर तक गुल ने सहन किया, फिर वह तड़प गई, "अरे-अरे, छोड़ो!" उसे खांसी आने लगी और आंखों में पानी छलक आया। "और कहोगी?" मुकुन्द ने गला छोड़ा। वह झेंपता हुआ हंसा। आंचल से आंसू पोंछती, खांसती और खिलखिलाती गुल उस की गोद में समा गई।

औरंगाबाद पहुंच कर उसे शाहजादे और कलश के क्या-क्या अनुभव हुए, किस तरह वह शुरू के दिनों में आधी पागल-सी रही और किस तरह धीरे-धीरे मन का कांपता तराजू स्थिर होता गया—यही सारी कहानी वह दिल खोल कर कह गई। फिर मुकुन्द ने सब बताया कि उस के पन्हाला जाने के बाद क्या-क्या घटनाएं घटीं और किस प्रकार वह येसूबाई के अंगरक्षक के रूप में औरंगाबाद पहुंचा।

"घोड़ा तैयार है, हम दोनों यहां से भाग चलें।"

"नहीं।"

"भागे बिना हम साथ कैसे रह सकते हैं?" वह बोला।

"फिर येसूबाई की जिम्मेदारी कौन लेगा?"

"कवि कलश है।"

गुल हंसी, "कलश पहले अपनी जिम्मेदारी तो सम्भालें।"

उसी रात औरंगाबाद के एक मुस्लिम परिवार का दरवाजा खड़क उठा। सफेद दाढ़ी वाले एक बुजुर्ग ने दरवाजा खोला। सामने किसी सैनिक को धमजले कपड़ों में देख कर वह कांप गया। मुकुन्द फुर्ती से भीतर आया और नम्रता से बोला, "आप को कष्ट दिया, इस का मुझे खेद है। मुझे एक बुरका चाहिए, इस के लिए"'आप के यहां होगा?" उस ने गुल को आगे कर दिया। गुल सकुचाई क्योंकि वह तीखे प्रसाधन और झीने वस्त्रों में थी—जैसी कि वह तम्बू से उठा कर लाई गई थी।

आधी रात कब की बीत चुकी थी। बुरके में सिर से पांव तक छिपी गुल को घोड़े पर बिठा कर मुकुन्द ने सावधानीपूर्वक शिविर में प्रवेश किया। तम्बू की आग बुझाई जा चुकी थी। चांदनी में उस का मलबा छोटी-छोटी परछाइयां बना रहा था। अधिकांश सैनिक सो गए थे, पहरेदार गश्त लगा रहे थे। मुकुन्द का घोड़ा धीमी चाल से बढ़ रहा था। अपने तम्बू के पास पहुंच कर उस ने गुल को घोड़े से उतारा। दोनों अन्दर गए। जाते-जाते मुकुन्द ने येसूबाई के तम्बू की ओर देखा। भीतर रोशनी थी। अर्थात्, देवी येसू जाग रही थी।

"बैठो!" मुकुन्द ने गुल की ओर एक आसन बढ़ाया। दरवाजे के पास जा कर उस ने इशारे से दो सशस्त्र भीलनियों को बुलाया। दोनों पास आईं और झुकीं। "इस की रक्षा करो। मैं अभी आया।" उस ने गुल की ओर इशारा किया। दोनों गुल के दोनों ओर खड़ी हो गईं। मुकुन्द बाहर निकला। येसूबाई के पास दासी भिजवा कर उस ने मिलने के लिए अनुमति मांगी।

"मुकुन्दजी आए हैं? इस समय?" येसूबाई को आश्चर्य हुआ। इतनी रात गए क्या काम हो सकता है? बीजापुर की रण-भूमि से कोई

अमंगल समाचार तो नहीं आया ? उस का हृदय कांप गया, "उन्हें तुरन्त भेजो !"

मुकुन्द ने प्रवेश किया। दीपदान के पास रखे आसन पर बैठ कर उस ने वातियां तेज कीं और कहा, "महादेवी को अनुपयुक्त समय पर कष्ट देने के लिए बहुत लज्जित हूं..."

येसूबाई मुकुन्द के अधजले कपड़े देख कर चौंक गई थी लेकिन कारण पूछने से पहले उस ने बीजापुर वाली वह आशंका दूर करनी चाही, "कोई अमंगल समाचार तो नहीं ?"

"नहीं," मुकुन्द हंस पड़ा, "समाचार तो मंगल हैं।"

"मंगल ? फिर आप के ये अधजले कपड़े ?..."

"क्षमा कीजिएगा, बदलना भूल गया। तम्बू की आग बुझाने में देखिए, कैसी हालत हुई है। सब से पहले आप यह बताइए कि आधी रात के बाद भी जाग क्यों रही हैं ?"

"तम्बू की आग से मैं बहुत डर गई हूं। आज रात शायद ही सो पाऊं।" उस का चेहरा लाचार हो उठा, "ऐसी आग हमारे तम्बू में भी लग सकती है।"

"नहीं, जब तक कोई लगाए नहीं; आग लग कर सहसा जोर नहीं पकड़ती। आप की भला किस से दुश्मनी है, जो आग लगाए ?"

"याने वह आग अपने-आप नहीं सुगी, किसी ने लगाई थी ?"

"हां, मुझे तो यही लगता है।"

"क्यों लगाई होगी ?"

"यह तो लगाने वाला जाने।" मुकुन्द मुस्कराया।

"मेरी दासी ने बताया कि उस तम्बू में शाहजादे की रखैल..."

"मुझे नहीं मालूम।"

"आप ने कवि कलश के साथ भीतर किसी को नहीं देखा ?"

"मैं तो आग बुझाने में लगा था।"

"आप कोई मंगल समाचार लाए थे ?"

मुकुन्द ने इशारे से दासियों को विदा किया। येमूबाई का आश्चर्य बढ़ा। मंगल समाचार दासियों के सामने नहीं दिए जा सकते? उस ने प्रश्नात्मक दृष्टि उठाई। कुछ क्षणों तक मुकुन्द समझ न पाया कि शुरू-आत कैसे करे। वह बेवजह मुस्कराता और झेंपता रहा।

"देखिए, एक लड़की है।"

येमूबाई शैतानी से मुस्कराई, "हूं, तो बात यह है।"

"नहीं-नहीं, बात कुछ नहीं है।" मुकुन्द हड़बड़ा गया, "किसी समय मेरी पड़ोसिन रही थी। मैं चाहता हूं, आप उसे अपनी दासी के रूप में रख लें। बेचारी बड़ी तकलीफ में है।"

"कहां है?"

"मेरे तम्बू में। लाऊं?"

"लेकिन यह बड़ी अजीब बात है कि आधी रात के बाद कोई लड़की आप के तम्बू में आए और आप सुबह की प्रतीक्षा किए बिना ही यहां पहुंच कर ऐसा निवेदन करें। निवेदन से पहले दासियों को विदा भी कर दें···दाल में कुछ काला मालूम पड़ता है···" वह ढिठाई से मुस्करा रही थी।

"मैं···मैं बाद में सब बताऊंगा।" मुकुन्द सकपका गया, जैसे किसी चोरी में रंगे हाथों पकड़ा गया हो। बाहर निकलता हुआ बोला, "मैं अभी लाता हूं उसे।"

तम्बू में आ कर उस ने दोनों दासियों को विदा किया और गुल से कहा, "आओ!"

दोनों येमूबाई के सामने उपस्थित हुए तो छूटते ही येमूबाई ने पूछा, "इस का नाम?"

'गुल' नाम वह बताना नहीं चाहता था और नकली नाम क्या होगा, यह गुल और मुकुन्द में तय नहीं हुआ था। वह हकला गया, "मे··· मै···"

"मैना?"

"मेनका।"

बुरके के भीतर गुल के गाल लाल हो आए। उस ने मुस्कान को हराने के लिए भीतर-ही-भीतर अपने होंठ काटे।

"मुसलमान है ?"

"नहीं।"

"फिर बुरका ?"

"अो बेवकूफ लड़की, बुरका उठा !" कहते हुए खुद उस ने गुल का चेहरा उघाड़ दिया।

"मैं ने बुरका उठाने को थोड़े ही कहा था। मैं तो सिर्फ इतना पूछ रही थी कि लड़की हिन्दू, फिर बुरका क्यों ?"

"वह तो उधार का है। मतलब, सहेली का मांग कर लाई है। छिप कर आना था, इसलिए।"

"छिप कर क्यों ?"

"आप तो देवी, गुप्तचरी कर रही हैं।" मुकुन्द ने हथियार डाल दिए।

"झूठ को सच बना कर बोलना एक कला है। आप को वह नहीं आती।" येसूबाई मजा लेती हुई बोली, "बताइए, यह कौन है ?"

मुकुन्द गुल की ओर भौंहें उठा कर मुस्कराया, "बता दूं ?"

गुल शरमा कर ललियाई। आंखों की कौंध ने कहा, 'कब तक छिपाओगे ?'

"सुनिए देवि," मुकुन्द रुका, पल के छोटे-से भाग के लिए झिझका। फिर बोला, "इस का नाम गुल है। इसे उस जलते तम्बू से उठा कर लाया हूं। मेरी···मेरी···"

"समझ गई, क्या लगती है। आगे कहिए···"

"मैं इसे शाहजादे और कलश से छिपा कर रखना चाहता हूं। ये दोनों आप के तम्बू में आते हैं, तो पहले अनुमति मांगते हैं। ज्यों ही ये अनुमति मांगें, आप किसी बहाने गुल को सामने से हटा दें। मैं और आप

इसे मेनका कह कर पुकारेंगे।"

"अगर मेरी किसी दासी ने इसे पहचान लिया?"

"कोई नहीं पहचानेगी। वहां इसे बड़े पहरे में रखा गया था। पहरेदारों तक ने इसे कभी नहीं देखा। हां, आप की दासियां 'गुल' नाम से परिचित हो सकती हैं। इसीलिए इसे भूल कर भी 'गुल' न कहें।"

"ठीक है, लेकिन तम्बू में शाहजादे ने जो दासियां रखी होंगी, वे इसे पहचानती होंगी।"

"जहां तक मैं मालूम कर सका हूं, तम्बू में सिर्फ एक दासी थी। आप अपनी दासियों को सूचना दे दें कि बिना जान-पहचान की किसी भी स्त्री को यहां न आने दें। मेनका यहां से कभी बाहर नहीं निकलेगी।"

"यह तो बताइए मुकुन्दजी, आप दोनों की पहली मुलाकात कहां और कैसे हुई?" येसूबाई ने फिर छेड़ा।

"ओह देवि! सारी बातें आज ही न पूछिए। कल-परसों के लिए भी कुछ बचा रखिए।"

येसूबाई खिलखिला पड़ी।

मुकुन्द ने प्यासी आंखों से एक बार गुल को घूरा, फिर वह बाहर चला गया।

येसूबाई गुल को साथ ले कर कपड़े बदलने के कक्ष में गई और हंसी, "मेनकाजी, अब हिन्दू बन जाइए।" गुल ने बुरका उतारा। कुछ ही देर में वह एक दासी की वेशभूषा में उपस्थित हुई। येसूबाई ने दूसरी दासियों को बुलाया और कहा, "यह मेनका है, तुम लोगों की नई सहेली। कौन हो, कहां से आई हो, वगैरह इस से कोई न पूछे।" फिर रुक कर कहा, "आज से कोई भी स्त्री बिना मेरी अनुमति के तम्बू में न आए, चाहे वह जान-पहचान की ही क्यों न हो।"

सुबह होने में अब देर नहीं थी। "मेनका," उस ने कहा, "अब मैं सोऊंगी। तुम चाहो तो अपनी नई सहेलियों से बातें करो, चाहो सो सो जाओ।"

'नींद कैसे आएगी मुझे !' गुल मन-ही-मन बोली।

उधर मुकुन्द को भी नींद न आ सकी थी। पलंग पर चित लेटा हुआ वह अपने तम्बू की छत की ओर देखता रहा, जहां एक दीपदान लटक रहा था। सन्तोष और निश्चितता की अनुभूति इतनी गाढ़ी हो सकती है, आज से पहले उस ने कभी सोचा तक नहीं था। कुछ देर तक करवटें बदलने के बाद उस ने अपने अधजले कपड़े उतारे, जली हुई चमड़ी पर दवा का लेप किया, बाल संवारे। फिर वह बाहर निकल आया।

प्रकृति पूरब का चेहरा धो रही थी, ताकि हंस कर सूरज का स्वागत कर सके।

उस ने कवि कलश के तम्बू की ओर कदम बढ़ाए। द्वार पर पहुंच कर उस ने रक्षक से प्रश्न किया, "कवि होश में आ गए हैं ?"

"जी हां।"

"भीतर कौन-कौन हैं ?"

"हकीम साहब और शाहजादा-ए-आलम।"

"कहलवाओ कि मुकुन्द मिलना चाहता है।"

परदा हटा कर मुकुन्द जब भीतर गया तो सब से पहले शाहजादा मुअज्जम दिखाई पड़ा। वह चारों खाने चित लेटे कवि कलश के सिरहाने बैठा हुआ था। सामने के आसन पर दवाओं, पट्टियों आदि के साथ एक हकीम बैठा हुआ था, जिस के पीछे दो परिचारिकाएं अदब से खड़ी थीं। कवि की रुचि के अनुसार वे निर्लज्ज परिधान में थीं।

"आओ, मुकुन्द !" मुअज्जम ने हाथ बढ़ा कर पलंग के नीचे से उस के लिए मोढ़ा खींचा।

मुकुन्द बैठा। उस ने कलश की ओर दृष्टिपात किया और पूछा, "कवि अब कैसे हैं ?"

"ठीक हूं भाई, ठीक हूं, बिल्कुल ठीक हूं।" कवि कलश ने उत्तर दिया। उस के सिर पर सफेद पट्टी बंधी हुई थी।

"हंगामे में इन के सिर पर कोई नुकीली चीज आ गिरी।" शाहजादे ने कहा, "यह वहीं-के-वहीं बेहोश हो गए। गनीमत रही कि कपड़ों में आग न लग पाई। ऐन मौके पर सैनिक इन्हें बाहर ले आए।"

"आग बुझाने वालों में मैं भी शामिल था।" मुकुन्द बोला, "खैर" कुछ पता चला, आग कैसे लगी?"

"कुछ सैनिकों ने किसी को तम्बू पर जलते तीर छोड़ते देखा था। वह कौन था और उस ने ऐसा क्यों किया, अभी तक तो इस का पता नहीं लगा।"

"तम्बू के दूसरे लोग सुरक्षित हैं?"

"हां, सभी बच गए।"

'सभी' शब्द पर मुकुन्द मन-ही-मन मुस्कराया। एक कलश, दूसरी गुल, तीसरी गुल की दासी—इन के सिवा 'सभी' में और कौन शामिल था?

"मेरा एक मित्र लापता है। पता नहीं कहां गया।" कवि कलश ने उदासी से कहा।

'मित्र' शब्द से उस का प्रयोजन क्या था, शाहजादा भाप गया, मुकुन्द भी।

मुकुन्द अनजान बना, "मित्र?"

"हां, मैं उस से मिलने गया था।"

"लापता कैसे हो गया? अगर जल गया होता तो लाश अवश्य मिलती।"

कलश को गहरी चोट पहुंची, "मैं उस के जल मरने की कल्पना भी नहीं कर सकता।"

"फिर लापता कैसे? कोई उठा कर तो ले जा नहीं सकता।"

"हां, कोई ले गया। जरूर कोई ले गया।" कवि कलश अचानक उत्तेजित हो गया। शाहजादे ने मुकुन्द को चुप रहने का इशारा किया।

सूर्य क्षितिज से ऊपर आने ही वाला था।



प्रियतम का पत्र !

जितनी तेजी से हो सकता था, येसूबाई पढ़ती जा रही थी। तुम जल्दी आओ···पत्र से एक यही ध्वनि निकल रही थी। पति की निरीहता कितनी स्पष्टता से सामने आई थी !···अब मैं तुम्हारे विना एक पल भी नहीं रह सकता···आज ही रवाना हो जाओ···अभी ही चल पड़ो···मेरी येसू···मेरी येसू···मेरी येसू···वह पढ़ती जा रही थी और पत्र को वार-वार आंखों और होंठों से लगा रही थी।

वीजापुर के युद्ध में सम्भाजी और दिलेरखां को करारी मात खानी पड़ी थी। दो माह के दुखद घेरे के पश्चात् मुगल सैनिक शर्म से झुके चेहरों और लटके हुए दिलों के साथ वापस लौट पड़े थे। इस हार का कारण वे मराठे सैनिक थे, जिन के दस्तों का संचालन करने के लिए दल-बल-सहित स्वयं शिवाजी वीजापुर आ पहुंचे थे। उन्होंने पुत्र सम्भाजी को वन्दी वनाने का पूरा प्रयास किया था, लेकिन सम्भाजी ने अपने को बचा ही लिया था और अब सेनापति दिलेरखां के साथ वह वापस लौट रहा था।

पिता के शक्तिशाली दस्तों ने छापामार युद्ध कर के उसे वहुत त्रस्त किया था। चारों ओर से घिरे वीजापुर के किले के भीतर वे दस्ते किस तरह रसद पहुंचा देते थे, यह सम्भाजी और दिलेरखां के लिए घोर आश्चर्य की वात रही थी। रात के अंधेरे में अचानक 'जय कोंकण ! जय भवानी !' के नारों के साथ मराठे तथा मावल सैनिक मुगलों पर टूट पड़ते और कुछ ही मिनटों में सैकड़ों को आहत कर या मार कर गायब हो जाते।

जहां छापा पड़ता वहां हर तरफ से मुगल सैनिक दौड़ पड़ते लेकिन उसी समय ठीक विपरीत दिशा में मराठे वीर प्रकट हो जाते और भूखे शेरों की तरह हुंकारते हुए कूद पड़ते। वीजापुर के किले पर से प्रायः

रोज ही भयानक गोलाबारी होती । इधर से भी उस के जवाब दिए जाते । गोलाबारी में मुगलों के सामने बीजापुर नहीं टिक सकता था, लेकिन शिवाजी के छापामार दल, जो किले के भीतर कैद न हो कर चारों भोर मंडरा रहे थे, सम्भाजी भौर दिलेरखां के लिए जरूरत से ज्यादा खतरनाक सिद्ध हुए थे ।

सम्भाजी ने लिखा था, 'येसू, बहुत अच्छा हुआ जो मैं ने तुम्हें अपने साथ न रखा, औरंगाबाद भेज दिया । यहां मुझे कैद करने के लिए पिताजी ने जी-तोड़ कोशिश की । तुम साथ होतीं तो अपने साथ तुम्हें भी कैद होने से बचाने में कितनी परेशानी उठानी पड़ती, इस की कल्पना मुझे कंपा देती है···'

१५ नवम्बर १६७६ के दिन बीजापुर का घेरा उठ गया था । अब मुगल सेना तिकोटा की ओर बढ़ रही थी, जहां वह एक अस्थायी पड़ाव डालने वाली थी ।

सम्भाजी ने सूचित किया था, 'पत्र मिलते ही गुरुदेव और मुकुन्द के साथ तिकोटा चल पड़ो । मेरी गणना के अनुसार ज्यों ही तिकोटा में हमारा पड़ाव पड़ेगा, एक-दो दिनों के भीतर तुम वहां पहुंच जाओगी । येसू, पत्र में सारी बातें मैं नहीं लिख सकता । इन दिनों मानसिक रूप से मैं बहुत असन्तुलित हूं ।···'

पति का व्यक्तित्व उन के बिना कितना अधूरा है, पत्र की एक-एक पंक्ति से यह स्पष्ट झलक रहा था ।

"मैं उपस्थित हूं, सेवक को क्यों याद किया ?" मुकुन्द सामने आ कर झुका ।

"मुकुन्दजी, 'उन' का पत्र आया है ।"

मुकुन्द ने मुसकरा कर प्रसन्नता व्यक्त की ।

"लिखा है, मैं आज ही तिकोटा के लिए चल पड़ूं । आप को और गुरुदेव को साथ चलना होगा ।"

"आज ही ? अब तो आधी रात हो चुकी है । तैयारियों में यह



प्रियतम का पत्र !

जितनी तेजी से हो सकता था, येसूबाई पढ़ती जा रही थी। तुम जल्दी आओ…पत्र से एक यही ध्वनि निकल रही थी। पति की निरीहता कितनी स्पष्टता से सामने आई थी !…अब मैं तुम्हारे विना एक पल भी नहीं रह सकता…आज ही रवाना हो जाओ…अभी ही चल पड़ो…मेरी येसू…मेरी येसू…मेरी येसू…वह पढ़ती जा रही थी और पत्र को बार-बार आंखों और होंठों से लगा रही थी।

बीजापुर के युद्ध में सम्भाजी और दिलेरखां को करारी मात खानी पड़ी थी। दो माह के दुखद घेरे के पश्चात् मुगल सैनिक शर्म से झुके चेहरों और लटके हुए दिलों के साथ वापस लौट पड़े थे। इस हार का कारण वे मराठे सैनिक थे, जिन के दस्तों का संचालन करने के लिए दल-बल-सहित स्वयं शिवाजी बीजापुर आ पहुंचे थे। उन्होंने पुत्र सम्भाजी को बन्दी बनाने का पूरा प्रयास किया था, लेकिन सम्भाजी ने अपने को बचा ही लिया था और अब सेनापति दिलेरखां के साथ वह वापस लौट रहा था।

पिता के शक्तिशाली दस्तों ने छापामार युद्ध कर के उसे बहुत त्रस्त किया था। चारों ओर से घिरे बीजापुर के किले के भीतर वे दस्ते किस तरह रसद पहुंचा देते थे, यह सम्भाजी और दिलेरखां के लिए घोर आश्चर्य की बात रही थी। रात के अंधेरे में अचानक 'जय कोंकण ! जय भवानी !' के नारों के साथ मराठे तथा मावल सैनिक मुगलों पर टूट पड़ते और कुछ ही मिनटों में सैंकड़ों को आहत कर या मार कर गायब हो जाते।

जहां छापा पड़ता वहां हर तरफ से मुगल सैनिक दौड़ पड़ते लेकिन उसी समय ठीक विपरीत दिशा में मराठे वीर प्रकट हो जाते और भूखे शेरों की तरह हुंकारते हुए कूद पड़ते। बीजापुर के किले पर से प्रायः

रोज ही भयानक गोलाबारी होती। इधर से भी उस के जवाब दिए जाते। गोलाबारी में मुगलों के सामने बीजापुर नहीं टिक सकता था, लेकिन शिवाजी के छापामार दल, जो किले के भीतर कैद न हो कर चारों ओर मंडरा रहे थे, मम्भाजी और दिलेरखां के लिए जरूरत से ज्यादा खतरनाक सिद्ध हुए थे।

सम्भाजी ने लिखा था, 'येसू, बहुत अच्छा हुआ जो मैं ने तुम्हें अपने साथ न रखा, औरंगाबाद भेज दिया। यहां मुझे कैद करने के लिए पिताजी ने जी-तोड़ कोशिश की। तुम साथ होतीं तो अपने साथ तुम्हें भी कैद होने से बचाने में कितनी परेशानी उठानी पड़ती, इस की कल्पना मुझे कंपा देती है...'

१५ नवम्बर १६७६ के दिन बीजापुर का घेरा उठ गया था। अब मुगल सेना तिकोटा की ओर बढ़ रही थी, जहां वह एक अस्थायी पड़ाव डालने वाली थी।

सम्भाजी ने सूचित किया था, 'पत्र मिलते ही गुरुदेव और मुकुन्द के साथ तिकोटा चल पड़ो। मेरी गणना के अनुसार ज्यों ही तिकोटा में हमारा पड़ाव पड़ेगा, एक-दो दिनों के भीतर तुम वहां पहुंच जाओगी। येसू, पत्र में सारी बातें मैं नहीं लिख सकता। इन दिनों मानसिक रूप से मैं बहुत असन्तुलित हूं।...'

पति का व्यक्तित्व उस के बिना कितना अधूरा है, पत्र की एक-एक पंक्ति से यह स्पष्ट झलक रहा था।

"मैं उपस्थित हूं, सेवक को क्यों याद किया?" मुकुन्द सामने आ कर झुका।

"मुकुन्दजी, 'उन' का पत्र आया है।"

मुकुन्द ने मुस्करा कर प्रसन्नता व्यक्त की।

"लिखा है, मैं आज ही तिकोटा के लिए चल पड़ूं। आप को और गुरुदेव को साथ चलना होगा।

"आज ही? अब तो आधी रात हो चुकी है। तैयारियों में यह



प्रियतम का पत्र !

जितनी तेजी से हो सकता था, येसूबाई पढ़ती जा रही थी। तुम जल्दी आओ...पत्र से एक यही ध्वनि निकल रही थी। पति की निरीहता कितनी स्पष्टता से सामने आई थी !...अब मैं तुम्हारे बिना एक पल भी नहीं रह सकता...आज ही रवाना हो जाओ...अभी ही चल पड़ो...मेरी येसू...मेरी येसू...मेरी येसू...वह पढ़ती जा रही थी और पत्र को बार-बार आंखों और होंठों से लगा रही थी।

बीजापुर के युद्ध में सम्भाजी और दिलेरखां को करारी मात खानी पड़ी थी। दो माह के दुखद घेरे के पश्चात् मुगल सैनिक शर्म से झुके चेहरों और लटके हुए दिलों के साथ वापस लौट पड़े थे। इस हार का कारण वे मराठे सैनिक थे, जिन के दस्तों का संचालन करने के लिए दल-बल-सहित स्वयं शिवाजी बीजापुर आ पहुंचे थे। उन्होंने पुत्र सम्भाजी को बन्दी बनाने का पूरा प्रयास किया था, लेकिन सम्भाजी ने अपने को बचा ही लिया था और अब सेनापति दिलेरखां के साथ वह वापस लौट रहा था।

पिता के शक्तिशाली दस्तों ने छापामार युद्ध कर के उसे बहुत त्रस्त किया था। चारों ओर से घिरे बीजापुर के किले के भीतर वे दस्ते किस तरह रसद पहुंचा देते थे, यह सम्भाजी और दिलेरखां के लिए घोर आश्चर्य की बात रही थी। रात के अंधेरे में अचानक 'जय कोंकण ! जय भवानी !' के नारों के साथ मराठे तथा मावल सैनिक मुगलों पर टूट पड़ते और कुछ ही मिनटों में सैंकड़ों को आहत कर या मार कर गायब हो जाते।

जहां छापा पड़ता वहां हर तरफ से मुगल सैनिक दौड़ पड़ते लेकिन उसी समय ठीक विपरीत दिशा में मराठे वीर प्रकट हो जाते और भूखे शेरों की तरह हुंकारते हुए कूद पड़ते। बीजापुर के किले पर से प्रायः

रोज ही भयानक गोलाबारी होती। इधर से भी उस के जवाब दिए जाते। गोलाबारी में मुगलों के सामने बीजापुर नहीं टिक सकता था, लेकिन शिवाजी के छापामार दल, जो किले के भीतर कैद न हो कर चारों ओर मंडरा रहे थे, मुग्गलों और दिलेरखां के लिए जरूरत से ज्यादा ताकतवर सिद्ध हुए थे।

शम्भाजी ने लिखा था, 'येसू, बहुत अच्छा हुआ जो मैं ने तुम्हें अपने साथ न रखा, औरंगाबाद भेज दिया। यहां मुझे कैद करने के लिए पिताजी ने जी-तोड़ कोशिश की। तुम साथ होतीं तो अपने साथ तुम्हें भी कैद होने से बचाने में कितनी परेशानी उठानी पड़ती, इस की कल्पना मुझे कंपा देती है....'

१५ नवम्बर १६७६ के दिन बीजापुर का घेरा उठ गया था। अब मुगल सेना तिकोटा की ओर बढ़ रही थी, जहां वह एक अस्थायी पड़ाव डालने वाली थी।

शम्भाजी ने सूचित किया था, 'पत्र मिलते ही गुरुदेव और मुकुन्द के साथ तिकोटा चल पड़ो। मेरी गणना के अनुसार ज्यों ही तिकोटा में हमारा पड़ाव पड़ेगा, एक-दो दिनों के भीतर तुम वहां पहुंच जाओगी। येसू, पत्र में सारी बातें मैं नहीं लिख सकता। इन दिनों मानसिक रूप से मैं बहुत असन्तुलित हूं।....'

पति का व्यक्तित्व उस के बिना कितना अधूरा है, पत्र की एक-एक पंक्ति से यह स्पष्ट झलक रहा था।

"मैं उपस्थित हूं, सेवक को क्यों याद किया ?" मुकुन्द सामने आ कर झुका।

"मुकुन्दजी, 'उन' का पत्र आया है।"

मुकुन्द ने मुसकरा कर प्रसन्नता व्यक्त की।

"लिखा है, मैं आज ही तिकोटा के लिए चल पड़ूं। आप को और गुरुदेव को साथ चलना होगा।

"आज ही ? अब तो काफी रात हो चुकी है। तैयारियों में बहु

आधी से भी ज्यादा बीत जाएगी। मेरे विचार से कल सुबह निकलें तो अच्छा रहेगा।"

"नहीं ! ज्यों ही तैयारियां पूरी हों, मुझे सूचना दीजिए। कुछ घण्टों में तो मुकुन्दजी, कोई तम्बू जल जाता है और किसी को कोई मिल जाता है। इतना बहुमूल्य समय व्यर्थ नहीं गंवाया जा सकता।" येसूबाई ने व्यंग्य किया और चुटकी भी ली। परदे की ओट से सुन रही गुल शरमा गई। मुकुन्द खुल कर हंस पड़ा, "अपराध के लिए देवी से क्षमा चाहता हूं।"

"जाइए, इस बार क्षमा किया।" येसूबाई ने भी हंसी में सहयोग दिया।

मुकुन्द झुक कर वापस मुड़ा। ज्यों ही उस ने कपड़े की वह दीवार पार की, उस के कानों में एक हल्की 'सिस्' सुनाई पड़ी। वह रुका। सामने ही गुल खड़ी थी और मुस्करा रही थी।

"कहिए देवीजी ?" मुकुन्द उस के पास आया।

गुल के खुश चेहरे पर परेशानी तैरी, "हम तिकोटा जाएंगे, तब कवि कलश भी साथ होगा..."

"हां,...तो ?"

"मैं उस से छिप कर कैसे...?"

"तुम छोटी-छोटी बातों में इतनी उलझ जाती हो कि क्या कहूं। स्वामिनी से कहो कि तुम्हारे लिए चारों ओर से बन्द डोली चले।"

"बात मैं करूं ! यह काम मेरा है या तुम्हारा ?"

"दोनों का।"

"अयहय, दोनों का ! काम जनाब, आप का है आप का !"

मुकुन्द ने कान पकड़े, "चलिए, मान लेता हूं।"

गुल ने आसपास देखा, कोई नहीं था। मुकुन्द की नाक पर एक बारीक चिकोटी काट कर वह छू हो गई। मुकुन्द हक्का-बक्का रह गया, फिर नाक सहला कर हंसा और बाहर निकल आया।

तिकोटा आज रात को ही चल देना है, इस की सूचना देने के लिए

जब मुकुन्द कवि कलश के सामने उपस्थित हुआ, तो वह शराब के हल्के नशे में था।

"देवी बहुत असंयमी सिद्ध हुईं। सुबह की भी प्रतीक्षा न कर सकीं।"

मुकुन्द ने व्यंग्य किया, "अफीम का हुक्का आने में एक घड़ी की देर हो जाती है तो आप की चीख मुझे अपने तम्बू में सुनाई पड़ती है।"

पन्द्रह-बीस दिन पहले कवि कलश के सिर की पट्टी खुल चुकी थी। शुरू-शुरू में उसे आगजनी के ऐसे-ऐसे सपने आए थे कि वह नींद में चीखने पर मजबूर हो गया था। सपने उस की एक कमजोरी हो गई थी। शराब के नशे में जागते हुए ही सपने देखने में कितना मजा है, इस की चर्चा उस ने मुकुन्द से कई बार की थी।

कलश ने तुरन्त विषय बदल दिया, "शाहजादा मुअज्जम का मन आज बहुत खराब है।"

"क्यों?"

"सम्भाजी और दिलेरखां जैसे दो-दो सेनापति बीजापुर गए और पिस्त हो गए! क्या यह कोई छोटी हार है?"

मुकुन्द खामोश रहा।

"तिकोटा रवाना होने से पहले हमें शाहजादे की इजाजत लेनी चाहिए। उन का दिल नाजुक दौर से गुजर रहा है। इजाजत लेने मैं नहीं जा सकता।"

मुकुन्द ने वाक्य सुधारा, "इजाजत नहीं, हां, उन्हें सिर्फ खबर देनी होगी।"

"देवी से कहो कि रवानगी कल सुबह भी नहीं, दोपहर तक हो पाएगी।"

"शाहजादे से आप को डर लगता होगा," मुकुन्द हंसा, "मुझे नहीं लगता। मैं अभी जा कर उन्हें सूचित करता हूं। रवानगी इसी रात को होगी।"

कवि कलश, 'सुनो सुनो' करता रह गया और मुकुन्द बाहर निकल

कर शाहज़ादे के तम्बू की ओर बढ़ा।

दूत को सामने बिठा कर शाहज़ादा मुअज्जम बादशाह औरंगजेब के नाम एक पत्र लिखवा रहा था। मोर के पंख का डंठल छील कर बनाई गई कलम को दूत बार-बार स्याही में डुबोता और दीपक की रोशनी में कागज़ पर झुक जाता। शाहज़ादा शराब के छोटे-छोटे घूंट ले रहा था और बोलता जा रहा था।

बीजापुर में दिलेरखां की हार के समाचार नमक-मिर्च लगा कर लिखवाने के बाद उस ने कहा, "शिवाजी, जिसे आप पहाड़ी चूहा कहा कहते हैं, उसका बेटा सम्भाजी हमले में दिलेरखां के साथ गया था, फिर भी जीत हमारी न हो सकी। सम्भाजी मेरा दोस्त है। मैं उस का पूरा भरोसा करता हूं। मुझे लगता है कि दिलेरखां ने उस के साथ मेल न रखा होगा, वरना सम्भाजी के रहते हमारी मात नामुमकिन थी। मेरी निगाह में तो सम्भाजी की बहादुरी और होशियारी की कोई मिसाल नहीं हो सकती। इसी लिए मेरी दिली ख्वाहिश है कि मुझे दिलेरखां की बजाय कोई दूसरा सेनापति दिया जाए..."

दिलेरखां के खिलाफ और भी कई बातें लिखवा कर उस ने नीचे हस्ताक्षर किए। फिर दूत को बहुमूल्य मोतियों की माला उपहार में देते हुए कहा, "इसे बादशाह सलामत तक जल्द-से-जल्द पहुचाओ और जल्द-से-जल्द उन का खत ला कर हमें दो।"

दूत बाग-बाग हो उठा। उस ने कई बार झूल-झूल कर सलाम किया। चमकती आंखों के साथ वह विदा हो गया।

अब तक द्वारपाल ने मुकुन्द को बाहर ही रोक रखा था। वह भीतर आया, "सलाम साहब-ए-आलम !"

सारी बात सुनने के बाद मुअज्जम ने कहा, "हमें भला क्या एतराज हो सकता है। जितने सैनिकों की जरूरत समझो, ले जाओ। वहां पहुंच कर नए सिरे से सारे समाचार भिजवाने होंगे।"

"क्यों नहीं।" मुकुन्द झुका।

रात को जब मेमूबाई तथा उस की अनुचरियों की डोलियां रवाना हुई तो कवि मनन बहुत थका हुआ था। वह अपनी डोली में बैठा और सो गया।

"आप नींद ले लीजिए," मुकुन्द ने अपना घोड़ा मेमूबाई की डोली के साथ किया, "दिन में धूप सोने नहीं देगी।"

मेमूबाई मुस्कराई, "ऐसे में नींद नहीं आती, मुकुन्दजी।"

"कवि मनन इस मामले में बड़े भाग्यशाली हैं, जब जी चाहा, सो गए।"

मेमूबाई हंसी, "तिलकोटा पहुंचने में चार दिन तीन रातें लग जाएंगी।"

"हां स्वामिनी, उस से जल्दी नहीं हो सकती।"

पहले सशस्त्र घुड़सवारों का दस्ता था, फिर कवि मनन की डोली थी, उस के बाद थी मेमूबाई की डोली। बाद में अनुचरियों की तीन डोलियां थीं। हरेक में चार-चार अनुचरियां बैठी थीं। उन के पीछे सशस्त्र घुड़सवार थे।

जुलूस के आगे-आगे एक काबुली घोड़ा चल रहा था जिस के सवार ने बादशाह औरंगजेब का झण्डा तान रखा था।

"देवि, एक निवेदन है।"

"कहिए!"

"वचन दीजिए कि मुझे निराश नहीं करेंगी।"

"पहले बात कहिए।"

"आप को तिलकोटा पहुंचाने के बाद मैं सेवाओं से मुक्त होना चाहता हूं।"

"मुकुन्दजी! क्या कहते हैं आप?"

"हां देवि, मैं मेनका को साथ ले कर दूर चला जाऊंगा और अपनी छोटी-सी गृहस्थी बसा लूंगा।"

"धन्धा क्या करेंगे?"

"अभी तय नहीं किया लेकिन परिश्रमी व्यक्ति के लिए धन्धों की कमी नहीं होती।"

"आप का कहना ठीक है, लेकिन आप जाना क्यों चाहते हैं ?"

"मेनका को कलश से आखिर कब तक छिपा कर रखा जा सकेगा ?" मुकुन्द धीमे स्वर में बोला ताकि कहारों को सुनाई न पड़े।

"मुकुन्दजी, मेरे पास इस का हल है।"

"क्या ?"

"गुरुदेव का आप के स्वामी पर अनावश्यक प्रभाव है, जिसे मैं दूर करना चाहती हूं। तिकोटा में मैं उन से बात करूंगी कि वह गुरुदेव को अवकाश ग्रहण करने दें। उन्हें वापस मथुरा भेज दिया जाए, जहां वह बच्चों को पढ़ाने-लिखाने का काम करें। उन का राजनीति में बने रहना मराठों के लिए शायद हानिकर है।"

"मुझे सन्देह है, स्वामी इस के लिए तैयार न होंगे।"

"क्यों न होंगे ? मथुरा नहीं तो गुरुदेव को औरंगाबाद लौटा दिया जाए। आप और मेनका मेरे साथ रहेंगे और मैं तो कभी औरंगाबाद जाने की नहीं। इन दो के सिवा और कौन मेनका को जानता है ?"

"कोई नहीं।"

"मुकुन्दजी, जब तक आप सेना से सम्बद्ध हैं, आप के पास हर तरह की सुविधाएं हैं।"

"लेकिन..."

"सोचिए तो, इन दिनों किस का जीवन सुरक्षित और शान्तिमय है ? एक बार जिस का हरण हुआ था, उस का दूसरी बार भी हो सकता है..."

मुकुन्द सुनता रह गया।

लेकिन अगर वह किसी अंगरक्षक की पत्नी है तो उस पर आंच आने की सम्भावनाएं कम हैं। अब भी आप त्यागपत्र देना चाहेंगे ?"

१३

दोपहरी झुक चुकी थी। मुगल सेना ने तिकोटा में पड़ाव डाल दिया था।

"सम्भाजी, हम ने सुना है, तिकोटा के व्यापारियों के पास बहुत दौलत है।" दिलेरखां ने कहा। सम्भाजी ने उस की ओर देखा।

"क्यों न उन्हें लूटा जाए?"

सम्भाजी चुप रहा। दिलेरखां मुस्कराया, "आप को शायद हमारी बात पसन्द नहीं आई।"

सचमुच सम्भाजी को यह प्रस्ताव रुचा नहीं था।

जब मुगल सेना बहादुरगढ़ से बीजापुर की ओर चली थी, तो रास्ते में भूपालगढ़ पड़ा था, जहां शिवाजी का महत्वपूर्ण खजाना था। पिता के प्रति रोष से भरे सम्भाजी ने दिलेरखां को इस खजाने का पता दे दिया था जिसे अविलम्ब लूट लिया गया था। लूट के कारण उस समय तो सम्भाजी को कोई दुख न हुआ था, लेकिन जब बीजापुर में हारने के बाद सब वापस लौट रहे थे तो उस ने सोचा था, 'अगर येसू साथ में होती, तो? क्या मुझे यह भूपालगढ़ का भेद खोलने देती? अपने ही पिता का धन लुटवा कर क्या मैं ने अक्षम्य अपराध नहीं किया है?' सम्भाजी आत्मधिक्कार की भावना से अभिभूत हो उठा था। शुरू-शुरू में जो दिलेरखां उसे बहुत प्रिय लगा था, वही अब बुरी तरह खटकने लगा था।

सम्भाजी का मराठा दस्ता बीजापुर में आधे से ज्यादा कत्ल हो चुका था जिस से सम्भाजी किसी पर-कटी चिड़िया की तरह अब लाचार था। 'अगर दिलेरखां मुझे कैद करना चाहे तो कौन आएगा बचाने? इतनी बड़ी मुगल सेना के सामने मेरा कमजोर दस्ता कैसे टिक पाएगा?'

वापसी के समय मुगल सैनिक दिलेरखां के लिए कई औरतें

लाए थे। सेना के साथ उनकी डोलियां चलतीं। सम्भाजी अपने पुराने दिनों की याद कर के बुरी तरह कुंठित हो जाता, जब उस के लिए भी इसी तरह औरतें लाई जाती थीं। 'इस दुनिया में सिवा औरतों और शराब के और है ही क्या ?' कई बार वह विद्रोह भी कर उठता। दर-असल इस तरह वह अपनी हार को भूलना चाहता था, लेकिन उसी समय उस की आंखों के सामने येसूबाई का भोला चेहरा उभर आता।

और सम्भाजी ने दूत दौड़ा दिया ···येसू···येसू···तुरन्त आओ···

अपने-आप से कितना डरने लगा था वह !

अब तिकोटा को लूटने का प्रस्ताव आया तो वह किसी भी रूप में उस का समर्थन न कर सका। यह सत्य था कि बीजापुर के दो माह के घेरे ने मुगल सेना को गरीब बना दिया था, लेकिन धन औरंगाबाद से भी तो मंगाया जा सकता था। तिकोटा शिवाजी के अधीन था। 'उसे लूट कर दिलेरखां मेरे पिता को नुकसान पहुंचाना चाहता है,' यह समझते सम्भाजी को देर न लगी।

दिलेरखां हंसा, "सम्भाजी राजकुमार, बात आप को जंचे या न जंचे, मैं तो तिकोटा जरूर लूटूंगा।" उस ने 'राजकुमार' शब्द इस तरह कहा कि सम्भाजी के बदन में आग-सी लग गई।

इस वाक्य के पीछे छिपा दूसरा वाक्य कितना कटु था···सम्भाजी, तुम राजा नहीं, सेनापति नहीं, केवल राजकुमार हो···कमजोर राजकुमार···जिस के सैनिक दस्ते की ताकत शून्य के बराबर है··· तुम मेरी —सेनापति दिलेरखां की बात का विरोध करो या हामी भरो, फर्क क्या पड़ता है !···

कुछ ही घण्टों बाद तिकोटा की हर सड़क पर मुगल सैनिक फैल चुके थे। इच्छा न होते हुए भी सम्भाजी दिलेरखां के साथ घूम रहा था। एक भी दरवाजा या खिड़की खुली नहीं थी। कहीं-कहीं कौओं के झुंड घुड़सवारों पर भय से मंडराते हुए शोर मचाते, जैसे इस नगर में आदमी न रहते हों, मात्र कौए ही रहते हों।

अब लूट किसी भी क्षण शुरू हो सकती थी। 'काश! मैं इसे रुकवा सकता।' सम्भाजी दर्द से आलोडित हुआ जा रहा था, ऊपर से चाहे जितना शान्त और कठोर हो।

"यह इमारत शानदार है।" दिलेरखां ने घोड़ा रोका।

"हां।" सम्भाजी ने छोटा-सा जवाब दिया।

"आओ!"

दोनों उस इमारत के दरवाजे की ओर बढ़े और घोड़ों से उतरे। दिलेरखां ने सीढ़ियां चढ़ कर आंगन पार किया। खट खट···उस ने सांकल खड़काई।

रात होने में अभी एक घण्टे की देर थी। चारों ओर फैली श्मसान जैसी चुप्पी में सांकल की डरावनी आवाज···

दरवाजा न खुला, खुली बगल की खिड़की—जरा-सी, और एक युवक ने बाहर झांका। भय से उस की पलकें फटीं और खिड़की बन्द हो गई।

"खोल, सुअर!"

दरवाजा खुला। दिलेरखां युवक को धक्का दे कर भीतर घुस गया। पीछे-पीछे सम्भाजी ने प्रवेश किया। कमरे में युवक और उस के कमजोर बाप के सिवा कोई नजर न आया।

"जो कुछ तुम्हारे पास है, दे दो।" दिलेरखां ने कर्कश स्वर में कहा। बूढ़ा थरथरा उठा। युवक ने थूक निगला, "हम सब देंगे लेकिन हमें···हमें मारिएगा नहीं···" वह अपने कदम सम्भाल नहीं पा रहा था। किसी तरह उस ने तिजोरी खोली और जो भी भीतर था, दिलेरखां के सामने ढेर लगा दिया। और तब बूढ़े की आंखें भर आईं।

"छिपा कर कितना रखा है?"

"कुछ नहीं, सरकार!" युवक ने कातर हो कर कहा।

"क्या तुम्हारे पास केवल यही दौलत है, और कुछ नहीं?"

युवक समझ न पाया कि इस का क्या जवाब दे।

"मेरा मतलब है, कोई मांस···"

"हुजूर, हम मांस नहीं खाते।"

दिलेरखां हो-हो कर हंस पड़ा, "खाने का नहीं, चाटने का, उठा-उठा कर पटकने का, नोचने का मांस ! समझे, काफिर ?"

सम्भाजी ने क्रोध से दिलेरखां को घूरा। वह फिर से खिलखिला उठा, "जरूर होगा, होगा क्यों नहीं !"

उसी समय एक बन्द दरवाजे के पीछे से किसी बच्चे के रोने की आवाज आई, जो तुरन्त किसी की हथेली द्वारा मूंद दी गई। दिलेरखां का चेहरा लोमड़ी की तरह मक्कार और लालची हो उठा। दरवाजे के पास जा कर उस ने जोर से ठोकर मारी।

सम्भाजी आगे आया, "दिलेरखां !"

"फरमाइए !"

"हमें इस समय सिर्फ दौलत की जरूरत है।"

"हमें का मतलब आप को और मुझ को ?" दिलेरखां दोनों पैरों के बीच की दूरी बढ़ा कर खड़ा हो गया, दोनों हाथ शान से छाती पर मोड़ कर।

"नहीं, मुगल सेना को।"

"लेकिन अपने लिए मुझे और चीजों की भी जरूरत है।"

"मैं ऐसा नहीं होने दूंगा।"

"अब तक तो होने दिया है। आप को मेरे निजी मामलों में दखल देने का क्या हक है ?"

सम्भाजी की आंखें जलीं और हाथ तलवार की मूठ पर चला गया। फिर वह लाचारी से पीछे मुड़ा और इमारत से बाहर निकल गया। घोड़े पर लद कर वह अपने तम्बू की ओर चल पड़ा। पीछे से उसने दिलेरखां का क्रूर हास्य सुना। कोई मछली दुम पकड़ कर पानी से आधी बाहर कर दी जाए और आधी पानी में रखी जाए···गलफड़ हिलाती रहो, जीती रहो···जरा भी चूं-चपड़ की और पूरी बाहर !···बिल्कुल यही स्थिति

थी। सम्भाजी ने गर्म सांस छोड़ी।

तम्बू में जा कर वह लेट रहा। पड़ाव में बहुत कम सैनिक थे, अधिकांश लूट में गए हुए थे, अतः वहां उन का शोर नहीं था।

रात हुई।

तड़पन से छुटकारा पाने के लिए उस ने येसूबाई की याद में डूबने की कोशिश की। येसू…वह आ रही होगी…कल आ पहुंचनी चाहिए। वह उस से लिपट कर पूछना चाहता था, 'अब मैं क्या करूं?' उसे नहीं मालूम था, येसू के पास इस का जवाब है या नहीं, लेकिन केवल पूछने के लिए ही सही, वह उस से पूछना अवश्य चाहता था।

दिलेरखां भीतर आया। "राजकुमार बहुत थक गए हैं क्या?"

"नहीं।"

"आइए, मैं आप को कुछ नजारे दिखाऊं।"

"किस के नजारे?"

"हमें लूट में क्या-क्या मिला।"

"मुझे देखने का शौक नहीं है।"

"फिर भी आइए! आइए तो सही!" दिलेरखां ने उस की बांह पकड़ ली, "आप तो बड़ी जल्दी नाराज हो जाते हैं।"

सम्भाजी उस के साथ बाहर घिसटा।

घोड़ों पर लूट का माल लदा हुआ था। सैनिक उन की लगामें पकड़ कर हंसते हुए सामने से गुजर रहे थे।

"कितनी दौलत मिली?" सम्भाजी ने पूछा जिस के जवाब में दिलेरखां ने होंठ बिचकाए, "नहीं मालूम, अभी गिनती नहीं हुई। और यह असली माल थोड़े ही है, वह तो इधर है। आइए!" सम्भाजी को साथ ले कर उस ने एक तम्बू में प्रवेश किया।

वहां करीब छः खूबसूरत औरतें एक कोने में एक-दूसरे से सट कर सिमटी हुई बैठी थीं। दिलेरखां ने ताली बजाई। कुछ सैनिक भीतर आए। "सब को अलग-अलग खड़ी करो।" औरतें खड़ी हुईं। [illegible]

कारण उन की पलकें झप नहीं रही थीं। जब वे झुंड तोड़ कर खड़ी की गईं तो उन का धैर्य चुक गया। आपस में सटी रहने के कारण उन का रुदन रुका हुआ था, जो अलग-अलग होते ही फूट पड़ा। वे सिहर रही थीं, सिसकियां भर रही थीं। उन के बाल बिखरे हुए थे। उन की कलाइयों पर नाखून गड़ने के निशान थे। कुछ के कपड़े फाड़ डाले गए थे।

"बोलिए, आप को कौन-कौन सी चाहिए ?"

सम्भाजी चुप रहा। एक औरत के पास पहुंच कर दिलेरखां ने कहा, "उस मकान में आप ने जिस बच्चे को रोते सुना था, वह इस का था। मैं बच्चे को मार कर इसे उठा लाया। गजब की हसीन है।" उस ने चेहरा ढांक रही उस औरत की हथेलियों को हटाना चाहा। स्पर्श होते ही वह सिहरी और लड़खड़ा कर गिर गई। "लो, छूते ही बेहोश !" दिलेरखां हंसा, "क्या नजाकत है !"

दूसरी औरतों में से दो खड़ी न रह सकीं। वे बैठ गईं और बिलखने लगीं। उन की धीमी सिसकियां अब चीखों में बदल गईं।

"दिलेरखां, मैं आप पर जोर नहीं डाल सकता लेकिन सिर्फ एक दोस्त के नाते कह सकता हूं। आप इन्हें छोड़ दें।"

"छोड़ दूंगा, लेकिन कुछ दिनों बाद।" वह बाहर आया, "एक-एक, दो-दो बार तो इन्हें चखूंगा ही। आप को एक भी नहीं चाहिए ? मैं ने तो सुना था कि आप…"

"आप ने जब सुना होगा, सही सुना होगा, लेकिन अब यह गलत है। मैं अब कोई और हूं।"

लेकिन दिलेरखां दूसरे तम्बू की ओर बढ़ा, "जरा यहां भी आइए !" तम्बू में से दर्दनाक कराहें उठ रही थीं। दो मोटे व्यक्तियों के पैर बांध कर उन्हें जमीन पर डाल दिया गया था। दो पहलवान, जिन के शरीर तेल और पसीने के कारण मशाल की रोशनी में चमक रहे थे, उन पर कोड़े बरसा रहे थे। केवल पैर बंधे होने के कारण वे दोनों पीड़ा से

जमीन पर हथेलियां पटक सकते थे। उन के मुंह से खून के तार बंध गए थे। कोड़े बरसते और उन की चीखें फटने लगतीं। कपड़े उधड़ जाने के कारण वे लगभग नग्न हो चुके थे। मांस जगह-जगह नुचा हुआ था। कोड़े की मार के कारण बनी धारियों का जिस्म पर जाल-सा बुन गया था।

दिलेरखां ने पहलवानों को रोका, "बस, और नहीं। मर जाएंगे कम्बख्त !" फिर सम्भाजी की ओर मुड़ कर कहा, "ये त्रिकोटा के सब से बड़े साहूकार हैं। अपने छिपे खजानों के पते नहीं दे रहे हैं।"

एक साहूकार गिड़गिड़ाया, "हुजूर, और कुछ नहीं है। सच मानिए, जो था, सब दे दिया। मत मारिए हुजूर, मत मारिए, अब जिन्दा नहीं बचेंगे।"

"चुप हरामजादे ! जान दोगे और पैसा नहीं दोगे ?" दिलेरखां ने उसे लात मारी। लात एक खुले घाव पर लगी, साहूकार ऐंठ गया। दिलेरखां ने फिर से एक मोटी गाली दी।

"नजारा पसन्द आया ?" सम्भाजी की ओर सवाल उछाला गया।

"आप मुझे चिढ़ाना चाहते हैं ?"

"चिढ़ाना ? आप को ? मैं ? कतई नहीं।"

"जो मुझे पसन्द नहीं है, बुला-बुला कर वही दिखाने का क्या मतलब ?"

"ओहो, तो यह आप को वाकई पसन्द नहीं है ! मैं तो समझता था, पसन्द है और आप सिर्फ बन रहे हैं।"

"गलतफहमी दूर हुई ?"

"शायद।"

"इन्हें छोड़ दीजिए। इन के पास कुछ और होता तो जरूर दे देते।"

"छोड़ूं, न छोड़ूं, मेरी मरजी। इन्हें पकड़ कर [illegible] आप ? जब मैं आप के मामलों में दखल नहीं देता [illegible] है ?"

सम्भाजी ने होंठ काटे, "मैं जाना चाहूंगा।"

"मेरी इजाजत है।"

"मैं ने आप से इजाजत नहीं मांगी।"

"गलती हुई, माफी चाहता हूं। ठीक है, मैं समझ गया कि आप जाना चाहते हैं। जाइए।"

सम्भाजी वापस मुड़ा ही था कि दिलेरखां ने फिर छेड़ा, "वैसे कुछ नजारे अभी और हैं, शायद आप देखना चाहें।"

"शुक्रिया!" सम्भाजी बाहर निकल गया। 'दो माह पहले यही दिलेरखां शहद की तरह मीठा था, आज मेरी छेड़खानी करने में, मुझे चिढ़ाने में उसे मजा आता है। यदि मेरा दस्ता ताकतवर होता, यदि मैं कहीं का शासक होता—वह ऐसा साहस कर पाता?' विचारमग्न सम्भाजी अपने तम्बू के पास पहुंचा, लेकिन तभी ध्यान आया कि दिलेरखां उसे छेड़ने के लिए यहां भी आ सकता है। वह आगे बढ़ गया। कुछ तम्बुओं को पार करने पर एक खुला मैदान आया। वह चलता गया, अंधेरे में, एकान्त की तलाश में।

वह पेट के बल घास पर लेट गया और दोनों हथेलियों पर अपनी ठुड्डी टिका कर सोचता रहा···कई बातें थीं जो मच्छरों की उदास गुन-गुन की तरह उसे याद आईं। पन्हाला से उसे भागना पड़ा—दूसरा कोई चारा नहीं था। भागने के बाद बीजापुर के हमले में वह दिलेरखां का साथ न देता तो क्या करता?—यह भी एक लाचारी थी। अब दिलेरखां द्वारा अपमान सहते रहने की नई लाचारी पैदा हुई है। ऐसा कब तक चलता रहेगा? क्या है इस का उपाय?

'जिस तरह मैं पन्हाला से भागा था, उसी तरह यहां से भी भाग जाऊं, तो?' उस ने सोचा, 'लेकिन भाग कर अब कहां जाऊंगा? पन्हाला से पलायन कर के मैं मुगलों में शामिल हुआ हूं। मुग़लों को भी छोड़ दूंगा तो और कहां ठौर मिलेगा? मराठे मुझ से खार खाए बैठे हैं, मुझे छांह नहीं देंगे। उन्हें क्या मालूम, किन परिस्थितियों में मुझे पन्हाला

छोड़ना पड़ा। और मान लो, वे छांह दें, तो भी वापस भला कैसे लौटा जा सकता है? तुरन्त सोयराबाई के षड्यन्त्र शुरू हो जाएंगे। जब तक वह और हीरोजी जिंदा हैं, वापस नहीं जाया जा सकता। ज्यों-ज्यों दिन बीत रहे हैं, राजाराम को उत्तराधिकार मिल जाने की सम्भावनाएं बढ़ रही हैं...' सम्भाजी ने मुट्ठियां भींच लीं।

वह अच्छी तरह समझ गया था कि मुगल उस के सच्चे मित्र नहीं बन सकते। और यदि वे मित्र नहीं हैं तो कभी-न-कभी शत्रु हो जाएंगे—परिस्थितियों को आज नहीं तो कल, यह पलटा जरूर खाना है। 'तब उन से टक्कर लेनी होगी और टक्कर के लिए चाहिए सेना, सत्ता! नहीं, राजाराम को मराठा सिंहासन नहीं मिलना चाहिए...वह मेरा है...मेरा...' सम्भाजी उठ खड़ा हुआ।

काफी देर तक उसे नींद न आ सकी। सुबह जब वह देर से उठा तो उस के तम्बू में अजीब-सी एक बू भरी हुई थी। यह बू किसी चूहे के मरने की नहीं थी, लेकिन थी उतनी ही घिनौनी। उस ने रक्षक को बुलाया, "तुम्हें बदबू मालूम पड़ती है?"

"जी हां, महाराज," रक्षक ने उत्तर दिया, "बाईं ओर के तम्बू से आ रही है।"

"क्यों? वहां क्या है?"

रक्षक की आंखें भर आईं। उस के गले से शब्द न फूट सके। सम्भाजी उसे विदा कर के अचम्भे में पड़ता हुआ बाहर आया। बाहर वह बू और ज्यादा थी। बाईं ओर का तम्बू बिल्कुल सूना था। नाक पर रूमाल रख कर वह भीतर गया और तुरन्त बाहर निकल आया। भीतर के दृश्य से उसे कंपकंपी हो आई थी। वे लाशें! औरतों, बच्चों, नवयुवकों, बूढ़ों की वे लाशें, विकृत, बुरी तरह फूली हुईं, एक पर एक लदी हुईं। सड़े मांस का विगलित ढेर...

वह रक्षक के पास आ कर खड़ा हो गया। रक्षक ने कातर होते हुए कहा, "कई लोग डर के मारे कुओं में कूद पड़े थे। अब सेनापति दिलेरखां

उन की लाशें निकलवा रहे हैं।"

"हूं," सम्भाजी ने झटपट अपने हथियार बांधे और रक्षक से कहा। "मैं इस तम्बू में नहीं रह सकता। इसे उखड़वा कर पड़ाव के उत्तर में आखिरी छोर पर लगवाओ। मैं उसी ओर जा रहा हूं।"

"जी!"

दोपहर हुई और येसूबाई आ पहुंची।

"गुरुदेव, यहां से दिलेरखां अठनी की ओर बढ़ने की सोच रहा है। जैसे नृशंस अत्याचार उस ने यहां किए हैं, वैसे ही वहां भी करेगा।"

"समस्या विकट है, न उगलते बनता है, न निगलते।" कवि कलश ने कहा। काफी देर से सम्भाजी और उस में बातें हो रही थीं।

"आप को कोई उपाय नहीं सूझता?" सम्भाजी ने पूछा। कलश ने नकार में सिर हिलाया।

पास बैठे मुकुन्द ने प्रश्न किया, "मेरी स्वामिनी का क्या कहना है?"

"वह भी अभी कोई निर्णय नहीं ले पाईं।" सम्भाजी का उत्तर था।

अन्त में तय किया गया कि दिलेरखां को अभी बिल्कुल न छेड़ा जाए। जो वह करता है, करने दिया जाए। छेड़ने पर वह खामख्वाह परेशानियां खड़ी करेगा।

कुछ दिनों बाद मुगल सेना ने अठनी आ कर पड़ाव डाल दिया।

सम्भाजी ने दिलेरखां के तम्बू में कदम रखे। दिलेरखां ने उठ कर स्वागत किया, "अठनी को लूटने के बाद हम पन्हाला पर आक्रमण करें तो कैसा रहे?"

"पन्हाला पर?"

"जहां आप के अब्बाजान ने आप को कैद किया था।"

प्रस्ताव सम्भाजी को जरा भी न रुचा, लेकिन उस ने प्रसन्न होने का अभिनय किया।

कवि कलश अनुचर से भांग घुटवाने की बजाय खुद घोंट रहा था। उसे भाग कई दिनों बाद मिली थी अतः घोंटने का आनन्द भी वह खुद उठाना चाहता था। सुबह का समय था और वह अभी-अभी नहा कर निबटा था।

"शायर !"

उस ने दृष्टि उठाई। सामने दिलेरखां खड़ा था। "आइए, आइए, तशरीफ रखिए !" उस ने कहा।

दिलेरखां न बैठा, "सम्भाजी कहां है ?"

"जी ?"

"सम्भाजी कहां है ?"

"अपने तम्बू में नहीं है ?"

"नहीं।"

"आसपास कहीं गए होंगे। क्यों ? क्या बात है ?" दिलेरखां की कठोर आंखों ने कवि कलश को मजबूर किया कि वह उठ खड़ा हो।

"मैं उसे गिरफ्तार करना चाहता हूं।"

"गिरफ्तार ?" कलश की आंखें फैल गईं।

"हां, बादशाह-सलामत ने हुक्म भेजा है कि गिरफ्तार किया जाए। उन को उस पर गद्दारी का शक है।"

कलश मुस्कराया, "क्यों मजाक करते हैं ! आइए, भाग पीजिए ! दूध के साथ लेंगे या यों ही ?"

"शायर, यह मजाक नहीं है। बताओ, कहां है सम्भाजी ?"

कलश हतप्रभ हो कर देखता रह गया, "मुझे···मुझे नहीं मालूम।"

दिलेरखां ने भौंहें सिकोड़ कर उसे घूरा।

अभी-अभी औरंगजेब का दूत आया था। औरंगजेब को वाकई शक था कि बीजापुर में सम्भाजी ने चोरी-चोरी अपने पिता शिवाजी की मदद दी है और किले के भीतर रसद भी पहुंचाई है—वरना मुगल सेना की हार कैसे होती ? उस ने दिलेरखां को हुक्म भेजा था कि वह फौरन

सम्भाजी को कैद कर ले।

तुरन्त सम्भाजी का तम्बू घेर लिया गया था। सशस्त्र सैनिकों के साथ दिलेरखां भीतर घुसा था, लेकिन सम्भाजी वहां नहीं था। पड़ाव का एक-एक तम्बू दिलेरखां ने छान मारा था लेकिन वह मराठा राजकुमार की परछाइं तक न पा सका था। साथ में उस की रानी येसूबाई, अंगरक्षक मुकुन्द तथा दो-एक दासियां भी गायब थीं। मराठा दस्ते का एक भी सैनिक समूचे पड़ाव में नहीं था।

दिलेरखां के गुप्तचर चारों ओर रवाना हो चुके थे।

सुन कर कवि कलश का चेहरा फक हो गया, "क्या···क्या···मुझे भी कैद···?"

"आप क्या चाहते हैं ?" दिलेरखां हंसा।

"मैं ? मैं क्या चाह सकता हूं ? आजादी किसे अच्छी नहीं लगती ?"

"आप सम्भाजी को भूल जाइए और हम से वफादारी करिए।"

"क्यों नहीं।" कलश ने तुरन्त स्वीकार कर लिया।

'शायर को मराठों के कई राज मालूम होंगे।' दिलेरखां मन-ही-मन बुदबुदाया।

कुछ देर बाद सम्भाजी जिन सेवक-सेविकाओं को साथ न ले जा सका था, उन्हें कवि कलश को सौंप दिया गया।

१४

पन्हाला ! शिवाजी का महल !

सम्भाजी कक्ष से बाहर निकला। उस की आंखों में पश्चात्ताप का धुआं भरा हुआ था। वह येसूबाई के कक्ष में आ कर कुर्सी में बैठ गया।

येसूबाई खिड़की के पास खड़ी हो कर आकाश की ओर देख रही थी। वहा एक भी बादल नहीं था। बहुत ऊंचाई पर कुछ चीलें गोल चक्कर काट रही थी। उन की हल्की रिरियाहटें सुनाई पड़ रही थीं।

"उन्होंने क्या कहा ?" वह पति की ओर घूमी।

सम्भाजी व्यंग्य से सूखी मुस्कान मुस्कराया, "उन्हे मुझ पर विश्वास नहीं है। या कहो, बहुत कम विश्वास है।"

येसूबाई चुप रही।

पन्हाला'''जहां से उन्हें भागना पड़ा था, वहीं अब लाचारी से लौटना पड़ा था। पिछले कुछ माहों से जीवन कितना संघर्षमय और घटना-पूर्ण हो गया था ! आज परिस्थितियां कुछ हैं, कल क्या हो जाएंगी, किसी को नही मालूम था। पिछले १५-२० दिन येसूबाई की आंखों के सामने घूम गए।

अचानक—बिलकुल अचानक वे अठनी से भागे थे। बादशाह औरंगजेब ने सम्भाजी की गिरफ्तारी का हुक्म दिया है, ऐसे समाचार खुद शाहजादा मुअज्जम ने भिजवाए थे। उस का दूत छिपे रूप से मुकुन्द से मिला था। शाहजादा मुअज्जम ने लिखा था, 'मैं ने अब्बाजान से दिलेरखां की जगह कोई और सेनापति औरंगाबाद भेजने के लिए अर्ज किया था, लेकिन मालूम पड़ता है कि अब्बाजान को मेरी बात जंची नही। उन्होंने बजाय इस के कि दिलेरखां को वापस बुलवाते, आप को गिरफ्तार करने का हुक्म दिया है। मैं नहीं जानता, मेरा यह खत आप को मौके से मिल पाएगा या नही। अगर गिरफ्तारी से पहले मिल जाए—जैसी कि मुझे आशा है—तो आप तुरन्त अठनी छोड़ कर भाग जाएं। मैं आप को अपना अजीज दोस्त समझता हूं, इसीलिए लिख रहा हूं। दिलेरखां ने आप के और मेरे खिलाफ बादशाह सलामत के कान खूब भरे हैं। अठनी से भाग कर आप कहां जाएं, यह आप ही सोचें। मुझे बड़ी लाचारी और खेद से कहना पड़ता है कि आप का औरंगाबाद आना ठीक न होगा। आप -

यहां आएंगे तो अब्बाजान का शक मुझ पर भी बढ़ जाएगा, जिस से नई परेशानियां पैदा होंगी। वेहतर है कि आप कुछ अरसे तक कहीं छिप कर रहें। मैं अब्बाजान को फिर से खत लिखवा रहा हूं कि सम्भाजी मुगल सल्तनत की जानिव पूरी तरह वफादार हैं। जब उन्हें भरोसा हो जाएगा और दिलेरखां को वापस बुलवा लिया जाएगा, आप औरंगाबाद लौट आइएगा।'

जितनी जल्दी और जितनी चोरी से हो सकता था, भागने की तैयारियां की गईं। वे तैयारियां कितनी सनसनीखेज थीं, इस की याद ने येसूबाई को झिंझोड़ दिया। उस समय तक गिरफ्तारी का हुक्म अठनी नहीं पहुंचा था, लेकिन पहुंच किसी भी क्षण सकता था। अगर इन के भागने से पहले ही पहुंच गया, तो? सम्भाजी के मुट्ठी-भर सैनिक कोई काम नहीं आ सकते थे। शाम तक सारी तैयारियां हो गईं लेकिन पलायन के लिए रात काली होने का इंतजार करना था...इंतजार पूरा होने से पहले ही हुक्म ले कर दूत आ गया, तो? येसूबाई की धड़कन वैठ रही थी।

बड़ी मुश्किल से उस ने सम्भाजी को राजी किया था कि कवि कलश को पलायन में साथ न रखा जाए। 'उन्हें हम फिर बुला लेंगे।' येसूबाई के इस तर्क के उत्तर में सम्भाजी ने हर बार कहा था, "यहां उन पर खतरा आ सकता है।"

"नहीं, ऐसा नहीं होगा। हम ने उन्हें पलायन में साथ न रखा, इसी बात से दिलेरखां को विश्वास हो जाएगा कि हमारी-उन की ज्यादा नहीं पटती। घर का भेदिया सभी अपनी ओर करना चाहते हैं। दिलेरखां गुरुदेव को कोई नुकसान न पहुंचाएगा।"

"लेकिन तुम उन्हें साथ क्यों नहीं रखना चाहतीं?"

"मुगल शिविर में कोई ऐसा व्यक्ति अवश्य होना चाहिए जो हमारे गुप्तचर का काम करे। हमें औरंगाबाद कब लौटना चाहिए या लौटना चाहिए अथवा नहीं, इस की सूचनाएं विना गुप्तचर के हमें कैसे

मिलेंगी ?"

सम्भाजी को यह बात जंच गई थी और वह मुकुन्द के साथ कवि कलश के तम्बू की ओर चल पड़ा था। सारी बात सुन कर कलश ने खिलते हुए कहा था, "मुझे कोई एतराज नहीं है। दिलेरखां को मैं भरोसा दिला लूंगा कि मैं अब मुगलों के साथ हूं—सम्भाजी से मेरा कोई लेन-देन नहीं है। बल्कि राजकुमार, सच्चाई तो यह है कि पलायन में मैं स्वयं आप के साथ नहीं रहना चाहता।"

"क्यों ?"

"इसलिए कि पलायन के बाद जो जिंदगी बितानी पड़ेगी, वह मजेदार न होगी। न भांग, न शराब, न'''न'''मेरा मतलब आप समझ गए होंगे। मैं मुगल शिविर में ही ठीक हूं। आराम का आराम, काम का काम। आप जाइए, मेरी शुभ-कामनाएं आप के साथ हैं।"

मुकुन्द को कवि की बातें जरा भी न रुचि थीं। उन बातों में नाम-मात्र भी देशभक्ति नहीं थी। थी केवल वासना और आराम के प्रति लोलुपता।

"संस्कृत का कोई 'बढ़िया' श्लोक सुनाऊं ?" कवि ने एकाएक पूछा था। "नहीं," कह कर सम्भाजी और मुकुन्द उठ खड़े हुए थे।

कवि के साथ न चलने से मुकुन्द की बहुत बड़ी समस्या अपने-आप सुलझ गई थी। इस पलायन में डोलिया नहीं चल सकती थी। येसूबाई, गुल तथा एक और दासी के सिवा सभी स्त्रियों को यहीं छोड़ जाना था क्योंकि उन से कठिन घुड़सवारी असम्भव थी। यदि कवि साथ चलता तो घोड़े की खुली पीठ पर बैठी गुल उस से कब तक छिपी रह पाती ? उसे बुरका पहनाया जाता तो भी कवि आश्चर्य करता कि मुसलमान स्त्री हमारे साथ कैसे आई है। स्वभाव के अनुसार वह सारी बातें जान लेना चाहता।

"मुगल शिविर में हमारा कोई गुप्तचर भी होना चाहिए," येसूबाई का यह एक बहाना ही था। दरअसल वह चाहती थी, कवि कलश से

किसी तरह उस के पति का पिण्ड छूटे। सम्भाजी इसे अनायास न समझ सका था।

येसूबाई पति के घोड़े पर बैठी थी और गुल मुकुन्द के घोड़े पर। पहरेदारों की आंख बचाते, अंधेरे का आलिंगन करते और तम्बुओं की आड़ लेते हुए पड़ाव से किसी तरह वे सुरक्षित पलायन कर गए थे।

तब दूसरी समस्या सामने आई थी कि जाया कहां जाए। डूबते को तिनके का सहारा चाहिए था—उन के घोड़े बीजापुर की ओर दौड़ पड़े थे—उसी बीजापुर की ओर, जिस पर उन्होंने हमला किया था। उन्हें नहीं मालूम था कि वहां उन का स्वागत होगा या उन्हें कैद किया जाएगा—बस, वे दांव आजमाना चाहते थे।

धुंधली आशा में जैसे कौंध भर गई हो—बीजापुर ने उन का अत्यन्त हार्दिक स्वागत किया। बीजापुर तब मसऊदखां के अधिकार में था। उस ने मधुरता से कहा, "आप हमारे मित्र-छत्रपति शिवाजी महाराज के सुपुत्र हैं। बीजापुर को अपना ही घर समझिए!"

"यह सुनते ही सम्भाजी को कोमल भावनाओं ने आलोड़ित कर दिया था। शायद पहली बार पिता के लिए उस के मन में सच्चा आदर जन्मा। मसऊदखां के शब्द उस के कानों में गूंज उठे, "हम ने आप के पिता को वचन दिया है कि हम आप की सहायता करेंगे और फिर से मराठा साम्राज्य में लौट जाने के लिए समझाएंगे।"

'जिस पिता ने मेरे विरुद्ध युद्ध किया और मेरे ही कारण औरंगजेब से हुई सन्धि भंग कर दी, जिसे मैं अपना शत्रु माने हुए हूं, उसी पिता ने मेरी सुरक्षा और सहायता का इतना ध्यान रखा। क्या मैं अब तक उन्हें गलत नहीं समझता रहा? उन्हें मैं ने हर तरह से नुकसान पहुंचाया है। बदले में यह स्नेह!' सम्भाजी का मन भर आया था।

"अनुमति हो तो मैं आप के बीजापुर लौट आने की सूचना रायगढ़ भिजवा दूं?" मसऊदखां ने पूछा।

"नहीं, अभी नहीं।" सम्भाजी हां करने का साहस न कर सका।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

"येसूबाई को एक ही [illegible]—[illegible] ।

"लेकिन येसू, कहाँ जाते हैं [illegible]..."

"[illegible] को [illegible] । [illegible]

वह हमारी सुरक्षा का प्रबन्ध कर देंगे।"

"वह मेरा विश्वास ही नहीं करेंगे, येसू!"

"मगर एक बार प्रयत्न तो कर देखिए!"

"हम कब तक यह सब दोज़खपुर में रहेंगे?"

"कुछ दिनों में औरंगजेब का रोष शान्त हो जाएगा और हम औरंगाबाद लौट जाएंगे।"

येसूबाई ने भर्त्सना की, "कैसी बच्चों जैसी बातें करते हैं! बड़ी मुश्किल से तो दुश्मनों के पंजे से छूटे हैं, फिर वहीं जाएंगे!"

सम्भाजी ने पत्नी की ओर देखा। बच्चों जैसी बातें! और जब येसूबाई ने कहा, "हमें घर लौटना ही होगा।" तो उस का स्वर इतना दृढ़, इतना भावावाही था कि सम्भाजी को स्वीकार करना ही पड़ा।

मसऊदखां ने समाचार भिजवा दिए और कुछ ही दिनों में सम्भाजी को लिवाने के लिए शिवाजी के विश्वसनीय सेनाधिकारी बीजापुर आ पहुँचे। हीरोजी और सोयराबाई तब रायगढ़ में थे।

जो सेनाधिकारी लिवाने आए थे, उन्हीं के सैनिकों को पन्हाला में सम्भाजी की सुरक्षा के लिए तैनात कर दिया गया। उन सभी को [illegible] व्यक्तिगत रूप से जानता था। उस ने सम्भाजी से कहा, "ये सैनिक मर जाएंगे लेकिन किसी षड्यन्त्र में शामिल न होंगे।"

सम्भाजी ने थोड़ा विश्वास किया, थोड़ा अविश्वास। दूध का जला छाछ फूक कर पिए, ऐसी स्थिति थी उस की।

पन्हाला में तीन दिन बीते और रायगढ़ से [illegible] के साथ

सन्देश आया, 'मैं तुम से मिलने आ रहा हूं'''मुझ से कोई बात न छिपाना'''

सम्भाजी बेचैन हो उठा। लगभग एक साल तक मारा-मार फिरने के बाद वह वापस लौटा था—हार कर, हर तरफ से और हर तरह से हार कर। 'पिता की दृष्टि सहन कर पाऊंगा ?' सम्भाजी सोचता और तड़प जाता।

उस सुबह अनुचर ने सम्भाजी को अभिवादन करते हुए कहा, "छत्रपति आप की प्रतीक्षा में हैं।"

"उन से कहो, मैं अभी उपस्थित हुआ।"

अनुचर विदा हुआ। सम्भाजी ने येसूबाई को बांहों में भर लिया, फिर उसे झटके के साथ अलग कर के वह बाहर निकल गया। येसूबाई ने आंसू पोंछे। वह पलंग पर बैठ गई। जी न लगा तो उठ कर खिड़की के पास आई और आकाश का फैलाव देखती रही।

पास के कमरे में पिता-पुत्र थे—अकेले और दुखी। वे क्या बातें कर रहे होंगे ? किस तरह कर रहे होंगे ? बैठे होंगे ? खड़े होंगे ? टहल रहे होंगे ?

"उन्हें मुझ पर विश्वास नहीं है। या कहो, बहुत कम विश्वास है।" सम्भाजी व्यंग्य से सूखी मुस्कान मुस्कराया। येसूबाई चुप रही।

अनुचर फिर उपस्थित हुआ, "छत्रपति देवी को याद करते हैं।"

होंठ दाब कर येसूबाई उठी। सम्भाजी उस की पीठ की ओर देखता रहा। येसू ने दरवाजा पार किया।

सम्भाजी को एकान्त कचोटने लगा। येसू से पिताजी क्या पूछेंगे ? जैसे कोई न्यायाधीश अपराधियों को एक-एक कर बुला रहा हो ! उस ने चाहा, येसू लौट आए—तुरन्त।

और लगभग तुरन्त ही वह लौट आई। उतने कम समय में पांच-छह वाक्यों से ज्यादा बातचीत नहीं हो सकती थी। येसू ने दरवाजा बन्द

किया। पति की छाती में गिर कर वह फुसफुसाई, "वह बहुत दुखी हैं··· बहुत दुखी···हैं" सम्भाजी ने उस के सिर पर हाथ फेरा।

"उन्होंने क्या पूछा, येसू ?"

"कुछ नहीं।" येसूबाई उठी, "मैं भीतर गई। वह गम्भीरता से बैठे थे। मैं ने उन के पैर छूए। उन्होंने आशीर्वाद दिए और आसन पर बिठाया। वह चुप थे। मैं केवल एक बार उन की ओर देख सकी। उन की आखें छलक रही थीं। विदा करते समय उन्होंने कहा, 'बेटी, मुझे तुम से कुछ नहीं पूछना। मैं जानता हूं'···" आगे येसू जो कहने जा रही थी, उस से पति को चोट पहुंचेगी, ऐसी आशंका ने उस का वाक्य पूरा न होने दिया।

"रुकी क्यों ?"

"उन्होंने कहा, 'मैं जानता हूं, मेरे बेटे को घर लाने वाली तुम्हीं हो'।" उस ने पति की आंखों में झांका—कहीं आत्माभिमान आहत न हुआ हो।

सम्भाजी मुस्करा कर बोला, "उन्होंने ठीक कहा।"

येसू को शान्ति मिली।

सम्भाजी ने बताया, "मुझ से भी उन्होंने विशेष बातचीत न की। मैं भीतर गया। बहुत देर तक हम दोनों चुप बैठे रहे। वह मेरी ओर देख रहे थे और मैं नीचे। उन्होंने सब से पहले कहा कि मेरा लौट आना अच्छा रहा। कुछ रुक कर वह बोले कि अब मुझे कहीं नहीं जाना चाहिए। वह एक माह तक पन्हाला में रहेंगे—मेरे साथ। थोड़ी बहुत और जो बातचीत हुई, उस से मेरे प्रति उन का अविश्वास प्रकट हो गया। मैं इस के लिए उन्हें दोष भी नहीं देता। दे नहीं सकता। यह स्वाभाविक है।"

"आप ने उन्हें राजमाता के षड्यन्त्र के बारे में बता दिया न ?"

"न बता पाया एकाएक।" सम्भाजी ने गहरी सांस ली, "वह प्राय. एक माह हमारे साथ रहेंगे। कभी अवसर देख कर बताऊंगा।"

"मुकुन्द, अब हमारा विवाह हो जाना चाहिए।"

"स्वामिनी से कहो।"

"तुम तो बस, हर बात मुझी पर डाल देते हो—स्वामि
स्वामिनी से कहो ! मैं क्यों कहूं ?"

मुकुन्द हंसा और गुल चिढ़ी।

"अरे मेनकाजी, ऐसी क्या जल्दी है।"

"मेनका क्यों कहते हो ? यहां कलश नहीं है।"

"यही नाम अब जबान पर आ गया है।"

"आ गया है तो उतारो।"

"नहीं उतरता।"

शिवाजी को पन्हाला में पन्द्रह दिन बीत चुके थे। पुत्र के
माह बिताने का कार्यक्रम इस दृष्टि से भी लाभप्रद था कि इ
सोयराबाई के षड्यन्त्रों की सम्भावनाएं लगभग शून्य हो गई थीं

"शिवाजी महाराज का स्वास्थ्य अब ठीक नहीं रहता।"
उस दिन कहा। गुल खामोश रही।

"उन्होंने राजकुमार राजाराम का विवाह कहीं तय किया है"

गुल ने उलाहना दिया, "हांआं, दूसरों के विवाह की खबर रखा करो, अपनी परवाह मत करो।"

"स्वामिनी ने वचन दिया है कि हमारे विवाह का सारा खर्च स्वयं उठाएंगी।"

"सौ बार तो बता चुके !"

"भई, उन से कहना तो तुम्हीं को पड़ेगा।"

गुल रूठ कर बाहर चली गई। मुकुन्द हंसता रहा।

शहनाई कूक रही थी। महल रोशनी से जैसे चुंधिया रहा था। चारों ओर आम के पत्तों के तोरन लटक रहे थे। सेविकाएं गुल को सजा रही थीं। खुशी के इस अवसर पर भी गुल को वह दिन याद आ गया, जब उसे यवन सेविकाओं ने कवि कलश के लिए सजाया था। उस की

ओं में उदासी सी घिरी, लेकिन आग से कपूर उड़ता है, उसी तरह उड़ भी गई। तब वह बिना गुदगुदाए जरा हंसने भी लगी।

बिना मां-बाप की वधू। बिना मां-बाप का वर। जिन का कोई नहीं, वे एक-दूसरे के होने वाले थे। बल्कि हो तो चुके ही थे, अब सामाजिक नियमों के अनुसार भी होने वाले थे।

स्वयं छत्रपति शिवाजी ने कन्यादान किया।

सम्भाजी और मुकुन्द घोड़े से उतरे। वे दोनों शिवाजी को रायगढ़ की ओर विदा कर के लौटे थे। वे महल की सीढ़ियां चढ़ रहे थे। तब सम्भाजी बहुत गम्भीर और चुप थे। उन की आंखों के सामने शिवाजी का तेजस्वी, गोरा चेहरा तैर रहा था। बेधक आंखें, भरी हुई, ऊपर को उठी मूंछें, गालों को छिपाती और ठुड्डी के पास नुकीली, घनी दाढ़ी···रोबीली आवाज···

जाते-जाते उन्होंने सम्भाजी से कहा था, "पुत्र, तुम से मुझे बड़ी-बड़ी आशाएं हैं।" उन्होंने दोनों हाथों से सम्भा के कन्धे दबाए थे।

रायगढ़ में कुछ दिनों बाद राजकुमार राजाराम का विवाह था, जिस में शिवाजी की उपस्थिति अनिवार्य थी। विवाह निबटा कर वह फिर से पन्हाला आना चाहते थे। 'तब मैं तुम्हारे साथ भविष्य की योजनाएं बनाऊंगा। मुगलों के पांव हमें भारतवर्ष से उखाड़ देने हैं।'

सम्भाजी शिवाजी को इस तथ्य से अवगत करा चुका था कि राजमाता सोयराबाई मराठा सिंहासन राजाराम को दिलाना चाहती हैं और इस के लिए वह कुछ भी कर सकती हैं।

शिवाजी ने इस का बड़ा गोलमोल उत्तर दिया था, "मैं इस पर सोचूंगा।"

सम्भाजी घुटा-सा रह गया था। उत्तर से स्पष्ट था कि पिता का पूरा विश्वास वह अभी भी नहीं जीत पाया था।

येसूबाई राजाराम के विवाह में जाना चाहती थी लेकिन सम्भाजी

नहीं चाहता था। विवाह में एकत्र सगे-सम्बन्धी व्यंग्य से हंसेंगे कि लौट कर बुद्धू घर को आए! दरअसल शिवाजी भी नहीं चाहते थे कि सम्भाजी पन्हाला के किले से बाहर कदम रखे। यद्यपि किसी तरह की कड़ाई नहीं बरती जा रही थी, लेकिन सम्भाजी पन्हाला में एक तरह से कैद ही था।

"राजकुमार राजाराम का विवाह सकुशल सम्पन्न होने के समाचार आए हैं।" मुकुन्द ने संदेश-पत्र सम्भाजी की ओर बढ़ाया। सम्भाजी परतें खोल कर सरसरी निगाह से पढ़ गया।

ठीक चार दिन बाद रायगढ़ से दूसरा दूत आया। वह ऐसे समाचार लाया था कि सम्भाजी के बदन में आग लग गई। मुट्ठियां भींच कर वह उठ खड़ा हुआ, "नहीं, यह नहीं हो सकता।"

शिवाजी ने प्रस्ताव रखा था—आधा राज्य सम्भाजी को और आधा राजाराम को दिया जाए। येसूबाई को भी बहुत आश्चर्य और दुख था। "मैं ऐसा जवाब लिखवाऊंगा कि…कि…" आगे के शब्द उसे न सूझे तो पैर पटकता हुआ वह चहलकदमी करने लगा। येसूबाई ने संतुलित स्वर में कहा, "यह आप की भूल होगी।"

"भूल ? यह भूल है ?" सम्भाजी आग जैसी हंसी हंसा, "येसू, मुझे पूरा राज्य चाहिए। वह मेरा है। दस साल के बालक राजाराम को मैं आधा हिस्सा नहीं दे सकता।"

"राजमाता ने पिताजी को फिर भरमा दिया है लेकिन…"

"हां, यही हुआ है।" सम्भा ने आवाज दे कर सेविका को बुलाया, "मुकुन्दजी को भेजो। मसी और कागज के साथ।"

सम्भाजी की चहलकदमी रुक न रही थी। मुकुन्द ने प्रवेश किया। आसन पर बैठ कर उस ने मयूरपंख स्याही में डुबोया। येसूबाई पति के करीब आई, "आवेश में अपनी हानि न कर लें। कोई कटु वाक्य मत लिखवाइए, अन्यथा राजमाता और जहर उगलेंगी।"

सम्भाजी के कपार पर सिलवटें बनीं। दो पल सोच कर उस ने कहा, "पत्र तुम्हीं लिखवाओ। देखूं, कड़वी बात मधुर शब्दों में कैसे

लिखी जाती है।

"मुकुन्दजी, लिखिए।" येसू ने कहा।

मुकुन्द तैयार हुआ।

येसूबाई ने केवल दो वाक्य लिखवाए, "आदरणीय पिताजी, आप का प्रस्ताव मैं स्वीकार नहीं कर पा रहा हूं। कृपया सूचित करिए कि आप पन्हाला कब आ रहे हैं। आप का ज्येष्ठ पुत्र'''" मुकुन्द के हाथ से पत्र ले कर उस ने सम्भाजी की ओर बढ़ा दिया, "लीजिए, हस्ताक्षर करिए!"

मुकुन्द ने मधूरपंख प्रस्तुत किया।

लौटते दूत से जवाब आ गया, जो बहुत संक्षिप्त था। शिवाजी ने प्रस्ताव की अस्वीकृति के बारे में कुछ भी नहीं लिखा था। उन्होंने पन्हाला लौटने में अपनी असमर्थता प्रकट की थी क्योंकि सहसा उन की तबियत ज्यादा खराब हो गई थी।

"पत्र की संक्षिप्ति से लगता है, वह बहुत अप्रसन्न हैं।" सम्भाजी ने येसू की ओर देखा।

"अस्वस्थ होने पर भी न लिखा कि मुझे देखने आओ।" येसूबाई को यह बार-बार खटक रहा था, उस ने पूछा, "बिना बुलाए चलें? पुत्र और पुत्रवधू को बुलाने की क्या आवश्यकता?"

"हम इस तरह नहीं जाएंगे, येसू!" सम्भाजी ने उत्तर दिया, "अस्वस्थ व्यक्ति का स्वभाव शंकालु होता है। राजमाता ने भी बुराई करने में कुछ बचा न रखा होगा। पन्हाला में हम ज्यादा सुरक्षित हैं।"

तीन दिन बाद येसूबाई फूट-फूट कर रो रही थी। सम्भाजी दीवार का सहारा ले कर चुपचाप खड़ा था और पलकों को बहुत कम झपका रहा था।

हिचकियां भर रही गुल की पीठ थपथपा कर मुकुन्द सम्भाजी के कक्ष में आया और चुपचाप एक ओर खड़ा हो गया।

उस चुप्पी में येसू का रुदन सिहराने वाला था।

सम्भाजी दीवार का सहारा छोड़ कर धीमे कदमों आगे बढ़ा। उस

की कठोर दृष्टि मुकुन्द की ओर उठी। मुकुन्द करीब आया।

"मुकुन्दजी," सम्भाजी बुदबुदाया, "खून की होली आ गई। कइयों के सिर उतरेंगे।"

हीरोजी ने सन्देश भिजवाया था—छत्रपति शिवाजी महाराज प्राण-त्याग कर चुके हैं—शनिवार, ३ अप्रैल, १६८० के दिन, दोपहर।



हीरोजी और सोयराबाई चिंताग्रस्त मुद्रा में बैठे थे। "राजमाता," हीरोजी ने कहा, "सम्भाजी ने जिस शीघ्रता से सेना का संगठन किया है, वह अद्‍भुत ही कहा जाएगा।"

"आप प्रभावित हो गए ?" सोयराबाई कटुता से बोली।

"प्रभावित नहीं, चिन्तित हूं। पन्हाला के आसपास के अधिकांश किलेदार अपने साथ ले कर वह रायगढ़ की ओर चल पड़ा है। उस के पास २० हजार सैनिक हैं। अकेले रायगढ़ की सेना उस का सामना नहीं कर पाएगी।"

"तब? " यह एक शब्दीय प्रश्न सोयराबाई के होठों तक आ कर रुक गया। उस के नेत्रों के सामने अपने पुत्र राजाराम का चेहरा उभरा...दस वर्ष का बालक राजाराम...

छत्रपति शिवाजी उत्तराधिकार का अन्तिम निर्णय किए बिना ही स्वर्गवासी हो गए थे। अविलम्ब सोयराबाई ने रायगढ़ की गद्दी पर राजाराम को आसीन कर दिया था। हीरोजी को मंत्री-पद सौंप कर वह स्वयं राज-कार्य सम्भाल रही थी, लेकिन अब सम्भाजी ने विद्रोह की ऐसी आग भड़का दी थी कि वह हत-प्रभ ही रह गई थी।

हीरोजी ने शिवाजी की मृत्यु के चार दिन बाद ही पन्हाला की ओर एक विश्वसनीय दूत दौड़ा दिया था जो गुप्त रूप से मुकुन्द से मिला था। हीरोजी को पूरा विश्वास था कि मुकुन्द हमारी ओर है—यदि पूरी तरह नहीं, तो भी उस का झुकाव हमारी ओर अवश्य है। सम्भाजी के कैद के दिनों में उस ने मुकुन्द की थाह पाने का प्रयास कर के यही निर्णय प्राप्त किया था। पन्हाला से पलायन करने में मुकुन्द सम्भाजी के साथ रहा था, तो भी हीरोजी ने फिर से एक बार उस की नसें टटोलनी चाही थी।

दूत ने मुकुन्द को सन्देश दिया था कि सम्भाजी पर कड़ी निगाह रखी जाए, शिवाजी ने उसे और येसूबाई को घूमने-फिरने की जो आजादी दी थी, वह छीन ली जाए।

'"हम ने राजकुमार राजाराम को सिंहासन पर बिठा दिया है। हमारी इच्छा है कि आप हमारे साथ हो जाएं। जैसी कि आप से बात-चीत हुई थी, सेनापति का पद आप के लिए सुरक्षित है।"' हीरोजी ने लिखा था जिस का जवाब मुकुन्द ने उसी दूत के द्वारा भिजवा दिया था, '"मुझे सेनापति बनने की कोई थाह नहीं है। मैं उस के बिना भी मातृभूमि की सेवा कर सकता हूं। राजकुमार राजाराम को छत्रपति का स्थान कैसे दिया गया, इस पर मुझे आश्चर्य है। छत्रपति के पद पर जिस का वास्तविक अधिकार है, उस के स्वागत के लिए तैयार रहिए—सेना-पति और मंत्री दोनों के पद सम्भालते हुए"'

"हमारे पास अधिक से अधिक ५ हजार सैनिक होंगे।" हीरोजी ने सही स्थिति सामने रखी।

"यदि सम्भाजी मराठा किलेदारों को अपनी ओर मिला सकता है तो हम भी यह कर सकते हैं।"

हीरोजी को सोयराबाई के स्वर में शिकायत की बू आई। वह मुस्कराया, "आप का कहना ठीक है लेकिन अब तो अधिकांश किलेदार सम्भाजी की ओर हो चुके हैं। जो बचे हैं, उन्हें मिलाने की मैं पूरी

कोशिश कर रहा हूं, पर लगता है, इस बार सफलता की माला हमारी प्रतीक्षा में नहीं है।"

"कुछ तो करना होगा, हीरोजी !"

"राजमाता, मुझे केवल एक उपाय सूझता है !"

"क्या ?"

"इस समय सिंहासन सम्भाजी को दे ही दिया जाए।"

"जानते हैं, आप क्या कह रहे हैं ? सिंहासन मिलते ही वह आप का, मेरा और राजाराम के गले उतरवा देगा।"

"क्षमा करें देवि, हम सिंहासन न देंगे तो भी हमारे गले अवश्य उतरेंगे। सम्भाजी की सेना के सामने हम न टिक सकेंगे।"

"बिना लड़े सिंहासन देने से अच्छा है कि लड़ कर दिया जाए।"

"आप सत्य कहती हैं। लड़ कर और गले उतरवा कर सिंहासन दे दीजिए, ताकि भविष्य में मिलने की सम्भावना ही न रहे।" हीरोजी ने व्यंग्य किया तो सोयराबाई को चुभ गया। तिलमिला कर बोली, "बिना लड़े सत्ता सौंप देना कायरता गिनी जाएगी।"

"अवसर के अनुसर पहले झुक कर और बाद में तन कर चलने को यदि आप कायरता कहती हैं तो कह लीजिए। मैं इसे राजनीति कहता हूं।"

"आप के पास कोई ठोस योजना है।"

"अवश्य, यदि आप सुनना चाहें। वैसे योजना नितान्त नवीन नहीं है।"

"तो ?"

"है तो पुरानी लेकिन नवीन की तरह अमल में लानी होगी।" वह आगे झुका, "सम्भाजी की हत्या की जाए, जैसा कि हम ने पहले सोचा था। उस के बाद राजाराम ही अकेला राजकुमार होगा जो छत्रपति बनेगा।"

"योजना से मुझे विशेष उत्साह नहीं मिला।" सोयराबाई एक

निराश हंसी हंसी, लेकिन हीरोजी कहता गया, "अभी सम्भाजी को सिंहासन पर आने दीजिए। हमें उस से क्षमा की मांगनी होगी, ताकि वह हमारी हत्या न करवाए, अधिक-से-अधिक कहीं कैद कर ले।"

"यदि उस ने क्षमा न किया ?"

"मैं सोचता हूं, वह कर देगा। नया राजा तुरन्त ही इतने नए मंत्री नहीं जुटा पाता कि हर विभाग सही ढंग से सम्भाला जा सके। पुराने लोगों का पूर्ण बहिष्कार स्वयं नए राजा के लिए घातक होता है। और मान लीजिए, उस ने क्षमा न किया…" हीरोजी कठोरता से हंसा, "तो…एक दिन तो सब को मरना ही है।"

सोयराबाई सिहर उठी, "कोई और उपाय कीजिए !"

"अभी तो हम क्षमा मांग कर अपनी जान बचा लें, फिर किसी तरह षड्यन्त्र करें और सम्भा की रगों में कालिख जहर पहुंचा दें…" हीरोजी की आंखें चमकीं, "और कोई उपाय मुझे नहीं सूझता। आप को सूझता हो तो बताइए !"

सोयराबाई चुप रही।

कुछ दिनों बाद हीरोजी का सिर हल्के से रायगढ़ के किले की दीवार से ऊपर आया। उस ने दूर-दूर तक दृष्टि दौड़ाई। किले को घेरा जा रहा था। चारों ओर से सम्भाजी के सैनिकों की कतारें बढ़ रही थीं। घोड़ों द्वारा उड़ाई गई धूल आकाश की ओर उठ रही थी। दूर से वे घुड़सवार सैनिक खिलौनों जैसे मालूम पड़ते थे…डरावने खिलौने, जो क्रमशः बड़े हो रहे थे। जमीन के उतार-चढ़ाव के अनुसार उन की कतारों में भी उतार-चढ़ाव आ गया था। व्यूह की योजना के अनुसार कभी कोई कतार रुक जाती, कभी कोई आगे बढ़ने लगती। …बाद
बज रहे नगाड़े, ढोल आदि का उत्तेजक हल्ला हीरोजी
आया। वह मन-ही-मन हंसा, 'व्यर्थ ! इतना सब

दिलेरखां ने भौंहें उठाईं, "मैं आप की सूझ को दाद देता हूं, लेकिन सम्भाजी आप को देखते ही गिरफ्तार कर लेगा। अठनी से भागते समय वह आप को साथ नहीं ले गया। जाहिर है कि वह आप पर भरोसा नहीं करता।"

कवि कलश हंसा, "मुझे साथ न ले जाने का कारण कोई और होना चाहिए। वह येसूबाई के बहकावे में आ गया होगा। येसूबाई मुझे नापसन्द करती है। लेकिन अगर मैं उस के सामने पहुंच जाऊं तो उस का सिर मेरे कदमों में झुक जाएगा। आखिर मैं उस का गुरु हूं।"

"और मान लीजिए, वहां पहुंच कर आप ने हमारे साथ गद्दारी की? मुगल सेना के राज खोल दिए?"

"मैं इतना बेवकूफ नहीं हूं, जनाब! मैं अच्छी तरह जानता हूं कि आज नहीं तो कल, मराठों को मुगलों से हारना जरूर है। मैं गद्दारी करूंगा तो सोचिए, बकरे की मां आखिर कब तक खैर मनाएगी?"

"आप समझदार हैं। आप बड़े शौक से रायगढ़ में जासूसी करिए।"

दो ही दिन बाद कवि कलश अकेला घुड़सवारी करता हुआ रायगढ़ की ओर बढ़ रहा था।

सम्भाजी अठनी से बीजापुर और बीजापुर से पन्हाला पहुंच चुका है, इस के समाचार दिलेरखां को नियमित रूप से मिलते रहे थे। उस ने पन्हाला पर आक्रमण करने की योजना बनाई थी लेकिन तभी खबर आई थी कि शिवाजी स्वयं पन्हाला में उपस्थित हैं, साथ में ताकतवर सेना भी है। निदान उस की सेनाएं मराठा किले कोपवल पर टूट पड़ी थीं। यहां भी किस्मत ने दिलेरखां का साथ न दिया। उसे बुरी तरह हार कर पीछे हटना पड़ा। एक बीजापुर की हार, दूसरी कोपवल की हार। तीसरे, सम्भाजी का सफल पलायन—उस सम्भाजी का, जिसे औरंगजेब ने गिरफ्तार करने का हुक्म दिया था। दिलेरखां के नाम पर तीन गम्भीर अपराध औरंगजेब के सनकी दिमाग में दर्ज हो चुके थे। दिलेरखां कुढ़न से छटपटा रहा था।

उधर औरंगाबाद से शाहजादा मुअज्जम आए दिन उस के खिलाफ सन्देश भिजवाता रहता है, इस की सूचना भी दिलेरखां को मिल चुकी थी, जिस से उस की बेचैनी बेहद बढ़ गई थी। खोया जा रहा प्रभाव फिर से जमाने के लिए वह बेताब हो उठा था। कवि कलश को गुप्तचर बना कर भेजना उस की दृष्टि में इसीलिए बहुत महत्वपूर्ण था। उस ने आशा का नया दीपक जला लिया कि सम्भाजी की हार और गिरफ्तारी में अब देर नहीं है।

उधर रायगढ़ में कवि कलश ने सम्भाजी के सामने पहुंच कर खिल-खिलाते हुए कहा था, "दिलेरखां ने मुझे बड़ी आसानी से आ जाने दिया। बेवकूफ! सोचता है, मैं उस के लिए गुप्तचरी करूंगा!"

सम्भाजी ने उसे अपने हाथी पर बिठा लिया। "आप बड़े मौके से आए। घेरा कसा जा रहा है।" उस ने कहा, "थोड़ी देर में युद्ध शुरू हो जाता तो आप को मुझ तक पहुंचने में काफी परेशानी उठानी पड़ती। यात्रा में आप को कोई कष्ट तो नहीं हुआ?"

"विशेष नहीं, अकेलेपन से थोड़ी ऊब हुई, बस।" कलश बोला, "अरे! देखिए, किले पर तो सफेद झण्डा फहरा रहा है।"

"लगता है, हीरोजी युद्ध की पूरी तैयारी नहीं कर पाया।" सम्भाजी ने कहा और एक घुड़सवार को बुला कर झण्डे की दिशा में बढ़ने की आज्ञा दी।

जब घुड़सवार किले की दीवार के करीब पहुंचा तो झण्डे के पास से केवल सिर उठा कर झांक रहे रायगढ़ के एक सैनिक ने रस्से के जरिए सन्धि-पत्र लटका दिया। रस्से को ढील दी गई और सन्धि-पत्र नीचे आया। सैनिक ने गांठ खोल कर उसे निकाल लिया। वापस लौट कर उस ने इसे भाले की नोक पर अटका कर सम्भाजी की ओर बढ़ाया।

सम्भाजी ने परतें खोलीं। हीरोजी ने स्वयं अपने हस्ताक्षरों में लिखा था, 'आयुष्मान छत्रपति सम्भाजी की सेवा में दास हीरोजी फर्जन्द नमस्कार प्रेषित करता है। राजमाता सोयराबाई ने राजकुमार राजाराम को

सिंहासनारूढ किया था, परन्तु उन्हें अपनी भूल समझ में आ गई है। [illegible]
उन की ओर से और राजकुमार राजाराम की ओर से [illegible]
यदि आप हमें अभयदान का वचन दें तो किले के दरवाजे [illegible]
जाएं। हम आप को छत्रपति के रूप में स्वीकार करते हैं और [illegible]
दिलाते हैं कि आप की आज्ञाओं का पालन कर के हमें [illegible]

"आप भूल कर रहे हैं। जनता में छत्रपति शिवाजी का अत्यन्त सम्मानपूर्ण स्थान है और शिवाजी आप से जीवन-भर रुष्ट रहे। जहां तक मेरा कान्यकुब्ज मस्तिष्क दौड़ सकता है, राजमाता सोयराबाई ने जनता की सहानुभूति जीतने का पूरा प्रयास किया होगा।"

"आप कहना क्या चाहते हैं?"

"यही कि आप उन की हत्या न करवाएं।"

"हर मामले में जनता की परवाह नहीं की जा सकती, गुरुदेव!"

"मैं अपने कथन में थोड़ा सुधार करूंगा। आप उन की हत्या अभी न करवाएं।" कवि कलश ने 'अभी' शब्द पर जोर दिया।

"तो?"

"कुछ समय बीतने के बाद'''अवसर देख कर'''" कलश फुसफुसाया, "हर मामले में नहीं, लेकिन अधिकांश मामलों में जनता की परवाह अवश्य करनी पड़ती है। इसे शासक की लाचारी कह लीजिए।"

कुछ देर की चुप्पी के बाद सम्भाजी हंसा, "गुरुदेव, आप ने तो सिंहासन पर बैठने से पहले ही मंत्री-पद सम्भाल लिया।"

"आप अन्तिम निर्णय ले चुके?"

"हां। मैं अभी उन्हें नहीं मारूंगा, केवल कैद करूंगा।"

किले के दरवाजे खुले।

पहले रक्षक घुड़सवारों ने प्रवेश किया, फिर शहनाई वालों ने। उस के बाद सम्भाजी और कवि कलश का हाथी भीतर घुसा। देखते-देखते पूरे नगर में सैनिक टुकड़ियां छा गईं। राजमहल घेर लिया गया। दरवाजे बन्द नहीं थे। सैनिकों व परिचारक-परिचारिकाओं ने झुक-झुक कर आक्रमणकारियों का स्वागत किया।

सम्भाजी के लिए विशेष रूप से एक कक्ष की सजावट की गई थी। एक दासी साथ चलती हुई रास्ता दिखाने लगी। सम्भाजी ने आसन ग्रहण किया। चारों ओर धूप के मोटे, सुगन्धित तार उठ रहे थे। कवि कलश ने गहरी सांस ली, "सुन्दर! सुन्दर!"

महल के गलियारों में सशस्त्र सैनिकों के चलने की आवाजें हो रही थीं। सम्भाजी ने कक्ष की खिड़की से बाहर झांका। रायगढ़ के मुट्ठी-भर सैनिकों को एक झुण्ड में खड़ा कर के उन पर सशस्त्र घुड़सवारों का चौकन्ना पहरा बिठा दिया गया था। कितनी आसानी से मराठा राजधानी ने हथियार डाल दिए थे! सम्भाजी के चेहरे पर मुस्कान आई।

एक सैनिक ने प्रवेश किया, "हीरोजी फर्जन्द और राजमाता सोयराबाई कैद हो चुके हैं। वे आप से मिलना चाहते हैं।"

"कह दो, आज नहीं मिल सकते।" तुरन्त सम्भाजी ने उत्तर दिया, "उन्हें कारागार में डाला जाए, अलग-अलग कोठरियों में। राजाराम?···"

"वह भी कैदी हैं।"

"उसे उसकी मां की कोठरी में रखो।"

"जो आज्ञा।"



येसूबाई खिड़की के पास खड़ी हो कर आकाश की ओर ताक रही थी। काले बादलों में गर्जना हुई और शून्य की गहराइयों में घुड़क गई। आकाश में भाप के बादल, मन में विचारों के बादल···पति रायगढ़ में हैं··· मैं यहां हूं· वहां वह राज-कार्य सम्भालने में लगे होंगे। दिन कब बीत गया, पता ही न चलता होगा उन्हें। और यहां मेरा दिल नहीं कटता, रात नहीं कटती··· यह वर्षा ऋतु कब बीतेगी? पहाड़ी पग-डण्डियों का कीचड़ कब सूखेगा? कब मैं रायगढ़ रवाना हो सकूंगी? स्वामी वहां अकेले हैं। कवि कलश भी रायगढ़ में पहुंच चुका है। कवि ने उन पर अपना पुराना प्रभाव अवश्य जमा लिया होगा···

उन्होंने उसे महामंत्री का पद दिया है। साथ में 'छन्दोगामात्य' की उपाधि भी। 'छंदोगामात्य'...अर्थात् वेदज्ञ मन्त्री... वे उसे वेदज्ञ मानते हैं! कवि कलश वेदज्ञ है, मैं इन्कार नहीं कर सकती....परन्तु चरित्र? जिस के पास चरित्र नहीं, उस का ज्ञान खोखला है.... विद्या की देवी उसे मुकुट पहनाती अवश्य है, लेकिन बेमन से...'

बादलों में बिजली लपलपाई। गर्जना हुई। झड़ी लग गई। धरती से सोंधी खुशबू उठी और हवा में छलकने लगी। प्रकृति की हरी चूनर भीगी, उस का सौंदर्य अनावृत होने लगा।

'हर चीज जलाती क्यों है?...ये गीली फुहारें, भीगी हवा, झूमती लताएं...विदा ले बरसात, तू विदा ले...आकाश में सूरज को चमकने दे, चिकनी पगडण्डियों को सूख जाने दे, झरनों और नदियों का पानी कम होने दे...तुझे मुझ पर दया नहीं आती? मैं राजधानी जाना चाहती हूं, उन से मिलना चाहती हूं...मेरी खुशी हर कर तुझे क्या मिलेगा?...'

"देवि!" मुकुन्द के स्वर ने उस की विचार-तन्द्रा तोड़ी।

"कहिए मुकुन्दजी..."

"वर्षा बीतने पर हम रायगढ़ जाएंगे। तब..."

"तब?"

"वहां कवि कलश से मेनका को छिपाने की समस्या फिर सामने आएगी।"

येसूबाई सोच में पड़ी। बोली, "अब तो तुम दोनों का विवाह हो चुका। इस रहस्य को अब रहस्य न रखा जाए, तो?"

"याने कलश को पता चल जाने दिया जाए?"

"मैं सोचती हूं, इस में अब खतरा नहीं है। कलश महामन्त्री बन चुका है। उच्छृंखल जीवन बिताना अब उस के लिए असम्भव है। प्रायः वह राज-कार्य में उलझा रहेगा। मैं छत्रपति को भी सारी बात बता दूंगी। यदि कलश कोई अनर्थ करना चाहेगा तो छत्रपति उसे रोकेंगे।"

सिंहासन पर आने के बाद येसू अपने पति के लिए 'छत्रपति' शब्द

का प्रयोग करने लगी थी।

"मैं मेनका से बात कर के आप को सूचित करूंगा।" मुकुन्द विदा हुआ।

गुल को यह प्रस्ताव बिल्कुल पसन्द न आया। विवाह के पश्चात् उस का जीवन सुस्थिर और शान्त हो गया था। "हम दोनों रायगढ़ जाएं ही न, यहीं पन्हाला में रुके रहें।" उस ने कहा, "क्या ऐसा नहीं हो सकता ?"

"मैं स्वामिनी का अंगरक्षक हूं। जहां वह जाएंगी, मुझे भी जाना पड़ेगा। हम स्वामिनी से कैसे कह सकते हैं कि आप रायगढ़ न जाइए।"

"तुम अंगरक्षक का पद छोड़ दो। तब स्वामिनी के साथ जाना आवश्यक न रहेगा।"

"फिर बचकानी बातें ? अंगरक्षक विश्वसनीय व्यक्ति को बनाया जाता है। मैं त्याग-पत्र दूंगा तो रिक्त स्थान की पूर्ति कैसे होगी ? मेरा त्याग-पत्र स्वीकार ही न किया जाएगा।"

गुल नीचे देखने लगी।

"अब तुम मेरी पत्नी हो। स्वयं शिवाजी महाराज ने तुम्हारा हाथ मेरे हाथों में सौंपा है। तुम्हारी रक्षा करना मेरा उत्तरदायित्व है।" मुकुन्द का स्वर गर्वीला हो उठा था, "कलश को सब बता दिया जाए और स्पष्ट चेतावनी दे दी जाए कि वह तुम पर कुदृष्टि न रखे।"

गुल की भयभीत आंखें पति की ओर उठीं लेकिन मुकुन्द के चेहरे पर मुस्कान आ गई थी, "तुम्हें मुझ पर विश्वास नहीं है ?"

गुल कैसे 'हां' कह दे !

"आज से तुम्हें कोई मेनका नहीं कहेगा। तुम्हें असली नाम से ही पुकारा जाएगा।"

वर्षा बीतते ही येसूबाई रायगढ़ जा पहुंची। उस का भव्य स्वागत किया गया लेकिन येसू को इस में न चाहते हुए भी एक औपचारिकता

का आभास हुआ। यह स्वागत राज्य की ओर से हो रहा था; पति की ओर से, प्रियतम की ओर से नहीं।

दो ही दिनों में उसे पता चल गया कि कवि कलश सम्भाजी पर बुरी तरह हावी है। "आप ने किसी और को महामन्त्री क्यों न बनाया?" इस प्रश्न के उत्तर में सम्भाजी ने कहा, "और किसे बनाता, येसू? मुझे यहां किसी पर विश्वास नहीं है। एक-एक कर मैं पुराने लोगों को हटा रहा हूं, नए लोगों को भरती कर रहा हूं, लेकिन ये नए लोग अनुभवी नहीं हैं। लगभग सारा काम मुझी को देखना पड़ता है।"

"मैं आप की व्यस्तता को खूब समझती हूं।" येसूबाई की पीड़ा बोल गई, "कई बार हफ्तों तक हमारी बातचीत भी नहीं हो पाती।"

सम्भाजी ने उसे छाती से लगाया, "प्रिये, अब मुझे मराठा साम्राज्य सम्भालना है, मुगलों से लड़ना है। मैं किसी के साथ अन्याय नहीं करना चाहता, लेकिन जो बहुत अपने हैं, उन के साथ शायद हो ही जाएगा।"

येसूबाई की आंखें छलकने लगीं।

हीरोजी की कोठरी का दरवाजा खुला और कुछ सैनिक भीतर आए। मशाल की रोशनी इतनी कम थी कि उन के चेहरों की रेखाएं फीकी पड़ गई थीं। हीरोजी ने उन की ओर नफरत से देखा, उपेक्षा से नहीं। उस की भौंहें सिकुड़ीं—सम्भाजी ने प्रवेश किया था। वह उठ खड़ा हुआ। "मैं छत्रपति का स्वागत करता हूं!" उस ने कहा।

सम्भाजी जरा भी न मुस्कराया। उस का चेहरा कठोर था, आंखें बेधक। "आप ने मुझे छत्रपति कहा," वह बोला, "मानते भी हैं?"

"हां—यदि आप विश्वास करें।"

"न करूं, तो?"

"मेरी 'हां' आप को 'न' ही लगेगी।"

गहरा मौन छाया। दीवारों पर कांपती पीली रोशनी सहम गई। "मुझे एक उप-सेनापति चाहिए।" सम्भाजी उसे घूर रहा था। हीरोजी

खामोश रहा।

"यदि मैं आप को मुक्त करूं···?"

"यह आप गम्भीरता से कह रहे हैं ?"

"आप को क्या लगता है ?"

"मैं नहीं भांप सकता।"

"बोलिए, यदि आप को मुक्त कर दिया जाए···?"

"मैं उप-सेनापति नहीं, सेनापति बनना चाहूंगा।"

"सेनापति मैं स्वयं हूं।"

हीरोजी ने सम्भाजी की कौंधती आंखों में उतरने की चेष्टा की। "मुझे स्वीकार है।" हीरोजी के होंठ मुस्कराहट से खिंचे।

आगे बढ़ कर सम्भाजी ने उस के दोनों कन्धों पर अपने हाथ रख दिए। उस की मजबूत उंगलियां उन कन्धों पर कसीं। "जय भवानी !" सम्भाजी फुसफुसाया।

"जय भवानी !" हीरोजी ने भी कहा। सम्भाजी ने उसे जोर से भींच लिया।

"छंदोगामात्य मिलना चाहते हैं।" सेविका येसूबाई के सामने आ कर झुकी।

"इतनी सुबह ?" येसूबाई को थोड़ा अचरज हुआ। पास ही गुल बैठी थी। कवि कलश का नाम सुनते ही वह उठ कर जाने लगी। "नहीं, तुम यहीं बैठो !" येसूबाई ने आज्ञा दी। गुल मन-ही-मन अपने इष्टदेव को याद कर के बैठ गई। येसूबाई ने सेविका से कहा, "उन्हें आने दो।"

कवि कलश ने प्रवेश किया। उस की आंखें नीची थीं, होठों पर अस्पष्ट गुनगुनाहट, कदम लापरवाह। "मैं राजमाता को नमन करता हूं।"

"आप हमारे गुरु हैं, ऐसा न कहा करें।" येसूबाई उठ कर खड़ी

ई । गुल भी उठी । उस की धड़कन बढ़ चली थी ।
प्रशंसा से गद्गद् कवि कलश ने अपना हंसता चेहरा ऊपर उठाया ।
उसी क्षण वह बुरी तरह चौंक गया ।
"क्या हुआ, गुरुदेव ?"
"अं···कुछ नहीं, कुछ नहीं···मैं···मैं जरा···"
"आप अवश्य किसी महत्वपूर्ण कार्य से आए होंगे ।"
कलश ने अपनी पगड़ी सम्भाली, जैसे सचमुच वह गिर रही हो ।
फिर दाहिनी जेब में हाथ डाला । उस की हथेली में सोने की दो मुद्राएं
चमक उठीं । उन्हें येसूबाई की ओर बढ़ा कर वह बोला, "देखिए, कैसी
हैं । एक छत्रपति की मुद्रा है, एक छंदोगामात्य की ।"
"याने आप की ?"
"हां ।"
"महामन्त्री के नाम पर भी मुद्रा चले, यह अनोखी बात कही जाएगी ।
मुझे प्रसन्नता हुई ।"
"अनोखे लोग अनोखे काम कर जाते हैं ।" कहते हुए कवि कलश ने
कनखी से गुल की ओर देखा । 'है तो वही' मन-ही-मन उस ने कह
'लेकिन यहां कैसे ?'
"गुरुदेव ?"
"जी ? आप कुछ कह रही थीं ?"
"नहीं, कहने जा रही थी । शायद आप का ध्यान कहीं और था
"हां," कलश मुस्कराया, "महामंत्री का पद ही ऐसा है—चौ
घण्टे सोचते रहो । राजस्थान में इन दिनों ऐसी राजनीतिक उथल
मची हुई है कि···देखिए न, अभी आप से बात कर रहा था, अभी
उचट गया । आप क्या कह रही थीं ?"
"इन मुद्राओं के श्लोक आप ने रचे होंगे ?"
"हां ।"
"अपनी वाणी में सुनाइए !"

"अवश्य ! अवश्य ! क्यों नही ! लीजिए, सुनिए !" कलश ने उस के हाथ मे मुद्राए वापस ले ली. "यह छत्रपति की मुद्रा है। इस पर लिखा है—

श्री शभो शिव जातस्य मुद्रा द्यौरिव राजते।
यदक सेविनो लेखा वर्तते कस्य नोपरि ॥

अर्थात्, शिवाजी के सुपुत्र सम्भाजी की मुद्रा आकाश की तरह प्रकाशित है। जो उस के प्रिय पात्र है, उन का रास्ता कोई नही रोक सकता।"

इस के बाद कवि कलश ने अपनी मुद्रा को अगूठे और तर्जनी द्वारा उठाया। श्लोक पढने से पहले उस ने फिर से गुल पर एक वार दृष्टि फेंक ली, "और देवि, मेरी मुद्रा पर लिखा है—

विधिरर्थिमनीषाणामर्थधिर्नयवर्त्मना,
शेवधि सर्व सिद्धीना मुद्रा कलशहस्तगा।

अर्थात् यह मुद्रा, जो कलश के हाथ मे अकित हुई है, विपन्नो की इच्छाए पूर्ण करती है, मनीषियो के लिए शुभ अवसर जुटाती है तथा इसी के द्वारा सभी योजनाए सफल होती है।"

येसूबाई मुस्कराई, "बुरा न मानें तो एक बात कहू ?"

"क्या, महादेवी ?"

"मुझे लगता है, इन श्लोको मे आडम्बर है।"

"आडम्बर ?" कलश की आखें फैली। उस ने गुल के पूरे चेहरे को अखिया लिया, "सत्य मे कभी आडम्बर नही होता।"

"मै सहमत हू, लेकिन असत्य मे तो होता है न ?

"आप का आशय है कि ये श्लोक असत्य है ?"

"आप ने ठीक समझा।"

"महादेवि, सुन कर मुझे अत्यन्त खेद हुआ। आप जैसी बुद्धिशालिनी ने भी श्लोकों के गलत अर्थ लगाए, सचमुच यह आश्चर्य की बात है। मुझे विश्वास है कि कोई साधारण पनिहारिन भी ऐसे अर्थ नही निकालेगी।

एक परिचारिका तो आप के निकट ही उपस्थित है।" उस ने गुल की ओर देखा। साथ-साथ वह एक डग आगे भी आया, "तुम बताओ, क्या महादेवी को भ्रम नहीं हुआ है ?"

गुल अचानक हुए इस आक्रमण से सकपका-सी गई। कवि की आंखों का आश्चर्य छिपने वाला नहीं था। गुल को समझते देर न लगी कि कवि उस की आवाज सुनना चाहता है, ताकि निश्चय हो जाए कि बिल्कुल गुल जैसी दिखाई पड़ती यह लड़की गुल ही है।

"बोलो बोलो," येसूबाई ने उस की झिझक दूर की।

उस ने सिर झुका कर शालीनता से कहा, "जहां तक मुझे समझ में आता है, महादेवी को भ्रम नहीं हुआ है।"

वही आवाज''ठीक वही आवाज''कलश का अंग-अंग झनझना गया। वह हंसा, "परिचारिका आप की है, आप के विरुद्ध नहीं बोलेगी।"

"नहीं, ऐसा कोई बन्धन मैं नहीं लगाती। विचारों की स्वतंत्रता सब का अधिकार है।"

"देवि, शायद यह परिचारिका नई है। मैं ने इसे पहले कभी नहीं देखा।" कलश अब मूल बात पर आया।

येसूबाई ने उत्तर दिया, "एकदम नई तो नहीं; हां, औरों से नई है। लगता है, आप को मेरी हर परिचारिका का चेहरा याद है।"

"मैं जिसे एक बार देख लेता हूं, उसे कभी नहीं भूलता। आप की हर परिचारिका एक-न-एक बार मेरे सामने अवश्य आई होगी। अपनी तीव्र स्मृति को मैं दोष नहीं मान सकता।"

"मैं भी नहीं मान सकती।" येसूबाई ने उत्तर दिया और गुल की ओर देखा, "बगीचे से जामुन आए हैं। महामन्त्री के लिए ले आ।"

गुल विदा हुई।

"धृष्टता क्षमा करें, मैं एक बात पूछूंगा।" कलश आगे झुका, "क्या आप इस परिचारिका का इतिहास जानती हैं ?"

"नहीं। क्यों ?"

"मुझे इस के चरित्र पर सन्देह है।"

येसूबाई के चेहरे पर आश्चर्य की रेखाएं तैरीं।

"जहां तक मुझे याद है, यह औरंगाबाद की एक वेश्या है।"

येसूबाई क्रोध पी कर बोली, "मुझे मालूम है।"

कवि चौंक गया, "मालूम है ? फिर···फिर भी आप ने इसे परिचारिका···"

"वह जबर्दस्ती पतन के गड्ढे में फेंकी गई थी। इस में अपराध उस का नहीं, फेंकने वालों का है।"

"ठीक है, लेकिन···लेकिन···इस का दूसरी परिचारिकाओं पर क्या प्रभाव···"

"इस की चिन्ता आप न करें। आवश्यकता होने पर मैं कर लूंगी।"

"मैं समझ नहीं पाता, गुल के लिए आप को इतना मोह क्यों है ?"

"आप उस का नाम जानते हैं ?"

कलश ने होंठ चबाए, "हां, एक बार शिविर में नृत्य के लिए यह बुलाई गई थी। आप का इस से परिचय कैसे हुआ ?"

"अगर मैं उसे पदच्युत कर दूं तो आप को प्रसन्नता होगी ?" येसूबाई ने प्रश्न का उत्तर प्रश्न से दिया।

"प्रसन्नता ?···हां, वह भावना प्रसन्नता की श्रेणी में ही आएगी। मैं सहन नहीं कर सकता कि कोई वेश्या आप की···"

"महामंत्री, अब वह मेरी सेविका है, वेश्या नहीं।"

"रह तो चुकी है।"

"आवश्यकता नहीं कि हर व्यक्ति का भूतकाल सुन्दर हो।"

"भूत और वर्तमान का गहरा सम्बन्ध है।"

"उतना गहरा नहीं, जितना आप समझते हैं। मानव परिवर्तनशील है। किसी युग में आप भी राजनीति से बहुत दूर, एक साधारण शिक्षक थे।"

क्षमा करें, मैं फिर से पूछ रहा हूं। आप का इस से परिचय कैसे
?"

"इस प्रश्न के उत्तर में मैं यह बताना पसन्द करूंगी कि गुल मेरे
...क मुकुन्दराव की पत्नी है।"

कमला की आंखें फैल गईं, "मुकुन्दराव की पत्नी?"

"हां, इन का कन्यादान मेरे स्वर्गीय श्वसुर के हाथों हुआ था।"

"छत्रपति शिवाजी के हाथों?"

"हां।"

कई क्षणों तक कमला का गला अवरुद्ध से रुंधा रहा।

"मैं चाहती हूं, आप इसे आदर की दृष्टि से देखें। यह मेरी प्रिय-
पात्री है।"

"केवल आदर किया जाता है, कल्याणा नहीं जाता।"

"राजनीति में कल्याणा भी जाना है।" येसूबाई ने कठोरता से कहा, "किस के तम्बू में आग लगी, कौन
किस ने मां को छुरा मारा गया ... कौन गायब हुआ मुझे सब मालूम है। महामंत्री, गुल के
सम्बन्ध में आप किसी भी तरह की कमजोरी का प्रदर्शन न करें। अब
आप 'छंदोगामात्य' हैं, मराठा साम्राज्य के प्रधान मंत्री!"

... का तनाव से कह रहा था। 'मैं जाना चाहूंगा।' कह...
तब शायद वह उठ गया होता, लेकिन उसी समय चांदी की तश्तरी में
रसीले जामुनों के साथ गुल ने प्रवेश किया।

जामुन के स्वाद से किरकिरी और रंगीन हो गई जीभ को तालू...
फेरता हुआ रक्षक बाहर आया और मुकुन्द के कक्ष की ओर बढ़ा। ...
वह ठिठका और वापस लौट पड़ा। वह समझ न पाया था कि मुकु...
साक्षात्कार होने पर वह क्या कहेगा और क्या करेगा।

उसी दिन दोपहर को मुकुन्द अपनी स्वामिनी के सामने उ...
हुआ और बोला "छत्रपति ने हीरोजी फर्जन्द को कारावास से मु...
दिया है।"

"ओह ! मैं ने कितना मना किया था, फिर भी न माने।" येसूबाई ने दुखी हो कर कहा।

दो दिन पहले ही उस ने सम्भाजी के इस प्रस्ताव का गहरा विरोध किया था।

"महामंत्री छंदोगामात्य और मैं—दो व्यक्ति सभी पद नहीं सम्भाल सकते, येसू !"

"किसी और को उप-सेनापति बनाइए।"

"किस को ? कौन है इस योग्य ?"

"इस की खोज आप करिए। मैं केवल इतना कह सकती हूं कि हीरोजी विश्वसनीय व्यक्ति नहीं है।"

"हीरोजी अवसरवादी है। पहले उस ने हमारे विरुद्ध षड्यन्त्र किया था, क्योंकि हमारा पक्ष कमजोर था। हम कैद में थे, पिता हमारे विरुद्ध थे। राजमाता सोयराबाई ने हीरोजी को भरमा लिया। अब वह अपने किए पर पछता रहा है। वह कई बार क्षमायाचना के पत्र भी भेज चुका है।"

"आप ने कहा न, वह अवसरवादी है ? ऐसे व्यक्ति विश्वासघाती होते हैं। अच्छे अवसर कहीं और दिखाई पड़ेंगे, तो हमारा भी साथ छोड़ते उसे देर नहीं लगने की।"

"मैं सब समझता हूं येसू, लेकिन लाचार हूं। मैं हीरोजी को स्थायी रूप से उप-सेनापति नहीं बनाऊंगा। कुछ दिनों तक उसे काम तो सम्भालने दो, तब तक मैं दूसरे विभाग व्यवस्थित कर लूंगा। फिर मैं उसे अविलम्ब पदच्युत कर सेना के सारे अधिकार स्वयं ले लूंगा।"

"स्वामी, यह तो विश्वासघात हुआ।"

"तुम बहुत भोली हो ! राजनीति के खेल इसी तरह खेले जाते हैं।"

"उप-सेनापति मुकुन्दजी को बना दीजिए।'

मुकुन्द बराबर मेरी दृष्टि में है, लेकिन अभी वह इस योग्य नहीं हुआ। कुछ दिनों तक हीरोजी को ही काम सौंपना पड़ेगा। पिताजी की

ा के दिनों में सेना की व्यवस्था बुरी तरह लड़खड़ा गई है।
म्मू, शंकित क्यों होती हो? सेना के प्रमुख अधिकार तो मेरे ही
सुरक्षित हैं।"

येसूबाई मनाती रही थी, सम्भाजी तर्क करता रहा था।

१६

सेनापति दिलेरखां ने चुभती आंखों से शाहजादा मुअज्जम की ओर देखा और हल्के, चिंतित, उदास स्वर में कहा, "बादशाह सलामत हम दोनों को सजा देंगे।"

"शायद।" मुअज्जम का स्वर संतुलित था।

दिलेरखां मुस्कराया, "आप तो उन के बेटे हैं। आप को कड़ी सजा नहीं दी जाएगी।"

"सल्तनत के मामलों में कोई बाप, बेटा या सेनापति नहीं होता।"

"फिर भी देखिएगा, आप को मुझ से कम सजा मिलेगी।"

"शायद आप अपने को मुझ से ज्यादा कसूरवार समझते हों।"

दिलेरखां चुप रहा।

बादशाह औरंगजेब अजमेर से बुरहानपुर की ओर रवाना हो ग
था। वहां से वह औरंगाबाद आने वाला था। शाहजादा मुअज्जम
दिलेरखां को दक्षिण-विजय में जो असफलता मिली थी, उस से औरं
की झुंझलाहट की सीमा नहीं थी। उस ने दोनों को पदच्युत कर
था और मिलने के लिए बुरहानपुर बुलाया था। उसे उन दोनों
गद्दारी का शक था क्योंकि दोनों ने ही एक-दूसरे के खिलाफ उस
भरे थे।

'अब मैं खुद आ कर दक्षिण-विजय का काम सम्भालूंगा।' औरंगजेब ने अपने सन्देश में साफ लिखा था कि उस ने दिलेरखां और शाहजादा मुअज्जम पर भरोसा कर के बहुत बड़ी गलती की है।

"हमें बादशाह सलामत के आने से पहले ही बुरहानपुर पहुंच जाना चाहिए ताकि हम वहां उन का स्वागत कर सकें।" शाहजादा मुअज्जम ने कहा। दिलेरखां की आंखों में चमक न आ सकी। वह बोला, "क्या आप समझते हैं, इस से उन का गुस्सा कम हो जाएगा?"

"उन्हें हम पर गुस्सा नहीं, शक है।"

"हां। और शक गुस्से से ज्यादा खतरनाक होता है।"

"जनाब बहुत डर गए हैं क्या?

"कौन, मैं?" दिलेरखां हंस पड़ा, "डरना किस बात का? अगर किसी को सब से बड़ी सजा कोई दी जा सकती है तो मौत की, और मौत को मैं मुट्ठी में ले कर घूमता हूं।"

"आप गलत तो नहीं फरमाते हैं लेकिन जो मौत आप मुट्ठी में ले कर घूमते हैं, ठीक उसी तरह की मौत आप को मिले, क्या यह जरूरी है?"

दिलेरखां की आंखें सिकुड़ीं, "मैं शाहजादे का मतलब नहीं समझा।"

"आप की मुट्ठी की मौत झटके वाली मौत है। याने गर्दन पर एक झटका और काम तमाम। पता ही न चले, कब दुनिया गायब हो गई। बादशाह के पास मौत की मौत जैसी मौत भी होती है।" मुअज्जम दिलेरखां के चेहरे की सहमी रेखाएं देख रहा था, "हो सकता है, आप को गरम तेल में डाल कर तला जाए या जीते-जी आप की खाल उतरवाई जाए या···" उस ने वाक्य अधूरा छोड़ दिया और शराब का घूंट निगला।

दिलेरखां के होंठ भिंच गए। मौत की मौत जैसी मौत···"शाहजादे, आप को भी तो ऐसी मौत दी जा सकती है!" वह मुस्करा उठा, जैसे हारते-हारते सहसा जीतने लगा हो।

"क्यों नहीं। मुझे भी दी जा सकती है और आप को भी।"

दिलेरखां ने गहरी सांस ली, "आप यह बात इतनी बेफिक्री से इस

लिए कह सकते हैं कि कैसी मौत आप को नहीं दी जाएगी।"

"अब्बाजान के हुक्म पर अब्बाजान का भी काबू नहीं है। वह किस समय किस को कैसी सजा सुना दें, कोई नहीं कह सकता।"

"फिर आप इतने बेफिक्र कैसे हैं?"

"मुझे लगता है, आप डर गए हैं।"

"मेरे डर और आप की बेफिक्री में क्या ताल्लुक?"

"मेरे बेफिक्र होने की बात आप ने एक से ज्यादा बार कही।" शाहजादा क्रूरता से मजा ले रहा था। दिलेरखां जैसा कठोर इन्सान भी इतना डर सकता है या इतना डराया जा सकता है, मुअज्जम के लिए एक नया और मजेदार अनुभव था। दरअसल खुद उस के मन में मौत का जो डर घुट रहा था, उसे दूर करने के लिए वह दूसरे को मौत का डर दिखा रहा था। वह शराब के प्याले पर प्याले चढ़ा रहा था। दिलेरखां ने भी आज कम नहीं पी थी।

औरंगजेब का शक्की और सनकी मिजाज डर के वातावरण को और पैना कर रहा था। यों यह जरूरी नहीं था कि दिलेरखां और मुअज्जम को मौत की ही सजा दी जाए। सजा केवल डांट-फटकार के रूप में भी हो सकती थी। 'कैसी सजा दी जाएगी?' यह प्रश्न जितना रहस्यमय था, उतना ही डरावना भी था।

कोपबल में मराठों से हारने के बाद दिलेरखां निरपराधों पर अत्याचार करता और लूटपाट मचाता हुआ औरंगाबाद के मुगल शिविर में आ पहुंचा था। वह कुछ दिन आराम करना चाहता था ताकि सम्भाजी के दमन का कार्य नए सिरे से शुरू कर सके लेकिन इस के पहले ही बादशाह ने उसे और शाहजादा मुअज्जम को पदच्युत कर के बुरहानपुर आने का हुक्म दिया था।

रात काफी जा चुकी थी। "मुझे नींद आ रही है।" शाहजादे ने लापरवाही से शराब का प्याला एक ओर फेंका जो झनझना कर टूट गया। तकिए को बांहों में भींच कर उस ने आंख मूंद लीं।

"मैं चलता हूं।" दिलेरखां उठा और तम्बू से बाहर निकलने लगा। पीछे से आखें खोल कर शाहजादे ने उस की ओर जरा-सा ताका। फिर वह मुस्करा पड़ा और उस के बाद गमगीन हो गया। 'बुरहानपुर में किस्मत का कौन-सा नजारा देखने को मिलेगा?' उस ने न सोचने की कोशिश करते हुए भी सोचा।

दिलेरखां बाहर आया तो आकाश की छाती में असंख्य छोटे-छोटे, चमकदार छेद हो गए थे। अपने तम्बू में घुस कर वह पलंग पर चित हो गया। उस की आखें जल रही थी, मन फटा जा रहा था।

'बीस-बीस साल तक मैं ने दक्षिण की खाक छानी, खूंख्वार मराठों से लड़ा—बादशाह औरंगजेब के लिए। जान का खतरा मैं ने मोल लिया, नाम बादशाह ने कमाया। और आज मुझे इन सेवाओं का यह बदला मिला है! मेरा पद छीन लिया गया और बुरहानपुर बुलवाया गया—जैसे किसी अपराधी को अदालत में जाना हो!' सोचते हुए उस ने कपार पर हाथ फेरा। कपार जल रहा था।

उसे शाहजादा मुअज्जम की बेफिक्री याद आई जो उसे रहस्यमय लगी, 'बादशाह ने शाहजादे को भी बुरहानपुर बुलाया है लेकिन कहीं यह कोरा नाटक ही न हो। अकेले मुझी को बुलवाया जाता तो मैं बुरा मान कर बगावत कर देता या मराठों से मिल जाने की कोशिश करता। इसीलिए शाहजादे को भी बुलवाया गया ताकि मुझे शक न हो। लेकिन लगता है, वहां पहुंचते ही मुझे अवश्य मार डाला जाएगा—शायद कुत्ते की मौत!···क्या करूं? बुरहानपुर न जाऊं? भाग जाऊं? भाग कर कहां जाऊं? कौन आसरा देगा मुझे? गोलकुण्डा, बीजापुर, रायगढ़—सभी मेरे जानी दुश्मन हैं। फिर? मैं मरने से नहीं डरता लेकिन तड़प-तड़प कर मरना···ओह!···' वह सिहर गया।

और उसे याद आया, अब तक वह कितने लोगों को मार चुका है—तड़पा-तड़पा कर। सैंकड़ों को उस ने जिन्दा जलवाया, सैंकड़ों की खाल उतरवाई थी, सैंकड़ों की बोटियां कटवाई थीं और न जाने कितनों को

उबलते तेल में तल दिया था'''क्या बुरहानपुर में ऐसी ही मौत—मौत की मौत जैसी मौत—उस के इन्तजार में है ? उस ने जोर से पलकें भींचीं। कोये दुखने लगे। तड़प कर उस ने करवट बदली। पलंग मानो धू-धू जल रहा था।

और एकाएक ही उस ने तय कर लिया कि वह ऐसी मौत मरेगा। आज के जितना कायर वह कभी नहीं रहा था, लेकिन इस के लिए उसे कतई शर्म महसूस न हुई।

सुबह जब बुरहानपुर जाने की तैयारियां शुरू हुईं तो एक उत्तेजित सैनिक शाहजादा मुअज्जम के तम्बू में घुसा और लगभग चीख पड़ा, "सेनापति दिलेरखां ने जहर खा कर खुदकुशी कर ली।"

१८

मुकुन्द हीरोजी पर चौबीसों घण्टे स्वयं दृष्टि नहीं रख सकता था अतः उस ने उस के पीछे अपने व्यक्तिगत जासूस लगा दिए थे। उन्होंने समाचार दिए कि हीरोजी प्रायः सोयराबाई के कारागार में जाता है और धीमे स्वर में बातें करता है। हीरोजी ने कारागार के रक्षकों को धन दे कर अपनी ओर मिला रखा है, इस की सूचना भी मुकुन्द को पहली बार मिली।

सम्भाजी भोजन की तैयारियां कर रहा था। उस ने अभी-अभी आए मुकुन्द की ओर मुस्कान फेंकी और पहला निवाला मुंह की ओर बढ़ाया। मुकुन्द ने उस का हाथ थाम लिया, "रुकिए महाराज !"

सम्भाजी ने अचरज से उस की ओर देखा। येसुबाई पास ही बैठी पंखा झल रही थी। उस के हाथ रुके। मुकुन्द ने गम्भीरता से कहा, "महाराज, सम्भव है, मेरा सन्देह व्यर्थ हो; मुझे जो सूचना मिली है.

उस में लेश-मात्र भी सत्य न हो, पर आप इस भोजन की जांच करा लीजिए।"

सम्भाजी ने निवाला थाली में रख दिया।

येसूबाई की आंखों में भय तैरा, "मुकुन्दजी···" वह समझ न पाई, आगे क्या कहे।

उसी समय एक परिचारिका पानी के पात्रों के साथ भीतर आई। "जांच ही करनी है न ? क्यों न एक कौर इसी को खिलाया जाए।" सम्भाजी ने कहा और परिचारिका को इशारे से पास बुलाया। "खाओ !" उस ने उस की ओर निवाला बढा दिया।

"ठहरिए महाराज, निरपराध का जीवन काफी कीमती होता है।" मुकुन्द फिर से उस का हाथ थामता हुआ परिचारिका की ओर घूमा, "यह भोजन तुम ने पकाया है ?" उस ने सिर हिला कर 'न' कही।

"जिस ने पकाया है, उसे यहां भेजो।"

कुछ देर बाद दूसरी परिचारिका ने सहमते हुए प्रवेश किया। ज्यों ही निवाला उस की ओर बढाया गया, उस का चेहरा फक पड़ गया और टांगें कांपने लगी।

सम्भाजी झटके के साथ उठ खड़ा हुआ। "मैं कहता हूं, खाओ इसे !" वह गरज उठा। येसूबाई ने गहरी सांस ले कर अपनी उत्तेजना कम करनी चाही। परिचारिका पीछे हटी। उस की आंखें भय से फट रही थीं।

"महाराज, सम्भवतः मेरा सन्देह व्यर्थ नहीं है।" मुकुन्द उस परिचारिका की ओर मुड़ा। उस ने उस से बिल्कुल सीधे-सीधे पूछा, "इस में जहर है ?"

परिचारिका ने सिर हिला कर 'हां' कही।

"इसे तुम ने पकाया था ?"

इस के उत्तर में भी उस ने हां में सिर हिलाया।

"तुम ने बताया क्यों नहीं ?"

वह फफक पड़ी।

"जानती हो, तुम कितना बड़ा अपराध कर रही थीं ?"

वह फफकती रही।

"तुम्हें जहर ला कर किस ने दिया ?"

उस ने दयनीय दृष्टि से मुकुन्द की ओर देखा।

"बोलो, जवाब दो !"

वह चुप रही। मुकुन्द ने कटार निकाल कर उस की गर्दन से छुआई, बोलो वरना···"

और परिचारिका ने मुंह खोल दिया। यह काम उस से हीरोजी और सोयराबाई करवाना चाहते थे—मालामाल कर देने का लालच दे कर।

पूरी बात सुनने के बाद सम्भाजी गम्भीरता से उठ कर उस के पास आया, "तुम्हारे जैसी कमजोर औरत जीवित नहीं रहनी चाहिए।" अगले ही क्षण उस की तलवार परिचारिका का सिर काट चुकी थी।

येसूबाई चीख कर बेहोश हो गई। खून के फव्वारे ने मुकुन्द और सम्भाजी को रंग दिया था। मुकुन्द ने गिरती येसूबाई को थाम कर पलंग पर लिटाया।

"मुकुन्द, तुम इसे होश में लाओ। मैं जा रहा हूं।" कह कर खून से सनी, नंगी तलवार हाथ में लिए सम्भाजी बाहर निकल गया। पहरेदार उस की लाल तलवार देख कर चौंक गए। सम्भाजी ने तलवार म्यान में डाली और उन्हें साथ चलने का इशारा किया।

सोयराबाई ने भोजन के दो-चार कौर ही भरे थे कि उस के पेट में जैसे आग लग गई। उस ने तड़प कर पानी के गिलास की ओर हाथ बढ़ाना चाहा लेकिन रगें लुंजपुंज होने लगीं। आंखें बाहर निकलने को हो रही थीं, कान उखड़ जाना चाहते थे, गर्दन पर मानो बहुत बड़ा घाव बन गया हो···आसपास की हर चीज पिघलने लगी। उस की सांस टूट

रही थी। भीतर से मानो धुएं का गर्म गोला आ कर उस की गर्दन में फंसा और उस की जीभ बाहर निकलने के लिए ऐंठने लगी। वह हाथ-पैर फटकार रही थी। मुंह से लार का तार बंध गया था...चेतना के अन्तिम क्षणों में उस ने कोठरी का दरवाजा खुलते और सम्भाजी को भीतर आते देखा, जो दोनों हाथ छाती पर मोड़ कर, ठीक उस के सामने खड़ा हो गया...उस के बाद वह धुंधला होने लगा, मानो पिघलती दीवारों का रंग सोयराबाई पर बरस पड़ा हो...

रायगढ़ के सब से बड़े मैदान में आज तिल रखने की जगह नहीं थी। ऐसी भीड़ सम्भाजी के राज्याभिषेक के समय भी नहीं देखी गई थी। राज्य के सैनिक धक्का-मुक्की रोकने की पूरी चेष्टा कर रहे थे, लेकिन सफलता पास आ-आ कर दूर चली जाती थी।

"हटो! हटो! छत्रपति आ रहे हैं! हटो!" उन्होंने अपने डण्डों से लोगों के पेट में निर्दयतापूर्वक कोंचते हुए रास्ता बनाया। सामूहिक आतंक ने भीड़ के शोर को निगल लिया था।

एक घुड़सवार छत्रपति का झण्डा फहराता हुआ निकला। उस के बाद चार-चार सवारों की कतार में एक दस्ता गुजरा। घोड़े सधी हुई चाल चल रहे थे और उन की बड़ी-बड़ी आंखें भीड़ को देख रही थीं। उन की दुमें उठी हुई थीं। रह-रह कर वे नथुने फरफरा रहे थे। उन के सशस्त्र सवारों के पुट्ठे जवान वृक्षों के तने की तरह मजबूत थे। उन के चेहरे कठोर थे, मानो चट्टान से तराश कर गर्दन पर लगाए गए हैं। वे इतने गम्भीर थे कि उन की पलकें भी बहुत कम झप रही थीं।

अब लोगों के सामने से चार हाथी गुजर रहे थे जिन के [illegible] सफेद, नुकीले दांत धूप में कौंध रहे थे। उन की आंखें [illegible] कि वे टंगी हुई हैं या खुली हैं, समझना मुश्किल था। [illegible] बड़ी सावधानी और खामोशी से जमीन पर पड़ते थे [illegible] दुमें हिल रही थीं और उन के आगे हुआ [illegible]

जमीन की ओर लटक रही थीं जिन के छल्लों में कभी-कभार ही हरकत होती थी। झूलती सूंड़ से निकलती उन की सांसों से जमीन की धूल जरा-जरा उड़ती और सहम कर नीचे बैठ जाती।

इस के बाद कई खुली डोलियां निकलीं। हरेक में एक-एक पुरुष गठरी बना हुआ पड़ा था। उन्हें इतना कस कर बांधा गया था कि उन की खाल जगह-जगह से कट-सी रही थी। पहली डोली में था हीरोजी फर्जन्द। लाल जांघिए के सिवा उस के शरीर पर कोई वस्त्र नहीं था। धूप में उस के शरीर का पसीना चमक रहा था। उस की क्रूर आंखें बेशर्मी से भीड़ को ताक रही थीं। निचला होंठ बार-बार दांतों के बीच चला जाता था। होंठ में से खून निकलने में अब ज्यादा देर नहीं थी।

उस के बाद की डोली में उस का सहयोगी आनाजी दत्तो था। उस का हृदय मानो पिघल कर आंसुओं के रूप में बाहर आ रहा था। वह चित पड़ा हुआ था और आकाश को घूरता हुआ दोनों ओर की खामोश भीड़ को भूलने की कोशिश कर रहा था। वह पीड़ा के कारण अपने पैरों के अंगूठे हिला रहा था। उस के दोनों गाल, जो उत्तेजना से लाल हो रहे थे, गर्म आंसुओं से भीग गए थे। वह आत्म-धिक्कार से भरा हुआ था। उसे अपना वह गिड़गिड़ाना याद आया, जब वह क्षमायाचना करता हुआ सम्भाजी के पैरों में गिर पड़ा था और उसे वह लात याद आई जो उस के जबड़े पर भरपूर ताकत के साथ पड़ी थी।

उस के बाद उस के भाई सोमाजी दत्तो की पालकी थी। वह आंख मूंद कर चुपचाप पड़ा था, जैसे सो रहा हो। वह बेहोश हो जाना चाहता था क्योंकि भाग्य का वह मजाक उस के लिए असहनीय था। उसे छत्रपति का चेहरा याद आया जो आवेश में तपिया गया था। उस के कानों में वे शब्द गूंज रहे थे जो उस ने छत्रपति सम्भाजी को इस का विश्वास दिलाने के लिए कहे थे कि वह इस षड्यन्त्र के बारे में कुछ भी नहीं जानता। और उस की बन्द आंखों के सामने छत्रपति की वे आंखें उभरीं, जिन्होंने उस की बातों पर कतई विश्वास नहीं किया

था। सोमाजी दत्तो का सब से बड़ा अपराध यह था कि उस ने उसी औरत के पेट में नौ माह बिताए थे जिस के पेट में मानाजी दत्तो ने—और क्योंकि मानाजी दत्तो षड्यन्त्र में शामिल था, भला यह कैसे सम्भव था कि सोमाजी भी शामिल न होता!

उस के बाद की डोली में था बालाजी प्रभु। वह बहुत दुखी था। उस के होंठ बार-बार बिदक रहे थे। उस की भी आंखें बन्द थीं लेकिन उस तरह नहीं, जिस तरह किसी सोए हुए आदमी की होती हैं। उस की बन्द पलकें बार-बार सिकुड़ती थीं, मानों कोयों के भीतर धंस जाना चाहती हों। उस के आंसू सूख गए थे, अतः अपनी पलकों के नीचे लगी आग बुझाने का कोई जरिया उस के पास नहीं था। वह चाहता था कि किसी तरह उस के सिर के बाल छितरा कर सामने आ जाएं, ताकि भीड़ को उस का चेहरा दिखाई न पड़े। लेकिन उस के हाथ पीठ से बंधे हुए थे। वह अपना सिर हिला कर बालों को सामने ला सकता था, लेकिन उसे डर था, तब भीड़ के लोग उस पर हंसने लगेंगे।

उस के बाद दूसरी डोलियों में वे लोग थे, जिन पर सम्भाजी को षड्यन्त्र में शामिल होने का थोड़ा भी शक था। डोलियों के कहार खामोश थे, जैसे वे जीवितों को नहीं, मुर्दों को ही उठा कर चल रहे हों। अधिकांश कहारों की आंखें अपने उन पैरों की ओर थीं, जो धूल में बने पदचिह्नों को बिगाड़ कर नए पदचिह्न बना रहे थे। पैर—जो उन्हें, उन के कन्धों पर लदी डोलियों को और डोलियों में पड़ी मुर्दा गठरियों को मैदान के बीच में ले जा रहे थे।

उन के बाद सम्भाजी पैदल चल रहा था। चूड़ीदार पैजामे में उस की पिंडलियों का भराव उभरा हुआ था। उस के कदम न लम्बे थे, न छोटे। उस का चेहरा कुछ उदास, कुछ निश्चित, कुछ लापरवाह, कुछ क्रूर था। उस के सिर पर एक सेवक ने छत्र तान रखा था। पीछे दो सेवक चंवर डुला रहे थे। रेशमी अचकन में सम्भाजी का चौड़ा सीना आतंक फैला रहा था।

उस के बाद मुकुन्द और कवि कलश चल रहे थे। मुकुन्द के हाथ में नंगी तलवार थी, जिस का पानी चमक रहा था।

भीड़ में एक औरत अपने जवान बेटे के साथ थी। बेटे की दाढ़ी बढ़ी हुई थी। कवि कलश उन के सामने से निकल कर कुछ कदम आगे चला गया, तब वह अपनी मां के कान में फुसफुसाया, "कलश को देखा? लोग उसे कलुष भी कहते हैं।"

"चुप!" मां ने डांटा, "कोई सुन लेगा।"

मुकुन्द और कलश के पीछे मुख्य दरबारी-गण चल रहे थे। सब से बाद में घुड़सवार रक्षक-दल था। मैदान के बीच में बने उस विशाल कटघरे का दरवाजा खोल दिया गया। पूरा जुलूस भीतर आया। कटघरे की दीवार करीब छह हाथ ऊंची थी। छह हाथों के बाद लोगों के बैठने के लिए लगभग पन्द्रह हाथ की ऊंचाई तक पटरियां लगी हुई थीं। उन पर भीड़ का समाना मुश्किल हो रहा था। ज्यों ही टोलियों ने कटघरे का दरवाजा पार किया, भीड़ में भयभीत बुदबुदाहट का शोर उठने लगा। यह शोर किसी लहर की तरह था, जो एक छोर से उठ कर देखते-देखते चारों ओर फैल जाता था। छत्रपति सम्भाजी ने कटघरे में प्रवेश किया। शोर एक क्षण के लिए हल्का हुआ, फिर तीखा हो गया।

कटघरे की सीमा से लग कर एक ऊंचा आंगन-सा बना हुआ था जिस पर पहुंचने के लिए तीन ओर से सीढ़ियों की कतार थी। आंगन के ठीक बीच में एक छोटा लेकिन कलात्मक सिंहासन था जिस पर मराठा छत्र तना हुआ था। सम्भाजी गम्भीरता से उस ओर बढ़ा और ठोस कदम रखता हुआ सीढ़ियां चढ़ने लगा। छत्र तान कर साथ चल रहा सेवक अलग हट गया। सम्भाजी सिंहासन पर बैठा। चंवर डुलाते दोनों सेवक दाएं-बाएं खड़े हो गए। कवि कलश और मुकुन्द भी दाएं-बाएं खड़े हो गए।

सिंहासन के ठीक सामने, कटघरे की सीमा से लग कर वे चार हाथी खड़े थे। उन के महावतों के चेहरे निर्विकार थे। हाथियों के पास की

पटरियों पर बैठे लोग दूसरे लोगों से ज्यादा उत्तेजित लेकिन इस के बावजूद ज्यादा खामोश थे। कटघरा इतना बड़ा था कि सिंहासन और हाथियों के बीच कम-से-कम आठ सौ हाथ का फासला था।

घुड़सवार रक्षकों ने सम्भाजी के सामने छोटी-सी सैनिक कवायद की। कटघरे का दूसरा दरवाजा खोल दिया गया। एक-एक की कतार बना कर सभी घुड़सवार बाहर निकल गए। उन के साथ नगाड़े, नौबत आदि कुछ नहीं थे। उन की यह खामोश कवायद सनसनीखेज थी।

पांचों खुली डोलियां जमीन पर रख दी गई थीं। उन के कहार चुपचाप खड़े आज्ञा की प्रतीक्षा कर रहे थे। वे ठीक सामने देख रहे थे, जैसे उन्हें पता ही न हो कि उन के पैरों के पास कैदियों की गठरियां पड़ी हैं।

सम्भाजी ने मुकुन्द को इशारा किया। मुकुन्द ने आगे बढ़ कर चन्दन की गोल लकड़ी के चारों ओर लिपटा दण्ड-पत्र खोला और पढ़ना शुरू किया, "राजाधिराज छत्रपति सम्भाजी के तेजस्वी मराठा साम्राज्य के नागरिकों को विदित हो कि उप-सेनापति हीरोजी फर्जन्द, भूतपूर्व राजमाता सोयराबाई तथा उन के साथियों अनाजी दत्तो, सोमाजी दत्तो, बालाजी प्रभु तथा इन के कुछ मित्रों को प्राणदण्ड दिया गया है। इन्होंने छत्रपति की हत्या का षड्यन्त्र रच कर देशद्रोह किया। एकमात्र महिला अपराधिन सोयराबाई को जहर दिया जा चुका है। पुरुष अपराधियों को अब सब के सामने हाथियों के पैरों तले कुचलवा दिया जाएगा।"

मुकुन्द पीछे हट कर अपनी जगह पर खड़ा हो गया। कवि कलश सामने आया। डोलियों के पास खड़े कहारों ने उसे इशारा करते देखा। पहले से दे दी गई सूचनाओं के अनुसार कहार नीचे झुके और कैदियों के बन्धन खोलने लगे। सिवा हाथ के, जो पीठ की ओर बंधे थे, उन को स्वतन्त्र कर दिया गया, लेकिन उन में से एक भी कैदी डोली में से उठ कर खड़ा होने के लिए तैयार नहीं था। कहारों ने उन्हें डोलियों में से नीचे लुढ़का दिया। फिर खाली डोलियां उठा कर तेजी के साथ वे

कटघरे के खुले दरवाजे से वाहर हो गए। दरवाजा वन्द कर दिया गया और अब कटघरे के भीतर कैदियों, हाथियों, महावतों और लोगों की नजरों के सिवा कुछ नहीं था। कैदियों में से कुछ ज्यों-के-त्यों पड़े रहे, शेष उठने की चेष्टा करने लगे। वंधे हाथों के कारण उन्हें इतनी मेहनत करनी पड़ी कि वे थोड़े-थोड़े हांपने लगे। जो कैदी उठे नहीं थे, उन्होंने भी अब उठना चाहा। किसी ने किसी को सहायता न दी। मौत करीव आ रही थी, जिस से वे स्वार्थी हो गए थे। वे अच्छी तरह जानते थे कि अव जीवित रहना असम्भव है लेकिन वे जान वचाने के उपाय सोच रहे थे। उन के जिस्म गर्म हो गए थे, जैसे वुखार में तप रहे हों।

अब कोई भी कैदी जमीन पर पड़ा हुआ नहीं था। वे वहुत पास-पास खड़े हो गए थे, हालांकि एक-दूसरों को छू नहीं रहे थे। फिर उन की मुट्ठियां भिंचने लगीं। चारों हाथियों ने धीरे-धीरे आगे वढ़ना शुरू किया। महावत उन के मस्तक पर अंकुश रगड़ रहे थे। उन के मजवूत, काले पैरों की एड़ियां हाथियों की गर्दन को दोनों ओर से मसल रही थीं। दस-वारह कदमों तक चारों हाथी साथ-साथ आगे वढ़े, फिर वे रुक गए। चारों ने एकाएक अपना झुण्ड तोड़ा और अलग-अलग दिशाओं में कदम वढ़ाए। अब वे चार तरफ से एक साथ कैदियों की ओर कदम उठा रहे थे। कैदी डर के मारे कांपने लगे। चीखें रोकने के लिए उन में से कई अपने होंठ चवा रहे थे।

फिर अचानक कैदियों की टोली छितरा गई। उन में से हरेक को लगा कि जहां वह खड़ा है, वह स्थान सव से कम सुरक्षित है। ज्यों ही वे अलग-अलग भागे, उन के धैर्य की गठानें खुल गईं। एक की चीख ने दूसरे को और दूसरे की चीख ने तीसरे को डरा दिया और इस प्रकार वे सव-के-सव चीखने लगे। अब उन में से किसी को याद नहीं था कि मैं उप-सेनापति रह चुका हूं या कि खजांची या शिक्षक या कुछ और—और ज्यों ही पद का ध्यान मस्तिष्क से वाहर रेंगा, वे साधारण लोग

बन गए और चिल्लाने लगे।

क्योंकि उन के हाथ बंधे हुए थे, दौड़ने में उन्हें अजीब लग रहा था—मानो उन की टांगों की लम्बाई कम कर दी गई हो, जिस से उन के कदम छोटे-छोटे पड़ रहे हों। कुछ कैदी दो-चार ही कदम दौड़े थे कि लड़खड़ा कर मुंह के बल गिर पड़े। उन की जबानें कट गईं और दांतों से खून बहने लगा। उन की नाक और ठुड्डी छिल गई और खुले मुंह के भीतर धूल चली गई। उन्होंने सिर उठाना चाहा लेकिन तभी साथी के झटके ने उठे सिर को जमीन पर पटक दिया। अब उन की आंखों में भी धूल चली गई और पुतलियों पर खरखराने लगी।

कुछ कैदी इन गिरे कैदियों से टकराए और उन पर गिर पड़े। गिरे कैदियों ने समझा कि हाथी आ गया। वे पूरी ताकत से चीखे। मरने से पहले वे तेज-से-तेज आवाज पैदा करना चाहते थे। जब उन्होंने देखा कि ये हाथी नहीं हैं तो वे फिर से उठने और भागने की कोशिश करने लगे।

लेकिन अब तक हाथी बहुत करीब आ चुके थे। हाथियों के इतने बड़े शरीरों को वे समूचा नहीं देख सकते थे। उन्हें केवल पैर या सिर या कान या सूंड़ दिखाई पड़ रही थी। हवा को फाड़ती हुई वे जीवित शिलाएं आगे दौड़ रही थीं और बहुत तेजी से बड़ी होती जा रही थीं।

भीड़ का भयभीत शोर अब पूरे कठघरे में नहीं हो रहा था। कभी यहां होता, कभी वहां, फिर सहम कर डूब जाता···

और लोगों ने देखा, वे मानव-शरीर कुचले जा रहे हैं। हाथियों के काले-मोटे पैर उन पर दबते हैं और हड्डियां आवाजों के साथ टूटती हैं। उत्तेजित हाथियों ने लाशों में दांत घुसा कर उन्हें हवा में उछाल दिया। उन में से खून झर रहा था और पेट के अवयव यों बाहर निकल आए थे मानो पतंग की दुम लटक रही हो।

दूर-दूर छितराए वे मांस के लोथड़े धूप में डरावने लग रहे थे। आकाश में चीलों और गिद्धों ने मंडराना शुरू कर दिया था। एक-दो साहसी गिद्धों ने इतने नीचे तक झपट्टे लगाए कि हाथियों ने चिंघाड़

कर उन की ओर सूंड़ फटकारी और महावतों ने अंकुश उछाले।

कवि कलश छत्रपति सम्भाजी के सामने झुका, "शवों का विधिवत् दाह-संस्कार होना चाहिए। देशद्रोही होते हुए भी वे अन्ततः राजकीय पुरुष थे। उन्हें चील-गिद्धों के लिए छोड़ना उचित नहीं होगा।"

"मैं आप से सहमत हूं, गुरुदेव!"

भीड़ को बिखरने का आदेश दे कर छत्रपति सम्भाजी, कवि कलश और मुकुन्द विदा हुए। कुछ देर में जमादारों ने कटघरे का दरवाजा खोल कर मैदान में प्रवेश किया। जो सैनिक चीलों और गिद्धों से लोथड़ों की रक्षा कर रहे थे, वे दूर हट गए। जमादारों ने लोथड़ों को उठा-उठा कर ठेलागाड़ियों में रखना शुरू किया।



कुछ राज-कार्य निपटा कर रायगढ़ की ओर बढ़ रहे मुकुन्द ने अपना घोड़ा मुख्य पगडण्डी से हटा कर छोटी पगडण्डी पर ले लिया। रायगढ़ अब केवल दो मील रह गया था, लेकिन अचानक मुकुन्द के पेट में दर्द उठा था और घुड़सवारी असहनीय हो गई थी। 'कल देवी भवानी की पूजा में ज्यादा खा-पी लिया, इसी का परिणाम है,' वह सोच रहा था। सामने एक गांव उभरा। यहां का हकीम पेट-दर्द के लिए प्रख्यात था। मुकुन्द उस के दरवाजे पर उतरा। दरवाजा खुला हुआ था। वह भीतर गया।

ठण्डे पानी के साथ दवा की दो पुड़ियां लेकर वह गांव की व्यायाम-शाला की ओर बढ़ा, ताकि कुछ देर बैठ कर आराम कर सके। हकीम ने दवा ले कर तुरन्त घुड़सवारी करने से मना किया था। शाम घनी हो

चुकी थी। घोड़ा पीछे-पीछे चला आ रहा था, हालांकि मुकुन्द ने लगाम नहीं पकड़ी थी। खुले मैदान में न नीची, न ऊंची छत वाली एक काफी बड़ी झोपड़ी थी। उस के दरवाजे पर एक तख्ती लटक रही थी, जिस पर देवनागरी लिपि में 'व्यायामशाला' लिखा था। मुकुन्द ने घोड़े को दरवाजे के बाहर एक खूटी में बांधा। वह भीतर गया।

सामने हनुमान की आदमकद लाल मूर्ति दिखाई पड़ी, तेल से नहाई। व्यायामशाला सुगन्धित धूप से महक रही थी। मूर्ति में लगी चांदी की बड़ी-बड़ी आंखों में मशाल का उजाला प्रतिबिम्बित हो रहा था। कुछ मशालें जल चुकी थीं, कुछ जलाई जा रही थी। इधर-उधर चार-छह दीपदान भी रखे थे।

रोबीले सैनिक को देख कर सब का ध्यान आकर्षित हो गया। व्यायामशाला के अध्यक्ष ने आगे बढ़ कर स्वागत किया, "क्या मैं आप का शुभ परिचय जान सकता हूं?"

मुकुन्द ने परिचय दे कर कहा, "मैं यहां कुछ देर के लिए आराम करने आया हूं।"

"अवश्य!" अध्यक्ष उसे दाहिनी ओर ले गया, जहां कुछ कुर्सियां रखी थीं। अध्यक्ष ने बिना बांहों की बण्डी और लाल जांघिया पहन रखा था। उस का मांसल शरीर घने बालों से आच्छादित था। उस की भौंहें बहुत मोटी और आंखें बहुत बड़ी थीं।

"अनुमति दें तो मेरे शिष्य आप को मल्लयुद्ध के कुछ करतब दिखाएं।"

"क्यों नहीं, मेरा मनोरंजन होगा।"

सामने अखाड़ा था, जिस में बारीक रेत भरी हुई थी। वहां करीब दस पहलवान कुश्ती लड़ रहे थे। वे भारी-भरकम होते हुए भी इतने जल्दी-जल्दी उछलते थे कि खिलौनों जैसे लगते थे। अध्यक्ष को आता देख कर उन्होंने कुश्तियां रोक दीं। "अजबसिंह और आवलसिंह!" अध्यक्ष ने खरखराते स्वर में कहा, "आज हमारे यहां महादेवी येसूबाई के अंगरक्षक

श्री मुकुन्दरावजी पधारे हैं। उन्हें दांव के कमाल दिखा कर खुश करो।" अजवसिंह और मावलसिंह के सिवा अन्य पहलवानों ने अखाड़ा खाली कर दिया। रेत के फैलाव की सीमा पर वे कतार लगा कर बैठ गए। अजवसिंह और मावलसिंह गुत्थमगुत्था हो चुके थे। व्यायामशाला में चार दिशाओं में चार आदमकद शीशे लगे थे। मुकुन्द ने कुश्ती को उन शीशों में भी देखा। इस तरह देखना बहुत दिलचस्प था। अध्यक्ष एक कुर्सी खींच कर करीब बैठ गया था और कह रहा था, "ये दोनों मल्ल इस वर्ष की परगना-प्रतियोगिता की सर्व-श्रेष्ठ जोड़ी हैं।"

मुकुन्द ने प्रसन्नता व्यक्त की।

रात धरती पर उतर चुकी थी। मुकुन्द उठा, "धन्यवाद! मुझे अब जाना चाहिए।"

अध्यक्ष औपचारिक आनाकानी अवश्य करता, लेकिन उसी वक्त घोड़ों की टापें सुनाई पड़ीं। वह चौंक गया और मुकुन्द के साथ दरवाजे की ओर बढ़ा। "बुरा, बहुत बुरा!" वह फुसफुसाया। मुकुन्द ने अंधेरे में आंखें गड़ाईं। दस-बारह घुड़सवार, जिनमें से किसी के पास मशाल नहीं थी, अंधेरे में काले धब्बों की तरह सामने की एक झोंपड़ी को घेर रहे थे।

"बेचारी की जिंदगी खराब हो गई।" अध्यक्ष फिर से बुदबुदाया। अखाड़े के मल्ल दरवाजे के पास भीड़ लगा चुके थे। अध्यक्ष ने कहा, "कोई बाहर न निकले। नंगे बदन पर एक ही तीर बहुत है।"

"किस की जिंदगी?" मुकुन्द ने दूसरी बार पूछा था। अध्यक्ष ने गमगीन होते हुए कहा, "उस झोंपड़ी में एक सुन्दर लड़की रहती है। ये लोग उसे उठा ले जाएंगे।"

"कौन लोग?"

"परम तेजस्वी छत्रपति सम्भाजी का गुप्त सैनिक दस्ता।"

"असम्भव!"

उसी समय एक पतली चीख ने हवा को चीर दिया। मुकुन्द ने दांत

भींचे। ये सैनिक सम्भाजी के हों या न हों, लेकिन ये सैनिक और अपहरण करने आए थे। 'लड़की को कैसे बचाऊं?' इस विचार ने उसे झकझोर दिया। उस के पास अन्य हथियारों के अलावा एक बन्दूक भी थी, लेकिन वह अकेला इतने घुड़सवारों को कैसे रोक सकेगा?"

दूसरी चीख...जो किसी की हथेली ने मूंद दी...

एक दिन इसी तरह गुन को भी...

उसने चाहा, वह घोड़े पर सवार हो कर उन सैनिकों की ओर झपट जाए और कड़क कर पूछे, 'कौन हो? छोड़ दो इसे।' लेकिन उसने अपने को रोका। उसे अध्यक्ष के शब्द याद आए' सम्भाजी का गुप्त सैनिक दस्ता...गुप्त...ये सैनिक एक संगरक्षक की आज्ञा क्यों मानेंगे? इन्हें छेड़ना खतरनाक है।

एक घुड़सवार झोंपड़ी के भीतर से एक तड़पती छाया उठा कर लाया। वह उछल कर अपने घोड़े पर सवार हो गया। छाया को उसने घोड़े की गर्दन पर पटका और एड़ लगाई। घोड़ा बड़ी तेजी से अंधेरे में आगे सरका। दूसरे घुड़सवारों ने उसे आगे-पीछे से घेर लिया।

"मैं आप से फिर मिलूंगा।" मुकुन्द ने अध्यक्ष से कहा, "मेरे यहां आने की बात किसी को न बताई जाए।" वह तेजी से अपने घोड़े की ओर बढ़ा। 'आप कहां जा रहे हैं?' अध्यक्ष ने पूछना चाहा, लेकिन तब तक घोड़ा कुलाच भर चुका था।

अंधेरे में भाग रहे उन सैनिकों द्वारा मुकुन्द के घोड़े की टापें सुनी जाने की सम्भावना नहीं के बराबर थी, क्योंकि उन के अपने घोड़े टापें दे रहे थे। मुकुन्द उन से सुरक्षित फासला रखता हुआ पीछा कर रहा था और सोच रहा था, 'सचमुच यह छत्रपति का दस्ता है? छत्रपति को अपहरणों का चस्का फिर पड़ गया? लेकिन कब? स्वामिनी का यह विश्वास कि उन के रहते छत्रपति पतित नहीं हो सकते, आखिर धोखा ही निकला। हां, इतना जरूर कि छत्रपति स्वामिनी से छिप कर ऐसा करते हैं...तभी तो इतना गुप्त है...परन्तु कब तक गुप्त रहेगा यह?"

इस पतन का कारण कलश के सिवा और कौन हो सकता है ?'

पगडण्डी यहां से दो शाखाओं में फूटती थी। एक शाखा रायगढ़ की ओर जा रही थी, दूसरी संगमेश्वर नामक एक कस्बे की ओर। दस्ता संगमेश्वर वाली पगडण्डी पर मुड़ा। 'मोड़ पर किसी की दृष्टि पीछे जा सकती है,' मुकुन्द ने सोचा। तुरन्त वह एक झाड़ी की ओट में हो गया। जब दस्ते की पूरी लम्बाई ने मोड़ पार कर लिया तो उस ने फिर से पीछा पकड़ा।

आधी रात के बाद अंधेरे में संगमेश्वर का आभास हुआ। दस्ते की गति धीमी हो गई थी। मुकुन्द ने भी अपना घोड़ा धीमा किया।

दस्ता एक दुमंजिले मकान के सामने रुका, जिस के भीतर उजाला हो रहा था। घुड़सवार ने नीचे उतर कर तड़पती लड़की को जबरन कन्धे पर लादा। फिर वह भीतर चला गया। दूसरे सवारों ने मकान को चारों ओर से घेर लिया। जब वे उसे घेरते हुए फैल रहे थे, तो मुकुन्द ने ध्यान दिया कि सैनिकों का एक दस्ता पहले से मकान की रक्षा कर रहा था।

मकान में कौन है ? सम्भाजी ?

सुबह रायगढ़ पहुंचना अत्यन्त आवश्यक था। आवश्यक न होता तो भी मुकुन्द इस लड़की को बचा नहीं सकता था। लाचारी से उस ने घोड़ा वापस मोड़ा और दौड़ा दिया।

रायगढ़ के किले का दरवाजा जब दिखाई पड़ा तो सूरज क्षितिज से आधा ऊपर आ चुका था। रक्षकों ने उसे देखते ही दरवाजा खोल दिया। रतजगे, थकान और उदासी से वह चूर हो रहा था। ठीक उस की नजरों के सामने वह अपहरण हुआ था और वह देखता रह गया था ! उफ् !

"बड़ी देर कर दी ? मैं नहाने का पानी रखवाती हूं।" उसे देखते ही गुल ने शिकायत करते हुए कहा।

वह बोला, "रखवाओ, मैं अभी आया।"

उस ने येसूबाई के कक्ष की ओर कदम उठाए। बदहवास हालत में ही उसे जाते देख कर गुल को अचरज हुआ, पर यह सोच कर वह चुप रह गई कि कोई जरूरी सन्देश देना होगा।

सेविका ने दरवाजे पर इन्तजार कर रहे मुकुन्द से कहा, "आप जा सकते हैं।"

येसूबाई भी मुकुन्द के बिखरे बालों, उजड़े चेहरे और थकी आंखों को देख कर चौंके बिना न रह सकी।

"छत्रपति कहां हैं ?" मुकुन्द ने सीधा ही प्रश्न किया।

"वह रायगढ़ से बाहर हैं। आज दोपहर तक लौटेंगे। शायद सेना की व्यवस्था का कोई काम था।"

"रायगढ़ से बाहर ? कहां ?"

"नहीं मालूम।"

"आप को भी नहीं मालूम ?" मुकुन्द ने आश्चर्य व्यक्त किया।

"उन्हें बिल्कुल अचानक जाना पड़ा। मैं पूछ भी न पाई। क्या आप को सन्देह है कि वह मुझ से छिपते हैं ?"

"नहीं, सन्देह कैसा।" मुकुन्द ने इस तरह कहा, जैसे उस का मतलब हो, मुझे सन्देह नहीं, विश्वास है। येसूबाई ने प्रश्नात्मक दृष्टि से उस की ओर ताका।

दोपहर को सम्भाजी लौट आया।

उसी रात मुकुन्द का घोड़ा उस व्यायामशाला के सामने रुका। मुकुन्द अध्यक्ष को एक एकान्त कोने में ले गया और बोला, "उस गुप्त दस्ते के बारे में आप जो भी जानते हों, बता दीजिए !" उस ने दो स्वर्ण मुद्राएं अध्यक्ष की हथेली पर रखीं। वह प्रसन्न हो गया।

"दो दिन पहले छत्रपति शिकार खेलते हुए इस कस्बे में आए थे। तब उन्होंने उस लड़की को देखा। उन्होंने उस के पिता से कहा कि उसे उसे सेविका बना कर उन के साथ ही भेज दिया जाए। पिता ने कहा, ले जाना हो तो ब्याह कर ले जाइए। छत्रपति हां-ना का जवाब दिए बिना

ट गए। दूसरे दिन दस्ता आ गया। उस समय आप यहीं थे।"
"आप को कैसे मालूम कि वह दस्ता गुप्त था?"
"वह तो केवल एक अन्दाजा था। छत्रपति के पास कोई गुप्त दस्ता है, यह बात मैं ही नहीं, सारी जनता जानती है। उस का काम अपहरण करना है। आश्चर्य, आप नहीं जानते?"
"कई बातें जनता को तो मालूम होती हैं, लेकिन राजकीय पुरुषों को नहीं।"
"आप ठीक कहते हैं। इसीलिए प्राचीन काल में राजा वेश बदल कर लोगों की बातें सुनने के लिए निकलते थे।"
"गुप्त दस्ता अक्सर दिखाई पड़ता है क्या?"
"अक्सर दिखाई पड़ने वाला दस्ता गुप्त नहीं हो सकता।" उत्तर मिला, "दो-चार मास में एकाध अपहरण की बात सुनाई पड़ती है। ले जाई गई लड़कियां तथा स्त्रियां प्रायः वापस कस्बे में छोड़ दी जाती हैं। तो ठीक है, मुगल सिपाही तो जान से मार देते हैं। अब तक केवल एक लड़की नहीं लौटाई गई। कुछ दिनों पहले सुनाई पड़ा था कि संगमेश्वर में है।"
"संगमेश्वर?"
"हां। अफवाह सुनी है कि वहां छत्रपति प्रायः जाते हैं।"
अध्यक्ष चुप हो गया। जो कुछ उसे मालूम था, वह बता चुका। सहसा उस ने पूछा, "उस दिन आप ने दस्ते का पीछा किया था किधर गया था?"
"अरे भाई, उस दिन तो बड़ा परेशान होना पड़ा।" कहा, "दस्ता किस पगडण्डी पर गया, अंधेरे में इस का प चला। रात भर मैं जंगल में भटकता रहा।
अध्यक्ष ने दुख से सिर हिलाया।
आधी रात के बाद मुकुन्द का घोड़ा संगमेश्वर पहुंच ग उसी दुमंजिले मकान की ओर बढ़ा। ऊपर की मंजिल के

थोड़ी रोशनी थी, जो खुली खिड़की से बाहर आ रही थी। शेष खिड़कियां बन्द थीं।

और करीब जाने पर उस ने पाया, मकान पर कड़ा पहरा है। चौकन्ने सैनिकों ने उसे चारों ओर से घेर रखा है। मुकुन्द ने तेजी से घोड़ा दौड़ा दिया और अचानक ठीक दरवाजे के सामने रोका। सैनिक चौंक गए। उन का मुखिया आगे आया। मुकुन्द घोड़े से उतरा और बोला, "मुझे छत्रपति ने भेजा है।"

"आप का परिचय ?"

"मैं रंगमहल का विशेष अंगरक्षक हूं।" मुकुन्द ने अंगूठे में पहनी राजमुद्रा दिखा दी और कहा, "दरवाजा खोलिए !"

"छत्रपति के सिवा यहां कोई नहीं जा सकता।"

"मुझे मालूम है।"

"फिर आप···"

"मैं कभी न आता, यदि स्वयं छत्रपति ने न भेजा होता।"

मुखिया फिर भी हिचकिचाया तो मुकुन्द ने कहा, "कल यहां किसी को लाया गया है। उस के नाम छत्रपति का सन्देश है।"

"सन्देश मुझे दीजिए, मैं पहुंचवा दूंगा।"

"लिखा हुआ नहीं है, मौखिक है।"

"मैं आप को नहीं पहचानता।"

मुकुन्द ने डपट दिया, "मेरी राजमुद्रा भी नहीं पहचानते ? मैं तुम सब का वध करवा सकता हूं।"

उसी समय ऊपर की खिड़की से किसी बच्चे के रोने की आवाज आई।

बच्चा ?

किस का ?

मुखिया सहम कर कुण्डी पर झुक गया था और ताले में चाबी डाल कर घुमा रहा था। दरवाजा खुला। "घोड़े को सम्भालो !" उसे लगाम थमा कर मुकुन्द भीतर आया।

"नहीं। कभी कहीं, कभी कहीं। केवल तीन माह से यहां हूं।"

"आप ?..." मुकुन्द ने युवती की ओर देखा, "शायद आप कल ..."

"हां, इस का अपहरण हुआ है। आप को कैसे मालूम ?"

मुकुन्द ने सारी आपबीती सुना दी।

बच्चा कन्धे पर सो गया था। महिला ने उसे पलंग पर लिटाया और कटुता से कहा, "छत्रपति की अगली सन्तान की मां शायद यही हो।" युवती सिकुड़ी और दूसरी ओर देखने लगी।

"छत्रपति यहां अक्सर आते हैं। इस दरवाजे को देख रहे हैं न ? उस के उधर जो कमरा है, वह मेरे और छत्रपति के लिए है। जो लड़की अस्थायी रूप से लाई जाती है, वह वहां नहीं जा सकती।"

"आप को छत्रपति से घृणा..."

"शुरू में हुई थी, बहुत हुई थी, फिर सहानुभूति हो गई। हर व्यक्ति एक-न-एक कमजोरी जरूर होती है। उस के लिए उसे कहां तक पराधी कहा जाए ? कमजोरियां अपने-आप पैदा हो जाती हैं—की रहीं जातीं।"

"कमजोरियां मित्रों और वातावरण के कारण पैदा होती हैं।"

"मैं ऐसा नहीं समझती। बुरे मित्रों और बुरे वातावरण में भी का कड़ा व्यक्ति अछूता रह सकता है। अगर केवल उस पर होता जिस के मन में पहले से कमजोरी के बीज हों। कमजोर व्यक्ति वातावरण खुद ढूंढ़ता है।"

"आप महामंत्री के बारे में भी कुछ जानती होंगी।"

"छत्रपति ने एक बार बताया था कि कभी-कभी गुप्त दस्ता लिए भी..." वाक्य अधूरा छोड़ कर महिला ने जरा बेबाकी युवती की ओर देखा और कहा, "यह बहुत डर गई है।"

मुकुन्द जब रायगढ़ पहुंचा तो दिन चढ़ आया था। न

और खाना खा कर वह गहरी नींद सो गया। नींद टूटी तो शाम होने वाली थी। जम्हाई ले कर वह पलंग पर उठ बैठा। बिखरे बालों को उंगलियों से ठीक कर के उस ने कमरे में दृष्टि दौड़ाई। गुल कहीं बाहर गई हुई थी।

अचानक उस के मन में शंका के बादल घिर आए। गुल !'''कमजोर छत्रपति'''कमजोर छंदोगामात्य'''कभी भी, कैसा भी अनर्थ हो सकता है। उसे पहली बार अहसास हुआ कि गुल यहां, इस महल में भी कितने खतरे में है। उसे गायब करना हो तो छत्रपति को क्या देर? और छंदोगामात्य को भी क्या देर? मुकुन्द तब शिकायत ले कर किस के पास जाएगा? येसूबाई के पास? येसूबाई क्या कर सकेगी? पहले वह स्वयं अपने अधिकारों की तो रक्षा कर ले!

स्वामिनी ने छंदोगामात्य से यही तो कहा था कि वह विवेक की खातिर ही सही, किन्तु गुल का सम्मान अवश्य करें—लेकिन ऐसे मामले में विवेक को साथ छोड़ते क्या देर'''और छत्रपति'''गुल पर प्रायः रोज उन की दृष्टि पड़ती है। गुल का कन्यादान स्वयं महाराज शिवाजी ने किया है। इस नाते वह छत्रपति की बहन हुई। कदाचित् इसी भावना ने उन्हें अब तक रोक रखा हो, लेकिन वासना की आग भावनाओं को भस्म करने में समय ही कितना लेती है?

तुरन्त मुकुन्द कमरे से बाहर निकल आया। वह गुल को खोजने के लिए बेचैन हो उठा था। 'कहां होगी?' मुकुन्द सोच ही रहा था कि वह सामने से आती दिखाई पड़ी। उस ने पति की ओर एक मुस्कान फेंकी, "जाग गए?"

"कहां थीं तुम?" उसे कमरे में ले कर मुकुन्द ने दरवाजा बन्द किया।

"और कहां जाती? जरा स्वामिनी से बातें कर रही थी।"

"मेरा एक कहना मानोगी? तुम बाहर कम-से-कम जाया करो।"

"क्यों? महल के भीतर से भी कोई मुझे उठा ले जाएगा क्या?"

हंस पड़ी ।

मुकुन्द 'हां' कहते-कहते रुका । जब तक समस्या का कोई ठोस हल ढूंढ़ लिया जाए, गुल को कुछ भी बताना ठीक नहीं था ।

लेकिन इस का हल क्या था ? यदि मुकुन्द महल में रहेगा तो गुल को छत्रपति और छंदोगामात्य दोनों की दृष्टि में अक्सर पड़ते रहने से नहीं बचाया जा सकता । और यदि मुकुन्द त्यागपत्र दे कर गुल के साथ महल छोड़ जाता है, तो ? तब तो शायद छंदोगामात्य की कुण्ठा और उभर जाए···छत्रपति का गुप्त दस्ता उन का पीछा न करेगा क्या ? गुप्त दस्ते से बचना लगभग असम्भव है और यदि बच भी गए तो निकट भविष्य में ही मराठों पर मुगल आक्रमण होने वाले हैं। चारों ओर अराजकता फैल जाएगी । मुगल सैनिकों से मुकुन्द गुल को कैसे बचा पाएगा ? अकेला मुकुन्द ?

'सुन्दरी पत्नी की रक्षा कितनी कठिन होती है !' मुकुन्द ने सोचा और गहरी सांस ली ।

"किस विचार में डूब गए ?" गुल ने उस का कन्धा झकझोरा ।

वह हकला गया, "कुछ नहीं···कुछ नहीं···कहां ? कुछ भी तो नही सोच रहा···" और झेंप मिटाने के लिए उस ने गुल को बांहों समेटा ।

"मैं जानती हूं, क्या सोच रहे हो ।"

"क्या ?"

गुल थोड़ा शरमाई, फिर उदास हो गई, "हम अभी तक दो ही रहे । मुझे भी···मुझे भी कम दुख थोड़े ही है इस का···प मैं क्या करूं···"

"धत् पगली !" मुकुन्द ने उसे जोर से भींचा और चूम लिय बातें मन में नहीं लानी चाहिए । चमत्कार दिखाना प्रकृति का जब मौज में होगी, दिखा देगी । गुल, तुम खुश रहा करो अ न घूमा-फिरा करो ।"

गुल रूठ गई, "तुम तो यों कह रहे हो जैसे मैं दिन-भर घूमती ही रहती हूं।"

मुकुन्द उस के रूठने का मजा न ले सका और मानो सकपका-सा गया, "बुरा मान गई ?"

लेकिन तभी गुल खुश हो उठी। पति के चेहरे के भाव वह न देख पाई। बोली, "दो से तीन होने की बात मैं ने पहले कभी नहीं कही थी। बताओ, आज क्यों कही ?"

"मैं क्या जानूं ?"

"सोचो !"

"औरतों के मन की थाह ब्रह्मा भी नहीं पा सकते।"

"प्रेमी पा सकते हैं।"

"कभी-कभी, हमेशा नहीं।" मुकुन्द हंसा, "और मैं अब प्रेमी कहां रहा ? अब तो मैं पति हूं पति !"

"अच्छा-अच्छा पति महोदय, यों कहिए कि आप सोचने के लिए तैयार नहीं है।"

"जो समझो।"

"कान खोल कर सुनिए ! हम दो से तीन न हुए, न सही, लेकिन हमारी स्वामिनी···" अचानक वाक्य टूट गया। वह शर्म से ललिया गई और झेंप कर मुस्कराने व पल्लू का छोर चबाने लगी।

मुकुन्द ने चौंक कर उस की ओर देखा, "अच्छा ?"

वह दौड़ती हुई कमरे से निकल गई। मुकुन्द को उस का बाहर जाना खटका, पर वह कुछ कह न सका। वह बेवजह दीवारों को देखता रहा··· विचारों की धूल कमरे मे भर गई···सन्तानें ! छत्रपति की सन्तानें ! एक राजमहल में आने वाली है—येसूबाई की कोख से, सामाजिक मान्यता के साथ, राजकीय सम्मान के साथ। एक सगमेश्वर में पैदा हो चुकी है··· न जाने और कितनी सन्तानें होंगी···कितने सगमेश्वर होंगे···कितने दुमजिले या एकमजिले मकान होंगे···सन्तानें ! छत्रपति और छदोगामात्य

ी सन्तानें होंगे…

दो दिन बीत गए। मुकुन्द कई बार येसूबाई के सामने यह ठान कर गया था कि इस बार तो संगमेश्वर का रहस्य खोल ही दूंगा, लेकिन हर बार वह इधर-उधर की बातें कर के लौट आया था। 'स्वामिनी को कितना दुख होगा !" यह विचार उसे रोक ही देता। अपनी कमजोरी पर वह झुंझलाता और कुढ़ता, लेकिन लाचार था वह।

तीसरे दिन रायगढ़ का किला खुला और मधुमक्खियों के झुण्ड की तरह सैनिक बाहर निकलने लगे। घोड़े हिनहिना रहे थे, हाथी चिंघाड़ रहे थे और ऊंटों पर लदे नगाड़े जोर-जोर से पीटे जा रहे थे। तुरही का तीखा शोर दूर-दूर तक तिर कर सेना की रवानगी की घोषणा कर रहा था। वातावरण में धूल छा गई और ऊंचाई पर उड़ती चीलें बेचैनी से कठोर आवाजें करने लगीं।

सम्भाजी के खूबसूरत हाथी पर विभिन्न रंगों से चित्रकारी की ग
थी। उस की पीठ पर बिछी चादर दोनों करवटों पर झूलती हुई चम
रही थी। हौदे के ऊपर मराठा झण्डा फहरा रहा था। ठीक पीछे क
कलश का हाथी था। उस का महावत बार-बार शंख फूंक रहा था

महल की खिड़की से सेना का यह फैलाव रोमांचक लग रहा
येसूबाई की आंखों में आंसू छलके। कई महीनों के लिए उस से ि
कर सम्भाजी पुर्तगालियों पर हमला करने चल पड़ा था। ये प
बादशाह औरंगजेब के उकसाने से दक्षिण में उत्पात मचा रहे

"मुकुन्दजी, पुर्तगालियों की तोपें बहुत शक्तिशाली हैं।"
खिड़की बन्द कर के उस रोमांचक दृश्य को ढंक दिया।

"तो क्या हुआ महादेवि ?" मुकुन्द ने चमकती आंख
"मराठा तोपें भी कम नहीं। बढ़-चढ़ कर जवाब देंगी।"

मुकुन्द की आंखें किसी और कारण से चमक रही
कारण सम्भाजी और कवि कलश दोनों लम्बे अरसे
अनुपस्थित रहने वाले थे, जिस से गुल की सुरक्षा की

तो टल गई थी। युद्ध से उन के लौट आने पर क्या किया जाएगा, मुकुन्द को अभी तक न सूझ पाया था लेकिन इस समय तो वह चिन्ता-मुक्त हो ही गया था।

'ओह, मैं कितना ओछा हूं ? जिस बात से मेरी स्वामिनी इतनी दुखी है, उसी से मैं इतना प्रसन्न हूं।' उस ने सोचा और उदास हो जाना चाहा लेकिन चाहने से भला कैसे···

महल की वह खिड़की पूरे एक सप्ताह तक येसूबाई ने न खोली। आठवें दिन जब वह खोली गई तो जिस मैदान में सैनिकों का जमघट दिखाई पड़ा था, वह एकदम खाली था—इतना ज्यादा खाली कि येसूबाई ने फिर से खिड़की बन्द कर दी, भड़ाक की आवाज के साथ।

दीवार का सहारा ले कर वह चुपचाप खड़ी रही। पूरे कमरे में वह निपट अकेली थी। फिर उसे लगा कि वह अकेली नहीं है। उस का हाथ अपने उदर को छू रहा था। चमड़ी और मांस की कुछ पर्तों के बाद वहां कोई था, जिस के कारण अब वह अकेली नहीं रह सकती थी···

उस दिन मुकुन्द फिर से इस निश्चय के साथ आया कि संगमेश्वर वाली बात बता दे, लेकिन केवल हाल-चाल पूछ कर लौट गया। दो दिन बाद एक जरूरी काम से उसे पाली जाना था। जाने से पहले वह येसूबाई से कहने गया कि आज शाम तक लौट आऊंगा। संगमेश्वर की बात बताने की उस ने कतई नहीं सोची थी, लेकिन उस ने पाया कि वह उस बात को शुरू कर चुका है। बताने की ठान कर आने और हर बार बिना बताए चले जाने के बाद इस अनहोनी शुरूआत ने उसे चकित कर दिया। वह सिर झुका कर बोलता जा रहा था। उस की आवाज सम्भली हुई थी और उसे लगातार अनुभव हो रहा था कि येसूबाई द्वारा हुंकारी नहीं दी जा रही है।

बात समाप्त कर के उस ने आंखें उठाईं तो महादेवी का चेहरा ऐसा हो गया था, जैसे किसी ने सारा खून निचोड़ लिया हो। उस की पलकें झप नहीं रही थीं और उस का छोटा-सा मुंह किसी मरी हुई मछली की

तरह खुला रह गया था। मुकुन्द को लगा, अभी ये भोले होंठ बिसूरेंगे और आंखें मोटे-मोटे आंसुओं से भर जाएंगी; पर ऐसा न हुआ। येसूबाई ने गहरी सांस ली और देर तक रोके रखी—बस !

"देवि," किसी तरह मुकुन्द ने कहा, "उन्हें ··उन्हें आप उन का उस मामूली मकान में रहना···उन्हें आप किसी महल में जगह दिलाइए न ?···"

"नहीं, मुकुन्दजी, वे वहीं ठीक हैं।"

और वह उठ कर बाहर चली गई। मुकुन्द उस की पीठ की ओर देखता रहा।

सम्भाजी से स्वामिनी की झड़प होगी ?

मुकुन्द का मन न तो 'न' कह पाया, न 'हां'।

जब उस का घोड़ा पाली की ओर बढ़ रहा था, उस ने अपने और गुल के भविष्य पर दृष्टिपात किया। वह नहीं जानता था कि उसे क्या करना होगा और क्यों और कैसे।

और तभी घटना-चक्र ऐसा घूमा कि यदि वह 'क्या, क्यों और कैसे' जानता होता, तो भी उस पर अमल न कर पाता।

बादशाह औरंगजेब ने शाहजादा मुअज्जम को माफ कर दिया था। अहसान से दबे शाहजादे ने अपनी अनिच्छा के बावजूद छत्रपति सम्भाजी का दमन करने का बीड़ा उठा लिया। जासूसों ने समाचार दिए कि सम्भाजी इस समय पुर्तगालियों को शक्तिहीन करने में व्यस्त है। मुअज्जम ने सोचा, 'सम्भा पर हमला करने का यह अच्छा अवसर है।'

बड़े हमले की तैयारियां हों, इस दौरान सम्भा के राज्य में उत्पात मचाने के लिए मुगलों के अनेक छापामार दल रवाना कर दिए गए।

पाली में मराठा सैनिक शिविर का निरीक्षण करने तथा अन्य प्रबन्धों में मुकुन्द का इतना समय बीत गया कि रात हो गई। थक इतना गया

था कि उस ने सोचा, रात पाली में ही बिताऊं और सुबह रायगढ़ के लिए रवाना होऊं।

आधी रात को हवा के झोंकों में अकस्मात् ही काफी तेजी आ गई, लेकिन शिविर के एक तम्बू मे बेखबर सोए मुकुन्द को इस का पता न चल सका।

चांदनी की सफेदी की परवाह न करती हुई अनेक आकृतियां पड़ाव की ओर बढ रही थी।

पाली के कुत्ते आज बहुत कम भौंक रहे थे। सियारों की आवाज भी नदारद थी।

खामोशी की नदी में अचानक बड़े-बड़े पत्थर आ पड़े···मारो! मारो! बचाओ! सावधान! बढ़ो!···

मुकुन्द चौंक कर जाग उठा। ये कैसी आवाजें? किसी ने छापा तो नही मारा?

उसी समय एक तीर तम्बू के कपड़े में घुसा···जलती नोक वाला तीर···कपड़ा धधक उठा। मुकुन्द ने पास ही रखी रेत की बाल्टी उठाई और आग पर फेंकी। आग मुंद गई। केवल अधपका धुआ उठता रहा।

एक मराठा सैनिक झपटता और चीखता हुआ अन्दर आया, "मुगलो का छापा!···"

उसी समय तीन-चार जलते तीर तम्बू मे धसे। लाल-पीली जीभें कपड़े को चाटने लगी।

मुकुन्द बन्दूक, तलवार और ढाल उठा कर बाहर निकला, तब तक आस-पास के सभी तम्बू आग पकड़ चुके थे। जलते कपड़े की बू उन की नाक मे गई और वह उत्तेजित हो गया। आग की लपटो के कारण चांदनी दूर-दूर तक भर गई थी। हर तम्बू से काला धुआं ऊपर उठ रहा था और आसपास भी फैल रहा था। अंधेरे-उजाले मे लडते-व चीखते सैनिक उसे प्रेतों जैसे लगे। समझते उसे देर न लगी कि

पलायन ही सर्वश्रेष्ठ उपाय है। छापा इतना बड़ा था कि पाली के उस छोटे शिविर के सैनिक उस के सामने नहीं टिक सकते थे। मुकुन्द अपने पर होते वार बचाता हुआ घोड़े की ओर बढ़ा। मुगल सैनिक रह-रह कर गोलियां भी चला रहे थे।

मुकुन्द घोड़े पर सवार हो कर एक ओट में होने ही वाला था कि घोड़ा जोर से हिनहिनाया और जमीन पर ढह गया। मुकुन्द चित पछाड़ खा गया। घोड़े के पुट्ठे पर एक साथ दो तीर लगे थे। वह उठने की बेकार कोशिश कर रहा था।

मुकुन्द चीते की तरह उठा, क्योंकि पीठ के बल उलटना बहुत खतरनाक था। उस के चारों ओर धूल घिर आई थी, जिस के आरपार उस ने कई छायाएं देखीं।

पीछे से उस के सिर पर किसी कड़ी चीज का भरपूर वार हुआ और वह बेहोश हो कर लुढ़क गया।

पाली में मुगल आक्रमण की तथा पड़ाव में आग लग जाने की खबर पोंडा पहुंची, जहां सम्भाजी पुर्तगालियों के विरुद्ध युद्ध कर रहा था। उस के कुछ ही दिनों बाद गुप्तचरों ने समाचार दिए कि शाहजादा मुअज्जम की विराट सेना पोंडा की ओर बढ़ रही है, ताकि छत्रपति सम्भाजी को गिरफ्तार किया जा सके।

"गुरुदेव," सम्भाजी कवि कलश के साथ मशविरा कर रहा था, "पोंडा को जीतने में अभी कम-से-कम दस दिन और लगेंगे।"

"और मान लीजिए, हम उसे जीत भी लें तो हमारे जाते ही मुगल सेना आ कर उसे आजाद कर देगी। अच्छा यही है कि अभी हम लौट चलें। मुअज्जम को मजा चखाने का अवसर फिर कभी ढूंढ़ा जाएगा। पुर्तगालियों को अपनी शक्ति का परिचय हम ने दे ही दिया है। उत्पात करने से पहले अब उन्हें सोचना अवश्य पड़ेगा।" कवि कलश का उत्तर था।

३१

मुकुन्द बहुत देर तक जेल के सींखचों को घूरता रहा जो अपनी मजबूती से उसे डराना चाहते थे।

उस दिन जब उस की बेहोशी दूर हुई थी, उस ने अपने को रस्सों से बंधा पाया था। उसे एक घोड़े पर गठरी की तरह लाद दिया गया था। पीछे बैठे सैनिक का मजबूत हाथ उस की कमर को घेरे हुए था, ताकि वह घोड़े से नीचे न गिर पड़े। उस का गला सूख रहा था। "पानी···" उस ने कराहते हुए कहा था और घोड़ा रुक गया था। पीछे के सैनिक ने उस के बाल मुट्ठी में भरे और झटका दे कर सिर ऊपर उठाया, "तो होश में आ गए जनाब!" फिर वह धीमे से हंसा और बोला, "ए! काफिर के लिए पानी लाओ।"

बगल में चल रहा घुड़सवार करीब आया। मशक का मुंह खोल कर वह मिट्टी के कुल्हड़ में पानी उंडेलने लगा। गला तर होने के बाद मुकुन्द को कुछ शान्ति हुई। उस ने आस-पास देखा। पाली के कई सैनिकों को बन्दी बना लिया गया था जो आगे-पीछे, अगल-बगल चल रहे घोड़ों पर बंधे लदे हुए थे। उन्हें निहत्था कर के कपड़ों को फाड़ दिया गया था, ताकि वे अपनी निरीहता को और अच्छी तरह अनुभव कर सकें।

'हमें कहां ले जाया जा रहा है?' यह प्रश्न मुकुन्द के मन की दीवार पर आ चिपका। उस ने पीछे बैठे सैनिक से पूछना चाहा, लेकिन उसी समय एक नया तूफान मन में घुमड़ उठा और पूछने की उस की इच्छा दब गई।

उसे गुल की याद आ गई थी—प्यारी-प्यारी गुल, जो उस के पाली से न लौटने पर बेहद घबरा जाएगी और इतना रोएगी, इतना रोएगी कि···

और मुकुन्द नहीं जानता था, वह रायगढ़ कब लौट पाएगा। उस ने

अपने को बहुत धिक्कारा कि वह पाली में रात क्यों रुक गया। अगर सुबह का इंतजार किए बिना वह रवाना हो गया होता तो रात में पड़े छापे में वह कैद न होता। पर जो हो गया था, उसे न हुआ नहीं किया जा सकता था। मुकुन्द ने दुख की सांस छोड़ी, जिस का गर्म स्पर्श उस ने अपनी नाक के नीचे महसूस किया। वह पीठ के पीछे बंधे हाथों को छुड़ाने के लिए कसमसाया, हालांकि वह जानता था कि इस तरह हाथ नहीं छूट सकते थे। उस के पैरों का खून रुक गया था, जिस से वे झन-झना रहे थे और पोले मालूम पड़ते थे। उस ने अंगूठा हिलाने की कोशिश की, तो लगा, अंगूठा है ही नहीं। होंठ फिर से सूखने लगे थे, जिन्हें उस ने जीभ फेर कर तर कर लिया।

गुल'''

'पुर्तगालियों पर मराठा हमला समाप्त होगा और सम्भाजी रायगढ़ लौट आएगा। कवि कलश भी लौटेगा और पाएगा कि गुल अकेली है। तब'''तब''' वह आगे न सोच सका। उस ने जोर से आंखें भींची। समस्या के डरावने उलझाव से वह इन्कार करना चाहता था।

"मैं किस का कैदी हूं?" उस ने खरखराते गले से पूछा।

"दुश्मनों का।"

मुकुन्द चिढ़ा, "कैदी और कैद करने वाला कभी दोस्त नहीं होते। नाम बताओ।"

"चुप रहो!" सैनिक ने पीछे से जवाब दिया। क्रोध से मुकुन्द के फेफड़े फूलने लगे। थकान के कारण वह कमर झुका कर घोड़े की गर्दन पर अपना सिर रखे हुए था। एकाएक ही वह जोर से पीछे की ओर उछला। उसका सिर सैनिक की ठुड्डी से टकराया, जिस के लिए सैनिक कतई तैयार नहीं था। उस ने सम्भलने की कोशिश की। उस की जीभ दांतों के बीच कुचल कर खून से तर हो गई थी। चीख कर वह घोड़े से नीचे आ गिरा। घोड़ा हिनहिनाया। खामोशी में इन आवाजों ने सब को चौंका दिया। गिरते सैनिक ने मुकुन्द की कमर पकड़ने की कोशिश की थी जिस

से वह भी जमीन पर गिर पड़ा था और बंधा होने के कारण चुपचाप दाहिनी करवट पर पड़ा हुआ था। सैनिक ने उठ कर उसे लात मारनी चाही, लेकिन उसी समय 'ठहरो !' की आज्ञा ने उसे रोक दिया। मुकुन्द ने सिर उठा कर आज्ञा देने वाले घुड़सवार की ओर देखा, जिस का अपरिचित चेहरा चांदनी में क्रूर लग रहा था। सैनिक खून थूकने लगा।

"रस्से खोलो !" फिर से आज्ञा दी गई। मुकुन्द ने घुड़सवार को घोड़े से उतर कर करीब आते देखा।

बन्धन खुलते ही वह उछल कर खड़ा हो गया, "मैं जानना चाहता हूं—मैं किस का कैदी हूं।"

"फिलहाल तो मेरे।" अपरिचित घुड़सवार ने कहा, "मुझे शहाबुद्दीनखां कहते हैं।"

"मैं ने आप का नाम सुना है। आप बादशाह औरंगजेब के सेनापति हैं।"

"तुम ने मेरे सैनिक को क्यों···"

"इस ने मुझे गाली दी।"

"हिम्मती मालूम पड़ते हो।"

"मैं वापस जाना चाहता हूं।"

"क्या हम ने तुम्हें छोड़ देने के लिए कैद किया है ?"

"कई बार कैदी सिर्फ रिवाज निभाने के लिए बनाए जाते हैं।"

"इस बार ऐसी बात नहीं है।"

"फिर ?"

"हम कैदियों से मराठों के राज़ जानना चाहेंगे।"

"कोई नहीं बताएगा।"

"हम ऐसा नहीं सोचते।···तुम किस ओहदे पर हो ?"

"एक मामूली सैनिक···"

"नामुमकिन, जो दुश्मनों से घिरा होने पर भी वार करे, वह मामूली

निक नहीं हो सकता। तुम ने मेरे लिए हुजूर शब्द का इस्तेमाल नहीं
किया, न माफी मांगी। बताओ, किस ओहदे पर हो ?"

"यकीन करें, मैं एक मामूली सैनिक हूं।"

"मामूली सही, लेकिन हम तुम्हें नहीं छोड़ेंगे।"

मुकुन्द कैसे समझाए, वह क्यों जाना चाहता है। इस बार उस के
हाथ पीछे की बजाय आगे बांधे गए। एक घोड़े पर उसे अकेला बिठा कर
लगाम थमा दी गई।

"मैं तुम्हारे करीब से चलूंगा।" शहाबुद्दीनखां ने कहा, "भागने की
कोशिश मत करना, मेरा घोड़ा बहुत तेज है।" फिर उस ने सैनिकों की
ओर देखा और आज्ञा दी, "चलो !"

कुछ देर की चुप्पी के बाद उस ने प्रश्न किया, "तुम ने अपना ओहदा
नहीं बताया।"

"मैं बता चुका हूं। मराठों का एक भी राज़ मुझे नहीं मालूम। मैं
आप के कोई काम नहीं आऊंगा।"

"यह मैं सोचूंगा, तुम नहीं। अगर तुम्हारे जैसा दिलेर इन्सा[illegible]
मराठों के यहां वाकई मामूली सैनिक है, तो मुगलों के यहां उसे कम-[illegible]
कम सिलेदार तो बनाया ही जाएगा।"

"इस हिसाब से मराठों का हर सैनिक मुगलों का सिलेदार[illegible]
सकेगा।"

"तुम्हें गलतफहमी है, दोस्त ! देखो, मैं अभी उसे दूर करता[illegible]
शहाबुद्दीनखां ने इशारा कर के एक घुड़सवार को पास बुलाया, [illegible]
बंधे कैदी को लादे हुए था।

"कैदी ! इसे पहचानते हो ?" शहाबुद्दीनखां ने रोब से[illegible]
सैनिक ने बाल पकड़ कर कैदी का सिर मुकुन्द की ओर उठा [illegible]

"बोलो, पहचानते हो इसे ?"

उस ने 'न' में सिर हिलाया। मुकुन्द को सन्तोष हुआ। श[illegible]
ने कटार निकाली। घोड़े को एड़ दे कर वह कैदी के बिल्कु[illegible]

गया और कटार को उसके सीने पर चुभो कर पूछा, "अब बोलो, पहचानते हो ?"

मुकुन्द की आंखें सिकुड़ीं। उस ने सिर हिला कर कैदी को 'ना' कहने का इशारा करना चाहा, लेकिन उसी समय शहाबुद्दीनखां उस की ओर देखने लगा और बोला, "मेरी आंखें धोखा नहीं खा सकतीं, दोस्त ! जो सैनिक मामूली नहीं होता, उसे एक मामूली सैनिक जरूर पहचानता है। अगर यह कैदी तुम्हारे बारे में नहीं बताएगा तो मैं इसे मार डालूंगा, अगर बता देगा तो इनाम दूंगा।" उस ने कटार की नोक पर दबाव बढ़ा दिया, "बोलो, पहचानते हो या नहीं ?"

"बताता हूं, बताता हूं।" कैदी गिड़गिड़ा उठा। शहाबुद्दीनखां मुस्कराया, "यह किस ओहदे पर है ?"

"रंगमहल में महादेवी के अंगरक्षक हैं।"

"रंगमहल माने हरम, ठीक है ?"

"जी हां, हुजूर !"

"इस का नाम ?"

"मुकुन्दराव।"

"पाली क्यों आया था ?"

कैदी सहम गया, "नहीं मालूम हुजूर, मुझे नहीं मालूम। अक्सर आते रहते थे।"

"अगर हम तुम्हें आजाद कर दें तो मराठों के खिलाफ लड़ोगे ?"

कैदी तुरन्त 'हां' न कह सका। उस की आंखों में जान बचने की आशा और भविष्य के बारे में आशंकाएं भरी हुई थीं।

"लो, तुम्हारा इनाम…" शहाबुद्दीनखां ने उस की ओर एक मोती की माला बढ़ा दी। वह माला न ले सका, क्योंकि उस के हाथ बंधे हुए थे। "ओह !" शहाबुद्दीनखां ने उस की लाचारी समझी और आज्ञा दी, "इसे आजाद कर दो ! हम जानते हैं, यह बहादुर मराठा फौज में नहीं आएगा। मुगल फौज में मैं इस की तरक्की का ध्यान रखूंगा।"

हाथ खुलते ही तुरन्त कैदी ने उन्हें शहाबुद्दीनखां की ओर बढ़ा
। मुकुन्द का बस चलता तो उसी क्षण वह उन कलाइयों को काट
। लालची कलाइयां, गद्दार हथेलियां···उन हाथों ने माला को गुच
र जेब के हवाले किया। उसे एक घोड़ा दे दिया गया। वह उस पर
वार हुआ और मुगल सैनिकों के साथ चलने लगा।

"देखो दोस्त !" शहाबुद्दीनखां चुनौती जीत गया था, "सैनिक
हमेशा भूखा होता है। दुनिया का कोई बादशाह उसे उतनी तनख्वाह
नहीं दे सकता, जितनी कि उसे मिलनी चाहिए—क्योंकि वह जान का
खतरा मोल लेता है। और इसीलिए बड़ी आसानी से सैनिकों की अदला-
बदला हो सकती है।"

"आप का कहना ठीक है। जैसे आप ने हमारा सैनिक छीना, वैसे
ही हम भी आप का छीन सकते हैं।"

"बेशक ! जिसे जैसा मौका मिल जाए। सैनिक हमेशा पहले अपना
फायदा देखता है, मुल्क का बाद में।"

"हो सकता है, मामूली सैनिकों के साथ ऐसा हो।"

"और तुम मामूली सैनिक नहीं हो ! खूब !" शहाबुद्दीनखां हंसा
"और इसीलिए हम तुम्हें आजाद न करेंगे। तुम तो महादेवी के अंगरक्ष
हो। यह ओहदा भरोसे के आदमी को दिया जाता है और एक के भरो
का आदमी दूसरे के फायदे का होता है।"

"आप मुझ से एक शब्द भी नहीं उगलवा सकेंगे।"

"मैं तुम से फिर बात करूंगा। खुदा न करे, अगर तुम जिद्दी नि
तो जिंदगी भर कैद में सड़ोगे। यह तुम्हीं को तय करना है कि तुम
के लिए पैदा हुए हो या नहीं।"

और सचमुच कई महीनों से मुकुन्द कैद में पड़ा सड़ रहा थ
नहीं जानता था कि पुर्तगालियों पर सम्भाजी की विजय हुई या
कवि कलश ने गुल के साथ क्या किया या कुछ किया भी या नहीं
वह नहीं जानता था, उस की यह कैद कब खत्म होगी या खत्म

या नहीं। वह उन सींखचों को घूरता रहता और उसे बचपन में सुनी वे कहानियां याद आतीं, जिन में राजकुमारों के पास कभी-कभी इतनी ताक़त होती थी कि वे लोहे के सींखचों को बांस समझ कर तोड़ देते थे और पहरेदारों की गर्दन यों मरोड़ देते थे जैसे वह किसी लता की मुलायम शाखा हो।

शहाबुद्दीनखां ने उसे शाहज़ादा मुअज़्ज़म के सामने पेश किया था तो शाहज़ादे ने कहा था, "मुकुन्द, तुम्हारा भला इसी में है कि हमारे साथ हो जाओ क्योंकि अब मराठों का पतन हो कर रहेगा। इसे कोई नहीं रोक सकता। होशियार लोग हमेशा बलवानों के साथ रहते हैं। सम्भाजी के ख़ज़ाने कौन-कौन से क़िलों में हैं ?"

"मुझे नहीं मालूम।" उस ने छोटा-सा, साफ़ जवाब दे दिया था।

"उस ने किस-किस पर कब-कब हमला करने की सोच रखी है ?"

"आप यक़ीन करिए, मुझे कुछ भी नहीं मालूम।"

"हम तुम्हें क़ैद करते हैं।"

"जैसी आप की मरज़ी, मैं और क्या कह सकता हूं।"

शाहज़ादे ने उसे शहाबुद्दीनखां को सौंप दिया। जब वह सैनिकों के कड़े पहरे में बाहर जा रहा था तो शाहज़ादे ने कहा था, "बादशाह सलामत ने बीजापुर को जीत लिया है। अब वह गोलकुण्डा की ओर बढ़ रहे हैं। मैं परसों उन का साथ देने के लिए रवाना हो जाऊंगा। गोलकुण्डा के बाद सम्भाजी की बारी है। बादशाह सलामत ख़ास इसी के लिए दक्षिण में आए हैं।"

मुकुन्द निर्विकार रह कर सुनता रहा था।

और वह बहादुरगढ़ के क़िले की एक तंग कोठरी में डाल दिया गया था। रोज़ उसे बुरे-बुरे सपने आते कि कनक कुन को उठा ले गया है या कि गुन आत्महत्या कर चुकी है या कि वह डर से पागल हो गई है और अब वो इतनी पागल हुई है कि कभी ठीक होने की नहीं…

वह अपनी दाढ़ी की ओर देखता, जिन की लहूलिया लहरें सी

। वह अपनी रेशमी पगड़ी की ओर देखता जो महीनों से बांधी
ई थी और खूंटी से किसी मरे हुए सांप की तरह लटक रही थी ।
ने में नाई नहीं आता था । उस के बाल शत्रुओं की तरह बढ़
थे, दाढ़ी गर्दन के नीचे तक आ गई थी । कैद में उसे किसी तरह का
रीरिक कष्ट नहीं था, हालांकि उस ने सोचा था कि उसे अकसर कोड़ों
मार खानी पड़ेगी और कई-कई दिनों तक भूखा-प्यासा रहना
ड़ेगा । रोज उसे ठीक समय पर खाना मिल जाता । जितनी प्यास हो,
उतना पानी पीने के लिए वह आजाद था । पीने से पहले वह उस में
अपना चेहरा देखा करता और सोचता कि क्या यह उसी का चेहरा है
—इतना कुरूप ?

नहाने के लिए रोज उसे दो बाल्टियां पानी दिया जाता था । कोठरी
में ही उसे नहाना पड़ता, जिस के गीले फर्श को वह नफरत से देखता
रहता । सींखचों की दूसरी ओर पहरेदारों की पारियां बदलती रहतीं ।
वे दाएं से बाएं, बाएं से दाएं खट-खट चलते रहते जैसे उनमें कलें
लगी हुई हों । वे मुकुन्द से तो दूर, आपस में भी शायद ही कभी बातें
करते । उन्हें लगातार इस कदर चुप देख कर कोई भी शक कर सकता
था कि वे गूंगे हैं । वे बहुत कम हंसते थे और कभी-कभी उन की आंखें
ऐसी लगती थीं, मानो कांच की बनी हों ।

मुकुन्द सोचता रहता, वह कैसे यहां से छुटकारा पाए, कैसे अपनी
गुल तक पहुंचे, अपनी मीठी गुल तक, जिस का पता नहीं क्या हुआ
था ।

शहाबुद्दीनखां अकसर बहादुरगढ़ आया करता, हालांकि रोज-
के छोटे-बड़े युद्धों के कारण उसे बहुत व्यस्त रहना पड़ता था । जब
वह बहादुरगढ़ आता, मुकुन्द से जरूर मिलता । उस की आंखें दोस्
आंखें थीं, लेकिन जब भी मुकुन्द पूछता कि सम्भाजी कहां है या गोल
की हार हुई या नहीं या मराठों पर हमला कब हो रहा है—
दोस्ताना आंखें व्यापारी हो जातीं और मुकुन्द को जवाब मिलत

नही मालूम···आप यकीन करिए··· मुझे कुछ भी नहीं मालूम···ठीक वे ही शब्द, जो उस ने शाहजादा मुअज्जम के सामने उस दिन कहे थे।

मुकुन्द लाचारी से मुस्कराता—ऐसी मुस्कराहट, जो उस की नहीं थी, और कहता, "आप कब तक छिपाएंगे। मुझे किसी-न-किसी दिन बाहर जरूर निकलना है। और तब जो बातें थोड़े-थोड़े दिनों की आड़ में आप को मालूम नहीं होती हैं, मैं उन्हें एक साथ जान जाऊंगा।"

"तुम तभी बाहर निकलोगे, जब खजानों का पता बतलाओगे।"

"सचाई यह है कि मराठों का खजाना कभी यहां रहता है, कभी वहां। मैं कैसे बता सकता हूं कि इस समय वह कहां है?"

शहाबुद्दीनखां हो-हो कर हंस पड़ता, "बातें बनाने में तुम्हारा जवाब नहीं। खजाने बार-बार हटाए नहीं जाते मियां, क्या मुल्क में लुटेरों की कमी नहीं है।"

और उस दिन जब शहाबुद्दीनखां उस तंग कोठरी में आया तो वह अकेला नहीं था। उस के साथ एक चौड़े सीने वाला आदमी खड़ा था।

मुकुन्द उठ खड़ा हुआ। शहाबुद्दीनखां ने उस से पूछा, "इन्हें पहचानते हो?"

"नहीं।"

"कभी यह बीजापुर के सेनापति थे और अब हिन्दुस्तान के ताकतवर बादशाह के ताकतवर सेनापति हैं।" वाक्य के 'थे' और 'हैं' पर जोर देते हुए शहाबुद्दीनखां ने कहा, "इन का शर्जाखां नाम चारों ओर रौशन हो रहा है।"

न शर्जाखां मुस्कराया, न मुकुन्द।

खामोशी खत्म करने के लिए मुकुन्द ने पूछा, "गोलकुण्डा पर हमला किया गया या न?"

"हां, अब वह मुगल सल्तनत में शामिल है।"

"कब से?"

"मुझे नही मालूम। आप यकीन करिए, मुझे कुछ भी नहीं मालूम।'

शहाबुद्दीनखां की हंसी तंग दीवारों में भर उठी। शर्जाखां ने उस ओर देखा, फिर वह अचानक हंस पड़ा—बहुत जोर से।

"जानते हो, हम क्यों हंस रहे हैं?"

मुकुन्द जवाब दिए बिना नीचे बैठ गया।

"इसलिए हंस रहे हैं कि हमें वह मालूम हो गया है, जो तुम्हें नहीं मालूम। कहो तो बता दें।"

"शौक से बताएं, मुझे कोई एतराज नहीं है।"

"तुम्हारे इस जवाब पर हमें एतराज है।"

"अपनी मरजी के मालिक आप हैं।"

"हम तुम से बार-बार खजानों का पता पूछते रहे लेकिन अब जरूरत नहीं है। सम्भा के पास खजाना है ही नहीं।"

मुकुन्द ने चौंक कर उस की ओर देखा।

"उस के सैनिकों को तनख्वाह नहीं मिली है और वे हमारी फौजों में शामिल हो रहे हैं। जो शामिल नहीं हुए हैं, वे हमारे जासूस हैं, हम से बाकायदा नजराना पाते हैं।"

कुछ रुक कर उस ने कहा, "शाहजादा मुअज्जम तुम्हें जिन्दा रखने की जिद किए हुए हैं, वरना अब तक तो तुम्हें..." वाक्य अधूरा छोड़ कर उस ने अपनी गर्दन पर उंगली फेरी और जीभ को तालू से रगड़ क चिच्च की आवाज की।

शर्जाखां चुप था, जैसे मुकुन्द को केवल अपना चेहरा दिखाने लिए ही आया हो। शहाबुद्दीनखां कह रहा था, "एक बेकार आदमी लिए पूरी एक कोठरी खराब करना और कई पहरेदार भी तैनात क मेरी निगाह में तो बेवकूफी ही है।"

"मैं ने पहले ही कहा था कि मुझे छोड़ दें।"

"नहीं, क्योंकि जब तुम ने कहा था, तब सम्भा का खजान नहीं था। तुम उस समय बता देते तो वह हमारे हाथ लग तुम्हारी किस्मत चमक जाती। खैर..." उस ने शर्जाखां की अ

"आओ, चलें !"

दोनों कोठरी से बाहर निकलने लगे।

"रुकिए···" मुकुन्द उठा। वह कई बातें पूछना चाहता था, हालांकि वह नहीं जानता था कि जवाब मिलेंगे या नहीं।

वे न रुके और बाहर निकल गए। झटके के साथ कोठरी का दरवाजा बन्द हुआ।

'गोलकुण्डा हार गया है···बीजापुर पहले ही हथियार डाल चुका है···मराठी की मशाल अब केवल एक ने जला रखी है···सम्भाजी ने···सर्जाखां, शहाबुद्दीनखां, शाहजादा मुअज्जम और खुद बादशाह औरंगजेब—चारों दिशाओं से जब ये आंधियां फूंकेंगे तो मशाल कब तक जलती रह सकेगी ?'

रात-भर मुकुन्द जागता रहा, तड़पता रहा। आज पहली बार उसे गुरु की याद इतनी कम आई और वह और बातों के बारे में भी इतना सोचता रहा। उसे शहाबुद्दीनखां के शब्द याद आए···शाहजादा मुअज्जम तुम्हें जिंदा रखने की जिद किए हुए हैं, वरना अब तक तो तुम्हें···

कैद में उसे रोज खाना कैसे मिल गया, पानी कैसे मिल गया और कोड़ों की जलती सनसनाहट उसे क्यों न भोगनी पड़ी, इस के पीछे शाहजादा मुअज्जम की कृपा थी—वह समझ गया, लेकिन यह कृपा क्यों थी, उसे नहीं मालूम था। कैद में पड़ने के बाद उस की शाहजादे से मुलाकात नहीं हुई थी, न वह जानता था कि इस समय वह कहां है, क्या कर रहा है।

'उस ने मेरे साथ रियायत क्यों की ? क्यों वह चाहता है कि मेरा गला न उतरे ?'

कुछ दिनों बाद मुकुन्द को एक बहुत महत्वपूर्ण बात याद आई। महादेवी येसूबाई ने पुत्र या पुत्री को जन्म दे दिया होगा।

पुत्र या पुत्री ?

और फिर से उसे गुरु की याद कुरेद गई।

११

और उस दिन स्वयं शाहजादा मुअज्जम ने मुकुन्द की कोठर
श किया। वह अकेला था। मुकुन्द उठ खड़ा हुआ और अभिवाद
क कर बोला, "जनाब कब तशरीफ लाए ?"

"अभी-अभी। कैसे हो ?"

"आप की दुआ है।"

"दाढ़ी में पहचाने नहीं जाते।"

मुकुन्द हंस कर रह गया। जी तो बहुत हुआ कि कह दे, 'कई बार दाढ़ी न बढ़ी हो, तो भी लोग पहचान में नहीं आते।' लेकिन उस ने अपने को रोका। शाहजादे पर यह ताना शायद ज्यादा तीखा हो जाता। वह कभी सम्भाजी का मित्र रहा था, आज उसी का दुश्मन बना हुआ था।

मुकुन्द को कैद में पड़े लगभग सात साल हो रहे थे। इस दौरान शाहजादा मुअज्जम आज पहली बार उस से मिलने आया था। उस का चेहरा लगभग वैसा ही था, जैसा कि मुकुन्द ने सात साल पहले देखा था। समय के इतने मोटे परदे के बावजूद उन दोनों में इस तरह बातें हो रही थीं, जैसे वे अक्सर मिलते रहे हों।

"बड़ा खेद है कि आप को बिठाने के लिए यहां सिवा घास की दरी के और कुछ नहीं।"

शाहजादे ने बैठने की जरूरत न समझी।

"तुम्हारी कोठरी की दीवारों के बाहर क्या-क्या हो रहा है, कु
जानते हो ?"

"बहुत कम। जब भी मैं ने पूछा, बताया नहीं गया। फिर
पूछना ही छोड़ दिया।"

"क्या-क्या जानते हो ?"

"यह कि बीजापुर और गोलकुण्डा पर अब बादशाह-ए-आल

हुकूमत है।"

"ग्रौर ?"

"ग्रौर कुछ नहीं।" मुकुन्द ने कहा, "शायद ग्राप का ही हुक्म था कि मुझे कुछ न बताया जाए।"

"नहीं। यह शहाबुद्दीनखां ने ग्रपनी ग्रोर से किया है। मैं ने उस से सिर्फ इतना कहा था कि तुम्हें किसी तरह की तकलीफ न दी जाए।"

"इस के लिए मैं ग्रपने को खुशकिस्मत समझता हूं ग्रौर ग्राप का बहुत-बहुत शुक्रगुजार हूं, लेकिन ग्राप या तो मुझे छोड़ देते या मार डालते।"

"क्यों ?"

"क्योंकि सात साल के लम्बे ग्ररसे में···"

वाक्य ग्रधूरा छूट गया। "···मेरी गुल का न जाने क्या हुग्रा होगा।' ग्रागे का यह ग्रंश उस ने गले में ही घोंट दिया। गुल···वह कभी शाहजादे की रखैल रह चुकी है···उस के सामने उस का नाम कैसे लिया जाए ?···

"हां, सात साल के लम्बे ग्ररसे में बहुत-कुछ हो गया है। क्या सच-मुच तुम्हें नहीं मालूम कि···" शाहजादा रुका। मुकुन्द सावधान हुग्रा। न जाने शाहजादा क्या कहने जा रहा था।

"कि···सम्भाजी के गिरफ्तार होने में ग्रब देर नहीं है ?"

"जी ?"

"हां मुकुन्द, उस की ग्राजादी ग्राखिरी सांसें गिन रही है।"

मुकुन्द ने होंठ भींचे, "शहाबुद्दीनखां ने मुझे कुछ नहीं बताया।"

"बता देता तो भी तुम क्या कर सकते थे।"

मुकुन्द खामोश रहा। नहीं ! यह नहीं होना चाहिए···मराठा मशाल नहीं बुझनी चाहिए···मुकुन्द का मन विद्रोह कर उठा।

"क्या सोचने लगे ?" शाहजादे के प्रश्न ने उसे चौंकाया।

"कुछ नहीं।"

"आज मैं बताने आया हूं कि तुम्हें जिंदा क्यों रखा गया है।"

मुकुन्द की त्यौरियों पर जरा बल पड़े।

"देखो मुकुन्द, यह बिल्कुल तय है कि सम्भाजी जल्द ही गिरफ्तार [illegible]गा।"

"आप इस बात को न दुहराएं तो अच्छा।"

"मैं जानता हूं, तुम्हें इस से दुख हो रहा है लेकिन सच्चाई से कब तक दूर भागोगे ?"

"आप क्यों समझते हैं कि छत्रपति अवश्य गिरफ्तार होंगे ? हो सकता है, वह लड़ाई के मैदान में ही जान दे दें।"

"कई बार मैदान में जान देने का भी मौका नहीं मिलता। फिर भी अगर ऐसा हुआ, तो...लेकिन मान लो, ऐसा न हुआ। मैं ने अब्बाजान को राजी कर लिया है कि अगर सम्भाजी जीवित पकड़ा जाए तो उसे जान से न मारा जाए, बल्कि मुगल सल्तनत में मराठों का सूबेदार बना दिया जाए।"

मुकुन्द चुपचाप सुनता रहा।

"मैं, शर्जाखां और शहाबुद्दीनखां—ये तीन शख्स हैं जो सम्भाजी इस मसले पर बातचीत कर सकते हैं, लेकिन जैसा कि तुम जानते हमें देखते ही सम्भाजी की आंखें लाल हो जाएंगी। वह हमारी [illegible] सुनेगा। सम्भाजी तुम पर बहुत विश्वास करता है, ऐसा मुझे [illegible] है। तुम्हें इसी लिए जिंदा रखा गया है कि तुम उसे समझौते [illegible] तैयार करो।"

"खूब ! आप ने सात साल पहले से छत्रपति की गिरफ्तारी [illegible] में सोच रखा था !"

"बेशक ! आगे की सोचने वाला ही इतनी बड़ी [illegible] सकता है।"

"अगर मैं उन से बातचीत न करूं, तो ?"

"तो मैं कोशिश करूंगा, हालांकि कामयाबी की उ[illegible]

है। यदि कामयाबी न मिली, तो क्या होगा, जानते हो ?"

"क्या ?"

"अब्बाजान की शर्त है, या तो सम्भाजी सूबेदार बने या उस की हत्या कर दी जाए।"

मुकुन्द खिलखिला पड़ा, "आप तो यों बातें कर रहे हैं, मानो छत्रपति सचमुच गिरफ्तार हो चुके हों !"

"हां, उन्हें अब गिरफ्तार हो समझो।"

"केवल आप के कहने से ?"

"नहीं, हालात के कहने से। सम्भाजी ने अपनी सौतेली मां की हत्या करवाई थी। वह शिरके खानदान की थी। इस खानदान के लोगों ने बगावत कर दी। शायर कलश ने उन से युद्ध किया, लेकिन वह हार गया। उन्होंने शायर का पीछा पकड़ा। सुन रहे हो न ?"

"हां।"

"शायर विशालगढ़ भाग गया। सम्भाजी उसे बचाने के लिए विशालगढ़ पहुंचा। अब दोनों वहां से संगमेश्वर चले गए हैं।"

"संगमेश्वर ?"

"क्यों ? चौंक कैसे गए ?"

"संगमेश्वर में कोई सैनिक चौकी नहीं है, कोई किला नहीं है [illegible] से चौंका।" मुकुन्द असली कारण छिपा गया।

"हमें अपने जासूसों से सारे समाचार मिलते रहते हैं [illegible] सम्भाजी और शायर के पास मुट्ठी-भर सैनिक हैं। [illegible] हो चुका है। भूखों मरते सैनिक मुगल फौजों ने [illegible] सम्भाजी और शायर दोनों चिड़चिड़े हो गए हैं। [illegible] संगमेश्वर में रुकने की बेवकूफी क्यों की है, [illegible] नहीं चूकना चाहते। देख लेना, जल्द ही [illegible] सम्भाजी गिरफ्तार हो गए। उन के [illegible] है। यों समझो कि उन की जान तुम्हीं [illegible]

मुकुन्द ने दोनों हाथों की उंगलियां आपस में उलझाईं, "आप क्यों चाहते हैं कि छत्रपति सम्भाजी जिंदा बच जाएं ?"

"मैं किसी समय उस का दोस्त था।"

"आप बहुत नेकदिल हैं, लेकिन खता माफ करें तो एक बात कहूं ?"

"शौक से।"

"आप खामख्वाह परेशान मत होइए। आप ने मुझे बेकार ही जिंदा रखा है। छत्रपति सम्भाजी गिरफ्तार नहीं होंगे।"

"तुम ऐसा कह तो रहे हो, लेकिन आवाज में उतना दम नहीं है, जितना चाहिए।" कहता हुआ मुअज्जम हंसा।

"आप बहादुरगढ़ कब तक ठहरे हुए हैं ?" मुकुन्द ने तुरन्त विषय बदल दिया।

"बस, मुझे संगमेश्वर के समाचारों का इंतजार है। उस के बाद मैं अब्बाजान के हुक्म के मुताबिक फौज ले कर कहीं चल पड़ूंगा।"

"बादशाह सलामत कहां हैं ?"

"अकलुज में। कुछ दिनों बाद यहां आने वाले हैं। मिलना चाहते हो ?"

"नहीं।" मुकुन्द ने कहा। वह रुका और सोचने लगा कि कैसे पूछे। फिर उस ने पूछ लिया, "रायगढ़ में महादेवी येसूबाई की गोद···"

"ओह ! तुम्हें सचमुच कुछ नहीं मालूम। येसूबाई का बेटा सात साल का हो चुका है। उस का नाम शाहू है।"

"वे दोनों रायगढ़ में ही हैं ?"

"कभी वहां रहते हैं, कभी पन्हाला आ जाते हैं। एक बात और। तुम ने अभी कहा था कि मैं ने तुम्हें बेकार जिंदा रखा। ऐसा नहीं है। मान लो, सम्भाजी तुम्हारी भी बात नहीं मानता। तब उसे मार दिया जाएगा और मराठों का सूबेदार तुम्हें बना दिया जाएगा।"

"मुझे ?"

"हां, तुम्हें। क्यों ?"

ट पार हुआ और पीछे छूटने लगा ।

ख निजाम, जो कोल्हापुर से आया था, बादशाह की अधीनता
ारने से पहले गोलकुण्डा की नौकरी में था । वह जिस हाथी पर
हुआ था, शर्जाखां भी उसी पर था । इन दोनों में से कोई भी व्यक्ति
ूनी नहीं था । शहाबुद्दीनखां अपने दूसरे ही हाथी के हौदे में लापर-
ही के साथ अधलेटा पड़ा था । पूरी टुकड़ी गहरी निश्चितता और
श्वास के साथ आगे बढ़ रही थी ।

“सम्भाजी के पास तीन सौ सैनिक मुश्किल से होंगे ।” शेख निजाम
ने कहा । शर्जाखां ने कोई उत्तर न दिया । इस का शेख निजाम को बुरा
भी न लगा, क्योंकि उस ने उत्तर पाने की आशा नहीं रखी थी ।

टुकड़ी के आगे-आगे काफी ज्यादा फासले पर तीन घुड़सवार अगल-
बगल चल रहे थे । सुबह होने को थी, रात अपना मुंह ढंक कर विदा
लेने की तैयारियां कर रही थी । खून से सना सूरज का चेहरा जब
क्षितिज के ऊपर आया तो सामने संगमेश्वर उभर रहा था ।

आगे-आगे चल रहे उन तीन घुड़सवारों ने ज्यों ही पगडण्डी का मोड़
पार किया, वे ठिठक गए । तुरन्त उन्होंने घोड़ों को पीछे कर के एक
झाड़ी की ओट ले ली ।

मोड़ के उस ओर एक सैनिक पड़ाव के कुछ तम्बू दिखाई पड़े थे ।
एक घुड़सवार फुसफुसाया, “यह सम्भाजी का ही पड़ाव होना चाहिए ।”
तीनों तेजी से वापस लौटे ।

“क्या बात है ?” शेख निजाम अपने हौदे से बाहर झुका ।

“सामने एक सैनिक पड़ाव दिखाई पड़ा है ।” घुड़सवार ने
दिया ।

इस टुकड़ी को अब तीन टुकड़ियों में बांट दिया गया । हरेक
एक-एक हाथी था । शर्जाखां का हाथी दाहिनी ओर गया, शहा
का बाईं ओर । शेख निजाम अपने हाथी और टुकड़ी के साथ
वहीं खड़ा रहा । उस ने अंदाजा लगाया कि अब दाएं-बाएं क

काफी दूर तक फैल गई होंगी। "बढ़ो!" उस ने हुक्म दिया। महावत ने हाथी की गर्दन पर पांव रगड़े और अंकुश की हल्की चुभन से इशारा किया। हाथी की सूंड का छोर बेचैनी से हिला। वह अपनी छोटी आंखों के साथ आगे बढ़ चला। पीछे-पीछे घुड़सवार।

पगडण्डी का छोर पार हुआ और शेख निजाम की दृष्टि में पड़ाव आ गया। कई तम्बुओं के बीच के एक तम्बू पर मराठा झण्डा फहरा रहा था। शेख ने हाथी की गति बढ़वा दी। पीछे के घुड़सवार तलवार खींच कर हुंकार उठे। शेख ने दाहिनी ओर से शर्जाखां के हाथी को भी झपटते देखा। हाथी के सिर पर बिछी लोहे की जाली कच्ची धूप में चमक रही थी। शेख ने बाई ओर नजर दौड़ाई, तो शहाबुद्दीनखां की टुकड़ी भी झपटती चली आ रही थी। 'अल्ला-हो-अकबर!' के नारे इस टुकड़ी से उस टुकड़ी तक उछाले गए। हाथियों ने चिंघाड़ना शुरू कर दिया था। उन्होंने अपनी सूंडें मोड़ कर मुंह में डाल ली थी।

पड़ाव में तहलका मच गया। बावरे मराठा सैनिकों ने किसी तरह अपने हथियार तो सम्भाले, लेकिन अभी वे तम्बुओं से बाहर भी न निकल पाए थे कि तम्बू ढह गए। घुड़सवारों ने तलवार चला कर रस्सों को काट दिया था। तम्बुओं के नीचे चीख रहे मराठों की आवाजें घुटने लगीं। वे उठ-उठ कर एक-दूसरे पर गिर रहे थे और उन के नंगे हथियार उन्हीं के जिस्मों पर खरोंचें पैदा कर रहे थे। ढहे तम्बू से बाहर आने के लिए वे पिल्लों की तरह इधर-उधर रेंग रहे थे, हालांकि एक डर यह भी था कि बाहर निकलते ही वे शत्रु के सामने खुले में आ जाएंगे और तुरन्त उन के सिर धड़ से अलग कर दिए जाएंगे। हिनहिनाहटों और चिंघाड़ों ने उन पर मौत का सम्मोहन डाल दिया था।

मुगलों ने बन्दूकें होते हुए भी चलाई नहीं थीं, क्योंकि वे सम्भाजी को मारने नहीं, पकड़ने आए थे। गोलियां चलाने पर हो सकता था, कोई गोली सम्भाजी की छाती भेद देती। मौका पड़ने पर काम आ सकें, बन्दूकें साथ केवल इसी लिए रखी गई थीं।

१४

शाहजादा मुअज्जम के बहादुरगढ़ आने के बाद मुकुन्द को उस तंग
ठरी में से निकाल कर एक बड़ी और सुविधाजनक कोठरी में रखा
ा था, जिस में कपड़ों आदि के लिए एक आला था और दो छोटी
खिड़कियां भी थीं। यहां वह कैद कम और नजरबंद अधिक था। सुबह
की धूप उन खिड़कियों से भीतर और फर्श पर दो चौकोर आकार बना
देती। उन आकारों से खिड़कियों तक धूप के दो तिरछे खम्भे खड़े हो
जाते, जिन की सीमा में आने वाला धूल का हर कण चमकता रहता।
कई बार वे कण इतने ज्यादा होते कि लगता, उन चमकदार खम्भों में
धुंध-सी भर गई है।

शाहजादा मुअज्जम अक्सर मुकुन्द से मिलने आता। वह एक दोस्त
की तरह आता, दोस्त की तरह बातें करता और जाते समय उसी तरह
मुस्कराता भी।

उस दिन वह भीतर आया तो बहुत गम्भीर था। आते ही उस ने
कहा, "मुकुन्द, फ़र्ज़ अदा करने के लिए तैयार हो जाओ।"

मुकुन्द उठा। वाक्य में क्या इशारा था, वह समझ गया। मन-ही
मन वह कांप गया, हालांकि इस समाचार के लिए वह पिछले कई दि
से अपने को तैयार कर रहा था। साफ़-सुथरे कमरे में भी उसे लगा
मकड़ी के कई जाले लटक आए हैं।

बहुत देर तक दोनों चुप खड़े रहे। मुकुन्द समझ न पाय
शाहजादा इस वक्त खुश है या नाखुश।

"बादशाह सलामत अकलुज से बहादुरगढ़ के लिए जल्द ही
होंगे।" कहते समय मुअज्जम ने अपनी कमर में बंधे रेशमी
हाथ के दोनों अंगूठे खोंस लिए। मुकुन्द फिर भी चुप रहा तो
कहा, "संगमेश्वर में बहुत छोटी मुठभेड़ हुई। फिर शेख

सम्भाजी को अपने हाथी पर बिठा लिया…"

"कवि कलश ?"

"उसे सर्जाखां ने बिठाया। दोनों को यहां कड़े पहरे में अलग-अलग रखा गया है। चलो मुकुन्द, खुदा के लिए उन में समझौता करवा दो, वरना उन्हें कत्ल…"

"आप उन से मिल चुके ?"

"नहीं।" मुअज्जम ने कहा, "मैं उन्हें कैदियों के रूप में न देख सकूंगा। उन्हें तो यह भी मालूम नहीं है कि मैं यहां हूं। तुम भी मत बताना!" वह रुका, फिर बोला, "जाने से पहले शायद तुम अपनी दाढ़ी…नाई भिजवाऊं ?"

"मुझे इस से मुहब्बत हो गई है। इस ने इतने सालों तक दोस्ती निभाई है। इसे ज़रा नजीब से छंटवाना चाहूंगा, बस।"

मुअज्जम बाहर चला गया। मुकुन्द एक गर्म और गहरी सांस ले कर दीवार के सहारे खड़ा हो गया। आज उस का मन शून्य था, मस्तिष्क शून्य, शरीर की एक-एक रग शून्य। उस दिन जब वह गुल के भुतहे मकान में घुसा था और जब उस बूढ़े ने बताया था कि गुल का अपहरण हो गया है, तो जैसी निराशा और जैसा कुंठित क्रोध उस के मन में घिरा था, आज उस की दशा वैसी ही थी।

तो बुझ गई मराठों की मशाल!…सर्जाखां, शहाबुद्दीनखां, शाहजादा मुअज्जम, खुद बादशाह औरंगजेब और गोलकुण्डा का नया सेनापति शेख निजाम—ये पांच आंधियां थीं जो चार दिशाओं से और आकाश से फूत्कार कर उठीं और मशाल थी सिर्फ एक, जिस का तेल पहले से ही चुकने लगा था।

गुल…कहां है वह ?

'कमरा! वह गुल के बारे में अवश्य जानता होगा…हो सकता है, उस ने उसे…नहीं! उस ने कुछ नहीं किया होगा उसे…' मुकुन्द ने अपने को तसल्ली देनी चाही। हमेशा भविष्य परदे की आड़ में हुआ

करता है, लेकिन यहां भूतकाल परदे के पीछे छिपा हुआ था। कुछ परदे शाहज़ादा मुअज्जम ने उठाए थे, लेकिन अभी कई परदे बाकी थे···

नाई उस की दाढ़ी और सिर के बाल तरतीबवार कर के जा चुका था। अब वह हमाम की ओर कदम बढ़ा रहा था। पहले की तरह अब उसे अपनी कोठरी में ही नहीं नहाना पड़ता था। कई गलियारे पार कर के जब वह हमाम में आया, तो गर्म पानी तैयार रखा था।

नहाते समय लगा, पानी उसे छू ही नहीं रहा है।

करीब एक घण्टे बाद वह उन दो बदनसीब कोठरियों की ओर बढ़ रहा था। वह साफ-सुथरी पोशाक में था और उस के डग लम्बे थे। पीछे-पीछे दो अंगरक्षक नंगी तलवारों के साथ चल रहे थे। मुकुन्द के अत्यन्त उदास मन का एक कोना आज कुछ उल्लसित भी था और इस के लिए वह अपने को अपराधी ही अनुभव कर रहा था। 'क्या मेरे मन में चोर नहीं है कि मैं गुल का पता लगा सकूंगा ? तभी तो मैं पहले कलश से मिलने जा रहा हूं···' वह सोच रहा था, लेकिन झुंझला नहीं रहा था। मन की कमजोरी उस ने दिलेरी के साथ स्वीकार कर ली थी।

पहरेदारों ने दरवाजे खोले। उस ने भीतर कदम रखा। उस की पीठ के पीछे दरवाजे बन्द होने की आवाजें होती रहीं। सामने की दीवार के पास बिछी एक पतली दरी पर कवि कलश कैदियों की पोशाक में चित लेटा था। उस ने आंखें खोल कर देखा तक नहीं, मानो दरवाजा खुलने, बन्द होने और किसी के भीतर आने की उसे परवाह ही न हो। मुकुन्द को एकाएक न सूझा कि कवि कलश को किस सम्बोधन से पुकारे। अन्त में उस ने कहा, "गुरुदेव !"

कलश ने आंखें खोलीं। वह मुकुन्द की ओर की करवट पर हो गया। दाढ़ी के कारण मुकुन्द का चेहरा वह तुरन्त न पहचान सका। मुकुन्द एक डग आगे आया और बोला, "मैं···मुकुन्द···"

"अरे ! यहां !" कलश उठ बैठा।

"जी !" मुकुन्द उस के पास जा कर दरी पर बैठता हुआ बोला,

"स्वस्थ तो हैं ?"

"अस्वस्थ। मैं घोर अस्वस्थ हूं। मैं, छंदोगामात्य, कई पुस्तकों का रचयिता, संस्कृत का नामी विद्वान, महामंत्री, छत्रपति का गुरु—मैं··· मैं···अब कैदी हूं।"

"आप की विनोदप्रियता ने इस परिस्थिति में भी साथ नहीं छोड़ा।" मुकुन्द जरा हंसा।

"इसे विनोदप्रियता कहते हो ?"

"गुरुदेव, मैं आप से बहुत आवश्यक बातें करने आया हूं।"

"पहले मैं सब का गुरु था, अब किसी का नहीं हूं। क्या तुम मुगलों से मिल गए हो ?"

"नहीं।" मुकुन्द ने अत्यन्त संक्षेप से बहादुरगढ़ पहुंचने की बात सुना दी।

कलश की बुझी आंखें और व्यंग्य से तने होंठ उस के भीतर मचे तूफान को प्रकट कर रहे थे। "मैं तुम्हारी क्या सहायता कर सकता हूं ?" उस ने पूछा।

"महादेवी कहां हैं ?"

"महादेवी अब कहीं नहीं हैं। सम्भाजी की सुशीला श्रीमती येसूबाई रायगढ़ में हैं। उन का बेटा शाहू भी वहीं है।"

"और राजाराम ?"

"वह भी रायगढ़ में है। वह १६ साल का हो चुका लेकिन बुद्धि नाम की कोई चीज उस में नहीं।"

"और ··और गुन ?"

"क्या तुम मुझ से अपने परिचितों का अता-पता ही पूछने आए हो ?" कलश के कपाल पर रेखाएं बनीं, "मैं सोचता हूं, ये बातें 'आवश्यक' की श्रेणी में नहीं आतीं।"

"क्षमा करें गुरुदेव, गुन मेरी पत्नी है, परिचिता नहीं। उत्सुकता न दब सकी।··· वह कहां है ? रायगढ़ में ?"

"मुझे नहीं मालूम ।"

मुकुन्द ने उस की ओर गूढ़ दृष्टि से देखा, "आप को नहीं मालूम ?"

"किसी अंगरक्षक की पत्नी मेरे लिए इतना महत्त्व नहीं रखती कि मैं उस के बारे में हर तरह की सूचनाएं बटोरता रहूं ।"

मुकुन्द के भीतर क्रोध की ज्वाला भभक उठी, लेकिन वह विनम्रता से बोला, "लगता है, आप इस समय अस्वस्थ हैं । चाहें तो मैं फिर आऊं ?"

"तुम जब भी आओगे, मैं अस्वस्थ मिलूंगा । इस के अलावा, अभी मैं स्वयं अपने मुंह से कह चुका हूं कि मैं घोर अस्वस्थ हूं । मेरे कथन पर अविश्वास करना मेरा अपमान है ।" कलश उत्तेजित हो गया ।

"आप ने मुझे गलत समझा, मान्यवर !" मुकुन्द के स्वर में इस बार उतनी विनम्रता न आ सकी ।

"गलत या सही, लेकिन तुम्हें जो बात करनी है, आज कर लो और इसी समय कर लो ।"

"मैं गुल के बारे में पूछ रहा था ।"

"कौन गुल ?"

बहुत रोकने पर भी मुकुन्द का चेहरा तमतमा आया, "गुरुदेव, य उपहास का समय नहीं है ।"

"मैं उपहास तो नहीं कर रहा ?"

"आप विद्वान हैं, कवि हैं, कल्पना के धनी हैं । यदि सात वर्षो आप को अपनी प्रियतमा से दूर रखा जाए..."

"प्रियतमा नाम का कोई जन्तु इस जगत में नहीं है । यहां दुर्मुखी हैं । समझे ?"

"जी ?"

"दुर्मुखी ! दुर्मुखी ! तुम्हारी खोपड़ी में यह नहीं घुसेगा ।"

"गुल कहां है ?"

"मैं किसी गुल को नहीं पहचानता ।"

आवेग में मुकुन्द उठ खड़ा हुआ। कलश उस के पैरों के पास अधलेटा पड़ा था। मुकुन्द ने उसे दरी में से एक रेशा तोड़ कर मुंह में डालते देखा। क्रोध से मुकुन्द के कान के लवे गर्म हो उठे थे। उसे डर लगा कि यदि वह कलश के करीब खड़ा रहा, तो कहीं लात न मार बैठे। वह दूर हट गया और चहलकदमी करने लगा। कलश ने जो विचित्र जवाब दिए थे, उन से मुकुन्द का मन आशंकाओं के चिपचिपे दलदल में जा फंसा था···"मैं किसी गुल को नहीं पहचानता! कौन गुल?' · क्या अर्थ था इस का? गुल के बारे में पूछने ही कलश इतना कुंठित कैसे हो गया? गुल सुरक्षित तो है?

"आश्चर्य, तुम ने अभी तक कोई महत्वपूर्ण बात नहीं पूछी। आए क्यों हो मेरे पास?"

मुकुन्द ने भांप लिया कि कलश उसे छेड़ना चाहता है। ऐसी क्रूरता उसे अच्छी न लगी, "गुरुदेव, मैं ने अपना सब से महत्वपूर्ण और व्यक्तिगत प्रश्न आप से पूछा है।"

"कौन-सा प्रश्न?"

"आप सब समझते हैं। दुहराना अनावश्यक है।"

"गुल के बारे में?"

"हां। वह कहां है?"

"मुझे नहीं मालूम। मैं उसे नहीं पहचानता।"

"गुरुदेव!"

"यों कहो कि पहचानता हूं और कहां है, यह भी जानता हूं, लेकिन बता नहीं रहा।"

"हां, यही, और इस का कारण मेरी समझ में नहीं आता।"

"कारण बहुत सीधा है। मैं नहीं बताऊंगा।"

"क्यों?"

"इसलिए कि नहीं बताऊंगा।"

"यह कोई कारण नहीं है।"

...कारण है।"

...च लीजिए !"

...नावश्यक समझता हूं।"

...कुन्द ने पहरेदारों से अपने लिए दरवाजा खोलने के लिए कहा।

...ह कर्कशता से बोला, "गुरुदेव, मैं आप का स्वागत कोड़ों से करूंगा।"

कलश निर्विकार रहा। मुकुन्द बाहर निकल गया। उत्तेजित ...दशा में वह सम्भाजी के पास नहीं जाना चाहता था। उस ने ...अज्जम के कमरे की ओर कदम बढ़ाए। मुअज्जम ने उसे देखते ही ...कहा, "बड़ी जल्दी लौटे ?"

"अभी अकेले कलश से मिला हूं। ऐसे जवाब देता है, जिन का कोई मतलब नहीं निकलता। खामख्वाह उलझ जाता है।"

"पहले सम्भाजी से मिलना था। कलश को मैं ने शुरू से ही बहकने वाला इन्सान पाया है।"

"हां, पहले उस से नहीं मिलना था। खैर, थोड़ी देर में छत्रपति से ...मिलूंगा ही।" वह पास खड़ी दासी की ओर मुड़ा, "पानी मिला सकती हो ?"

ज्यों ही मुकुन्द ने कोठरी में प्रवेश किया, सम्भाजी ने चौंक कर पूछा, "मुकुन्द !"

"जी !"

"यहां कैसे ?"

"पाली के छापे में पकड़ कर लाया गया, अब तक यहीं कैद रह...

"शायद मुसलमान हो गए हो।"

"दाढ़ी से ऐसा लगा ? नहीं, हिन्दू हूं।"

"क्यों आए ?"

"मैं···मैं आप से···"

"बैठो !" सम्भाजी ने पैर सिकोड़ कर उस के लिए दरी ...

बनाई। मुकुन्द बैठा। बात करने का वही चिर-परिचित लहजा, वही धधकती आंखें, वैसा ही गोरा चेहरा। सम्भाजी की ओर वह देखता ही रह गया।

"कैद से कब छूटे?"

"कुछ ही दिनों पहले।"

"क्यों?"

मुकुन्द एकाएक सकपका गया। अकस्मात् कैसे कहे कि वह समझौता करवाने के लिए मुक्त हुआ है।

"कैसे हो?" उस से दूसरा प्रश्न किया गया था अतः पहले का जवाब देने की आवश्यकता न रही थी।

और इस दूसरे प्रश्न में कितना स्नेह था! जैसे किसी पिता ने अपने बच्चे से पूछा हो, कैसे हो?…केवल दो शब्द और कितनी ममता! मुकुन्द पसीज गया। उस से पूरे सात साल बाद किसी ने इस तरह बात की थी। उस की आंखें भर आईं।

"अरे, रोते हो?" सम्भाजी मुस्कराया, "पगले कहीं के! हार-जीत तो लगी रहती है।"

बहुत परिवर्तन था, हां, बहुत बड़ा परिवर्तन। सात साल पहले का शासक सम्भा, आशंकाओं से घिरा, तिलमिलाया हुआ, हर समय चौकन्ना, कुछ डरा हुआ-सा, कुछ डराता हुआ-सा! और आज का यह कैदी सम्भा, जो हार कर भी हतोत्साहित नहीं था, भावी के प्रति आशंकित नहीं था, दुखद वर्तमान से जिसे कोई शिकायत नहीं थी, जिसे देखते ही लगता था, इसे जिन्दा रहना चाहिए।

और मुकुन्द में साहस भर गया। बिना हिचके उस ने कहा, "स्वामी, मैं सन्धि-प्रस्ताव ले कर आया हूं।"

"कैसी सन्धि?"

यह प्रश्न इतना छोटा, तीखा, स्पष्ट और व्यंग्यपूर्ण था कि मुकुन्द की घिग्घी ही बंध गई। केवल दो शब्दों में इतना आतंक हो सकता है,

इस का उसे पहला अनुभव हुआ। सम्भाजी ने उस की यह स्थिति देखी। वह मुस्कराया।

मुस्कान !

धधकती आंखें, गोरा चेहरा, बोलने का लहजा—सब वही था, लेकिन यह मुस्कान ! यह नई थी, बिल्कुल नई, और बहुत अच्छी थी, कुछ अपनी-अपनी-सी।

"हम से कोई सन्धि नहीं हो सकती, मुकुन्द !"

फिर मुकुन्द का साहस न हुआ कि अपनी बात दोबारा कहे। मानो वह सम्भाजी से बहस करने या उसे समझाने नहीं आया था, उस से केवल पूछताछ करने आया था और जवाब चूंकि 'नहीं' में मिल गया था, फिर से पूछना बेमानी था।

"खैर, फिर भी मैं जानना चाहूंगा कि सन्धि की शर्तें क्या हैं।"

"मराठा राज्य दिल्ली के अन्तर्गत होगा, आप उस के सूबेदार रहेंगे। जो मुगल अधिकारी आप से मिले हुए हैं, उन के नाम बता दें। अपने सभी खजानों के पते भी दे दें। मराठों के सभी गढ़ों में मुगल दस्ते रखे जाएंगे।"

"और कुछ ?"

"बस।"

"यदि सन्धि न की गई ?"

"तो··· तो···"

"बोलो···"

"अपशब्दों के लिए क्षमा करें देव, लेकिन तब आप का···आप का···"

"समझ गया। मेरा वध होगा। यही न ?"

मुकुन्द ने हां में सिर हिलाया, फिर वह नीचे देखने लगा। कोठरी में मौन छाया···काट खाने वाला मौन···उस ने ऊपर आंखें उठाईं। सम्भाजी ने गम्भीरता से कहा, "वत्स ! मेरे बाद तुम्हें अपनी स्वामिनी का पूरा

ध्यान रखना होगा।"

मुकुन्द का गला भर आया, "लेकिन···"

"न मुकुन्द, इस सम्बन्ध में कुछ मत कहो!" सम्भाजी ने उस की पीठ थपथपाई, "जाओ! मुझे अकेला छोड़ दो!"

जब वह बाहर निकलने को था, सम्भाजी ने कुछ ऊंचे स्वर में कहा, "कल सुबह आ सकोगे?"

"हां, आऊंगा।"

आना क्यों है, मुकुन्द न पूछ सका। दूसरी भी कई बातें थी, जो पूछी जानी थी। गुल · मणमेश्वर की महिलाएं · वह वचना···

शाहज़ादे के सामने जा कर उस ने सिर्फ़ एक वाक्य कहा, "मैं उन से कल फिर बात करूंगा।"

अपने कमरे में आ कर उस ने दरवाज़ा बन्द किया। वह बिस्तर पर निढाल हो गया। फिर उस की पसलियों पर सिसकियां सवार हुईं। वह पेट के बल लेट गया और तकिए में मुंह छिपा कर रोता गया। वह जानता था कि कल जो बातें होंगी, उन में सन्धि की बात शामिल न होगी। तब···



दूसरे दिन तड़के ही वह सम्भाजी के सामने उपस्थित हो गया। रोने और जागने के कारण उस की आंखें सूजी हुई थीं।

"जानते हो, तुम्हें क्यों बुलाया है?"

"मैं उत्सुक हूं, देव!"

"एक शुभसमाचार सुनाना चाहता हूं। सुलह आसान करने की शर्तें

अधिक होती है।"

मुकुन्द ने सिर झुका कर कहा, "आप के कल के निर्णय के बाद और क्या कुसमाचार हो सकते हैं ?"

"यह समाचार केवल तुम्हारे लिए है।"

मुकुन्द ने आंखें उठाईं।

"कवि कलश से मिले थे ?"

"हां, कल।"

"क्या-क्या बातें हुईं ?"

"वह अस्वस्थ लगे। बातें नहीं कीं, केवल उलझते रहे।"

"मैं कल्पना कर सकता हूं कि बातें किस सम्बन्ध में हुई होंगी। मैं भी उसी सम्बन्ध में···सुनो मुकुन्द, यदि कोई प्रिय पात्र हमेशा के लिए विदा ले ले, तो हमें यह दुख उतनी ही सहजता से सह लेना चाहिए, जितनी सहजता से हम किसी अच्छे सपने का टूटना सह जाते हैं।"

"मैं आप का आशय नहीं समझा।"

"तुम ने मुझ से गुल के बारे में कुछ नहीं पूछा। शायद संकोच के कारण···"

"वह कहां है ?"

"मुकुन्द," सम्भाजी ने उस के कन्धे पर हाथ रखा, "वह कहीं नहीं है।"

मुकुन्द चुप हो गया। वह पूरा-का-पूरा खोखला हो गया, जैसे न जी रहा हो, न मर रहा हो। गुल कहीं नहीं है···याने···याने वह सदा के लिए···उस की आंखों में आंसू न आ सके। उसे लगा, उस के होंठ चेहरे से कट कर अलग हो गए हैं, हवा में लटक रहे हैं, धीरे-धीरे हिल रहे हैं और उन के बीच से जो आवाज निकल रही है, वह बहुत अस्पष्ट और सहमी हुई है, जैसे वे अपनी जिन्दगी का आखिरी सवाल पूछ लेना चाहते हों···'वह कैसे मरी ?'

"तुम पाली से न लौटे तो सब ने समझा, तुम छापे में काम आए।

गुल ने चूड़ियां फोड़ ली। किसी तरह वह अपने दिन विता रही थी कि '''मुकुन्द, मनुष्य कुंठाओं का पुतला है। उस के भीतर कई गन्दे नाले भी बहते हैं। समय पर उन की सफाई न हो तो सड़ांध पैदा होती है। एक दिन कवि कलश ने सब से छिपा कर, मुझ से भी छिपा कर गुल का अपहरण करवाया।"

मुकुन्द के कान सुन्न हो रहे थे।

"दो दिन बाद गुल वापस महल में पहुंचा दी गई। वह तुम्हारी स्वामिनी से मिली और सब कुछ बता कर बोली, "मुकुन्द यदि जिन्दा हो तो मुझे माफ करे!" फिर उस ने'''उस ने अपने पेट में छुरा भोंक लिया।"

सड़ाक!

कलश पीड़ा से ऐंठ गया। वह हांप रहा था और उस की जीभ बाहर निकल आना चाहती थी। प्यास के कारण उस का गला भीतर से खुरदरा-सा हो गया था। उस की सांस भीतर जाने और भीतर से निकलने से पहले गले में रुक कर जैसे घायल हो रही थी। तार-तार हो चुके कपड़े खून से तर थे। चमड़ी जगह-जगह से उधड़ कर लटक गई थी, जैसे किसी ने किसी फल की छाल जरा-जरा नोच कर छोड़ दी हो।

मुकुन्द चमड़े के मोढ़े पर बैठा। कोड़े बरसा-बरसा कर उस का दाहिना हाथ थक चुका था। उस ने कलश के लुजपुंज शरीर को देखा जो छत से लटकती लोहे की दो सांकलों से झूल रहा था। कलश लगभग बेहोश था। उस के लम्बे बाल चेहरे पर कुछ इस तरह छा गए थे मानो चेहरा कोई ऐसा अंग हो, जिसे छिपाना बहुत आवश्यक हो। चीथड़ों में वह लगभग नंगा था। उस का सिर सामने की ओर यों लटक रहा था, जैसे गर्दन टूट गई हो।

कोठरी में सिवा इन दो के और कोई नहीं था। दरवाजे पर खड़े पहरेदार बुरी तरह सहम गए थे और भीतर झांक भी

मुकुन्द ने कोड़े को एक ओर उछाला और गहरी सांस ली। कोठरी में आने और कलश को अधमरा करने के दौरान वह एक शब्द भी न बोला था। जब वह भीतर आया था, उस के साथ कुछ मजबूत सैनिक थे। उन्होंने एक के कन्धे पर एक चढ़ कर छत में सांकलें बांधी थीं और कलश फटी आंखों और गूंगे होंठों के साथ उन की ओर देखता रहा था। फिर वह उन सैनिकों द्वारा जकड़ लिया गया था और दोनों कलाइयों से सांकलों में लटका दिया गया था। सामने खड़े मुकुन्द ने इशारा किया था और सैनिकों ने कोठरी खाली कर दी थी। मुकुन्द के दोनों हाथ छाती पर मुड़ गए थे, दोनों पैरों के बीच की दूरी फैल गई थी और वह कलश को घूरता रहा था।

कलश···बच्चों की तरह जिद्दी···

कल एक बार उस से मिल कर मुकुन्द ने चाहा था कि वह अपना नारकीय अपराध स्वीकार कर ले, लेकिन हर बार उस ने कहा था, 'मैं किसी गुल को नहीं पहचानता। कौन गुल ?' मुकुन्द की क्रोधाग्नि में घी पड़ गया था।

उस ने सड़ाक से कोड़े का पहला वार किया था और सांकलों की धीमी खड़खड़ाहट के साथ एक नीला दाग कलश के जिस्म से चिपक गया था। मुकुन्द जानता था कि कलश को अब सजा देना बेकार है, इस से गुल जिंदा नहीं हो सकती, लेकिन मुकुन्द लाचार था—अपने भीतर के उस नासमझ पशु के सामने वाकई लाचार था, जो बार-बार सींग उछाल रहा था, नथुने फुला रहा था, खुरों से धूल उड़ा रहा था।

कलश को वह ज्यादा-से-ज्यादा पीड़ित करना चाहता था, इतने कोड़े बरसाना चाहता था कि उस के कपड़ों का एक-एक हिस्सा जिस्म से अलग हो जाए और वह लोहे की उन सांकलों की तरह ही नंगा हो जाए।

मुकुन्द उठा और कोने में पड़ा कोड़ा उठा कर आगे आया। उस ने कलश के बाल पकड़े और झटके के साथ चेहरा ऊपर किया। कलश के

विकृत मुह के दोनों छोरों से खून के लिसलिसे तार बंध गए थे। मुकुन्द ने फर्श पर थूक दिया। कलश की आंखें बन्द थीं। मुकुन्द ने उस के अंगूठे के नाखून के नीचे कटार चुभोई, लेकिन कलश के जिस्म में कोई हरकत न हुई। वह पूर्णतया बेहोश था।

मुकुन्द कोठरी से बाहर निकला—कलश को उसी तरह लटकता छोड़ कर। जब वह गलियारे को पार कर रहा था तो ध्यान आया कि वह व्यर्थ ही इस कोड़े को पकड़े हुए है। उस ने लापरवाही से उसे एक ओर फेंका जो फर्श पर गिर कर किसी भारी-भरकम सांप की तरह सिहर उठा।

उस ने सामने से शर्जाखां को आते देखा। इस सेनापति को उस ने बहुत कम बोलते सुना था। पिछले दिनों शर्जाखां की तोंद बढ़ गई थी। उस की खामोश रहने की आदत को देखते हुए यही लगता था कि इस तोंद में ढेर सारी आवाजें भरी हुई हैं। मुकुन्द के पसीने से तर शरीर पर उस ने ध्यान न दिया और पूछा, "आप ने शाहजादा-ए-आलम को देखा ?"

"अपने कमरे में होंगे। आइए !"

यहां गलियारा दो शाखाओं में फूटता था। मुकुन्द बाईं ओर मुड़ा। उस ने शायद पहली बार शर्जाखां को एक के बाद दूसरा वाक्य बोलते सुना, "जीत की खुशी में नाच-गान की तैयारियां हो रही हैं। चलेंगे ?"

"जरूर।"

हां, जरूर जाएगा मुकुन्द, जरूर देखेगा नाच-गान। [illegible] हुई आज कलश की !

"पियो ! खूब पियो ! डट कर पियो !" [illegible] शर्जाखां करीब बैठा था। उस ने भी कम नहीं [illegible] नहीं रहा था, बक भी नहीं रहा था। वह [illegible] घूर रहा था जो सामने बनाए गए [illegible]

मथ रही थीं। शेख निजाम वार-बार अपने आसन से उठ खड़ा होता। नशे के कारण उस की आंखें चढ़ी जा रही थीं। शराब का प्याला हाथ में ले कर वह लड़खड़ाता और नर्तकी की ओर एक भद्दी 'हाय!' फेंकता। नर्तकी मुस्करा कर इस का जवाब देती तो वह हंसता हुआ निढाल हो जाता। शहाबुद्दीनखां वार-बार उसे पकड़ कर वापस आसन पर विठाता।

एक ओर गद्दे बिछाए गए थे जिन पर कई गोल तकिए रखे हुए थे। मुकुन्द ने अपनी बांह के नीचे तकिया डाल कर लापरवाही से टांगें फैला दी थीं। नर्तकी में उसे दिलचस्पी नहीं थी।

मुकुन्द ने अपने को बड़ी मुश्किल से रोका था, वरना शराब की लाल परी ने किस कदर मुस्करा-मुस्करा कर पुकारा था उसे! 'नहीं, मैं नहीं पिऊंगा। आज गुल जिंदा नहीं हैं, लेकिन अगर होती तो कितना बुरा मानती!' वह लगातार महसूस कर रहा था कि मरने के बाद गुल में एक अलौकिकता भर गई है। रात और दिन, और दिन और रात गुल उसे देख रही है, आकाश की खिड़की खोल कर झांक रही है।

उस ने चाहा था कि उठ कर यहां से चला जाए। फिर उस ने सोचा था, 'अपने को कसौटी पर कसने का यह अच्छा मौका है। आसपास का हर व्यक्ति पी रहा है और मैं न पिऊं, यह मेरी जीत तो होगी ही—मैं शराब के आगामी खतरों से भी छुटकारा पा जाऊंगा।'

और वह लेटा रहा था वहीं।

तम्बू बहुत बड़ा था। नृत्य की झनक उठ रही थी। मंच के चारों ओर सितार, तबला, बांसुरी आदि ले कर वाद्यकार बैठे थे। कार्यक्रम आम सैनिकों के लिए नहीं था। केवल सेना के मुख्य अधिकारियों को बुलवाया गया था।

"मुकुन्द!"

मुकुन्द ने पीछे देखा। शाहजादा मुअज्जम ने उसे पास आने का इशारा किया था। वह उस की ओर सरका, "जी?"

"मैं जा रहा हूं।"

"कहां ?"

"औरंगाबाद। मुझ से यहां न रहा जाएगा।" कहता हुआ मुअज्जम सम्भू से बाहर की ओर बढ़ा, "इधर आओ!"

"तुम ने क्या सोचा ?" एकान्त में जा कर उस ने पूछा।

"किस बारे में ?"

"सम्भाजी ने समझौता नहीं किया। अब्बाजान उसे जिंदा नहीं छोड़ेंगे। उस के बाद तुम्हें यहां का सूबेदार..."

"मुझे कुछ नहीं चाहिए।"

"फिर ?"

"मैं नहीं जानता, आगे मैं क्या करूंगा, लेकिन फौज और मारधाड़ से मैं दूर ही रहना चाहूंगा।"

"मैं समझता हूं मुकुन्द, तुम्हें गुल की मौत का बहुत बड़ा सदमा पहुंचा है, लेकिन वक्त गुजरता है तो बड़े-से-बड़ा घाव भी भर जाता है।"

कवि कलश को सजा देने की इजाजत लेने के लिए मुकुन्द को शाहजादे के सामने गुल की सारी बात खोलनी पड़ी थी। मुकुन्द ने पूछा, "आप औरंगाबाद क्यों जा रहे हैं ?"

"कहा न ? मुझ से यहां न रहा जाएगा।" मुअज्जम ने दोहराया, "अब्बाजान परसों सुबह अकलुज से यहां आ जाएंगे। वह सम्भाजी को कत्ल करवाएंगे। मुझ से नहीं सहा जाएगा यह।" उस ने मुकुन्द की ओर आग्रह से देखा, "एक बात मानोगे ? तुम यहीं रुके रहो। हो सकता है, अब्बाजान सम्भाजी को मारने का इरादा ऐन मौके पर छोड़ दें। वह न जाने क्या हुक्म देंगे, कहा नहीं जा सकता। शायद वह सम्भाजी को [illegible] कैद में डाल दें। यदि ऐसा हो तो तुम औरंगाबाद आ कर मुझे [illegible] पहुंचाओ।" उसके होंठ भिंचे, "...और यदि ऐसा न हो [illegible] भी तुम औरंगाबाद आओ..."

"आऊंगा, लेकिन मैं सूबेदार नहीं बनूंगा।"

"हम फिर बातें करेंगे।"

"मैं नहीं बनूंगा।"

"न बनोगे तो कोई जबर्दस्ती नहीं बना देगा। औरंगाबाद जरूर आना। मैं इंतजार करूंगा। कोई खतरा नहीं है। जिम्मेदारी मैं लेता हूं।"

"खतरा हो तो भी क्या फर्क पड़ता है। मरूं या जिऊं, आगे-पीछे कोई नहीं है।"

"ऐसी बातें नहीं सोचा करते।"

"आप कब जा रहे हैं?"

"आज, अभी। सम्भाजी से मत बताना कि मैं यहां था।"

"आप एक भी बार उन से नहीं मिलेंगे?"

मुअज्जम चुप रहा।

उसी समय नर्तकी की चीख सुनाई पड़ी। शेख निजाम मंच पर पहुंच गया था और नर्तकी की ओर झपटना चाहता था। शहाबुद्दीनखां ने दौड़ कर उस को पीठ की तरफ से पकड़ लिया और लगभग घसीटता हुआ पीछे ले गया। सहमी हुई नर्तकी मंच के बीच में आई और नकली मुस्कान के साथ तबले की थाप पर उछली।

"जंगली!" मुकुन्द बुदबुदाया।

"चाहे जो कहो मुकुन्द, लेकिन यह जरूरी है।"

"यह अपने को धोखा देना है।"

"यूं देखा जाए तो पूरी दुनिया ही एक धोखा है। इस झमेले में न पड़ो और मोटे तौर पर सोचो। जो शख्स हमेशा जिंदगी और मौत से खेलता है वह बहलाना, अपने को भुलाना भी चाहता है।"

"अपने-अपने ख्यालात हैं। आप इसे जरूरी समझते हैं, मैं नहीं समझता।"

"छोड़ो!···तो औरंगाबाद आने का वादा पक्का रहा?"

"हां।"

मुअज्जम चला गया। पीछे से मुकुन्द सोचता रहा, 'मैं ने यह कैसे दिया कि आगे-पीछे मेरा कोई नहीं है? मैं ने छत्रपति को वचन दिया है कि स्वामिनी का ध्यान रखूंगा। मेरा जीवन निरर्थक कैसे है?' उस ने सोचना बन्द कर दिया। वह अपने में ही उलझना नहीं चाहता था, उलझने का तो इन दिनों कोई ओर-छोर ही नहीं था।

नृत्य भोंडेपन की चरम सीमा पार कर रहा था। मुगलों, राजपूतों, बीजापुर तथा गोलकुण्डा के सेनापतियों आदि ने 'वाह! वाह! प्यारी! हाय, मेरी जान!' की आवाजें कसनी शुरू कर दी थीं। मुकुन्द कुछ ही देर वहां ठहर सका। बाहर आ वह महल की ओर कदम उठाने लगा।

सारी रात वह जागता रहा, जिस से उस का अगला दिन पूरा ही कच्ची नींद और आलस्य में बीता। शाम को वह नहाया और केवल मन बहलाने के लिए शहर की गलियों में घूमने निकल पड़ा। लोगों में अजीब सनसनी फैली हुई थी। 'कल सुबह बादशाह सलामत बहादुरगढ़ आ जाएंगे।' सब की जबान पर यही बात थी।



मुकुन्द कोठरी के दरवाजे पर एक क्षण ठिठका, फिर भीतर आया।

"आइए!" शहाबुद्दीनखां ने व्यंग्य से उस का स्वागत किया, "देखिए अपने छत्रपति की हालत।'

सामने एक तख्त पर सम्भाजी को चित लिटा दिया गया था। चार रस्सों से उस के हाथ-पैर बंधे हुए थे जो चारों तरफ से एक-एक पहलवान द्वारा खींचे जा रहे थे।

"खींचो ! जोर से !" शहाबुद्दीनखां का हुक्म गूंज उठा ।

"नहीं सेनापति," मुकुन्द के लिए यह दृश्य असहनीय था, "इस से क्या फायदा ?"

"मुझे फायदे या नुकसान से कोई वास्ता नहीं है । मुझे तो बादशाह सलामत के हुक्म की तामील करनी है ।"

"आप बादशाह सलामत को समझाइए । किसी को नीचा दिखाने का यह छिछोरा तरीका है ।"

कोठरी में शर्जाखां था, लेकिन शेख निजाम नहीं था । शर्जाखां बड़ी तसल्ली से एक छोटे आसन पर बैठा हुआ था । उस ने दोनों पैर मोड़ कर ऊपर कर लिए थे । वह भुने हुए नमकीन काजू चबा रहा था । उस ने मुकुन्द की ओर काजू का दोना बढ़ा दिया ।

"शुक्रिया !" मुकुन्द ने क्रोध से कहा ।

सम्भाजी कराहा । चारों रस्से ढीले किए गए । शहाबुद्दीनखां उस की ओर बढ़ा, "काफी दर्द है, क्यों ? प्यास लगी है ?" उस ने पानी का कुल्हड़ उठाया और उस के मुंह की ओर बढ़ाया । कुल्हड़ केवल तीन अंगुल दूर था । न सम्भाजी ने चेहरा ऊपर उठाना चाहा लेकिन कमजोर नसों ने साथ न दिया ।

शहाबुद्दीनखां हंसा, "लो काफिर, पियो !" उस ने सम्भाजी की नाक पर पानी की धार बना दी । सम्भाजी का पूरा चेहरा भीग गया··· पीड़ा से गर्म चेहरा···पानी की कुछ ही बूंदें मुंह में जा सकीं ।

मुकुन्द ने शहाबुद्दीनखां के हाथ से अकस्मात् कुल्हड़ छीन लिया । शहाबुद्दीनखां ने कोई एतराज न किया, जैसे मुकुन्द पर कोई बहुत बड़ा अहसान किया हो । मुकुन्द ने सम्भाजी की गर्दन के नीचे से हाथ का सहारा दिया और उस के मुंह से कुल्हड़ लगा दिया । हाथ पर उस ने सम्भाजी की गर्दन की तपिश महसूस की---जैसे बुखार चढ़ आया हो ।

पानी पी कर सम्भाजी ने गहरी सांस छोड़ी । फिर वह लुंज हो कर पड़ रहा । मुकुन्द ने धीरे से उस का सिर नीचे रखा और शहाबुद्दीनखां

की ओर देखा।

"जानते हो मुकुन्द," करारी आवाज में सवाल किया गया, "तुम ने सुल्तान-ए-आजम के हुक्म की तौहीन की है?"

"जो सजा दी जाएगी, भुगत लूंगा।"

"अगर शिकायत की गई, तो सजा जरूर दी जाएगी।"

"शौक से की जा सकती है।"

"आप यहां से तशरीफ ले जाएंगे?"

"नहीं। मेरे रहते आप छत्रपति पर अत्याचार नहीं कर सकते।"

"मुकुन्द!" सम्भाजी ने पुकारा था। मुकुन्द उस की ओर घूमा।

सम्भाजी की सांस फूल रही थी, "इन्हें जो चाहें करने दो। यह हमारी नहीं, इन की कमजोरी है। तुम जाओ यहां से!"

"नहीं।"

"चले जाओ यहां से!"

"असम्भव!"

"खींचो!" शहाबुद्दीनखां ने हुक्म दिया और सभी पहलवानों ने रस्सों पर अपना बोझ डाल दिया। सम्भाजी फिर से कराहा। पेट में पहुंचा पानी अब पसीने के रूप में फूट पड़ा था।

मुकुन्द ने कटार निकाली। हालांकि वह जानता था कि वह अकेला है और उस की कोशिशों का खास मतलब नहीं है, फिर भी उस ने एक वार किया और सम्भाजी के दाहिने हाथ का रस्सा कट गया। कटा हुआ छोर यों उछला, जैसे रबर हो। जो पहलवान उस छोर को खींच रहा था, वह पीठ के बल गुलाट खा कर दीवार से जा टकराया।

इस से पहले कि मुकुन्द दूसरा रस्सा काट पाता, शर्जाखां ने जोर से उस के दोनों घुटनों के पीछे मुक्के मारे। घुटने मुड़ गए और मुकुन्द सम्भलने की कोशिश करता हुआ पछाड़ खा गया। अगले ही क्षण सैनिकों ने उस की गर्दन पर चार भाले तान दिए थे।

शहाबुद्दीनखां गर्व से हंसा, "बेवकूफ नौजवान! कर दूं हमेशा के

लिए विदा ?"

मुकुन्द की भौंहें टूटीं।

"तुम अपनी आंखों से सब देखोगे। यही तुम्हारी सजा है।" शहाबुद्दीनखां ने इशारा किया और सैनिकों ने उसे एक कोने में खड़ाकर दिया। चारों ओर से वह भालों की नोकों से घिरा हुआ था।

"तुम समझते हो, हमारे पास और रस्से नहीं हैं ?" शहाबुद्दीनखां ने एक खूंटी की ओर इशारा किया जहां काफी बड़ी लिपटन के रूप में एक रस्सा टंगा हुआ था। सैनिक ने रस्से का छोर खींच कर एक लम्बा टुकड़ा काटा। दाहिना हाथ आजाद होते हुए भी सम्भाजी ने उसे जैसा का तैसा पड़ा रहने दिया था। उस की कलाई छिल गई थी और खून रिस रहा था। दर्द से वह कभी-कभी उंगलियां हिलाता था जो सुन्न हो गई थीं। उस के पैर के दोनों पंजों में खून के छल्ले पड़ गए थे। जब सैनिक ने उस के दाहिने हाथ पर रस्सा बांधा तो उस ने कोई विरोध न किया। न उस के चेहरे पर कोई शिकन ही आई।

चारों रस्से फिर से खींचे जाने लगे। मुकुन्द ने लाचारी से अपने होंठ चबाए। उस ने शमाओं की ओर देखा। उस के काजू लगभग समाप्त होने को थे और वह कुछ इस तरह चुप था, मानो किसी अकेले कमरे में बैठा हुआ हो।

"ठहरो !" शहाबुद्दीनखां ने पहलवानों को रोका, "रस्सों को ताने रहो, लेकिन खींचो मत। काफिर को मैं एक अनोखी सजा दूंगा।"

मुकुन्द आशंका से सिहरा। उस ने शहाबुद्दीनखां को सम्भाजी के तख्त के करीब जाते देखा। वह 'अहअहअह' कहता हुआ हंस रहा था। कुछ देर तक वह सम्भाजी की आंखों में घूरता रहा, फिर बोला, "बहुत दर्द है ? दूर करूं ?" और वह सम्भाजी के थके शरीर को धुनने लगा। दोनों हाथों से कभी वह पेट में गुदगुदाता, कभी बगलों में, कभी गर्दन में। शहाबुद्दीनखां की घुटी हंसी अब अट्टहास में बदल गई थी। सम्भाजी ने निचला होंठ दांतों में दबा रखा था। रोकते-रोकते भी उस का जिस्म

बुरी तरह सिहर जाता था। उस की आंखें भिच गई थीं। उस के हाथ-पैर चार दिशाओं में फैले होने के कारण रस्सों में झटके लग रहे थे, जो पहलवानों तक पहुंच रहे थे। शहाबुद्दीनखां इतना हंस रहा था कि उस के मुंह से थूक आने लगा और जब उस ने देखा कि काफिर नहीं हंस रहा है, तो वह खुशी व क्रोध से दहाड़ उठा, "हंसो! मैं कहता हूं हंसो!" काफिर फिर भी न हंसा, तो बजाय गुदगुदाने के शहाबुद्दीनखां उस का शरीर नोचने लगा, जैसे पागल हो गया हो।

मुकुन्द ने मुट्ठियां बांधीं और उन चार भालों की ओर देखा जो ठीक उस की गर्दन पर तने हुए थे। अचानक वह किसी खरगोश की तरह नीचे बैठ गया। उन चारों सैनिकों के पैर उस के हाथों ने तेजी से समेट लिए, सैनिक पहले से ही इस कदर भौंचक हो गए थे, मानो उन्होंने जादू से किसी का सिर गायब होते देख लिया हो। पैर समेटे जाते ही आश्चर्य और डर के साथ वे एक-दूसरे पर गिरे और अपने ही भालों से खुद घायल हो गए। उन के बीच में मेंढक की तरह बैठे मुकुन्द ने छलांग लगाई और शर्जाखां के पीछे पहुंच कर उस का आसन उलट दिया। शर्जाखां घायल बकरे की तरह चीखने लगा। जिस तख्त पर सम्भाजी लिटाया गया था, उस के चारों पायों के नीचे से सरक कर मुकुन्द सम्भाजी के पैरों के पास से निकला। इतनी स्फूर्ति उस ने अपने जीवन में शायद ही कभी दिखाई हो। न उसे मालूम ही था कि वह इतना फुर्तीला है।

उस की कटार सम्भाजी के पैर के दोनों रस्से काट चुकी थी। झपट आगे दो पहलवानों को उस ने पेट में मुक्के मार कर कुछ देर के लिए अवश्य दोहरा कर दिया। उस की ओर चारों ओर से सैनिक बढ़ रहे थे। उस ने एक कटार को सीधे अपनी छाती पर उछलते देखा। वह नीचे झुका। सन्न से कटार ऊपर से निकल गई और सामने की दीवार पर झनझनाती हुई टकराई।

उसे आशा थी कि पैर आजाद होने के बाद सम्भाजी उठ खड़ा

होगा। हंगामे में वह ध्यान न दे पाया कि सम्भाजी ने ऐसा किया है या नहीं। उस ने एक सैनिक से भाला छीनने की कोशिश की। "पकड़ो !" चिल्लाता हुआ शहाबुद्दीनखां उसे दबोचना चाहता था। गिरा हुआ शर्जाखां अब तक उठ चुका था।

कोठरी के बाहर खड़े कई सैनिक भीतर आ गए थे। शर्जाखां ने एक हथौड़ा उठा लिया जो पास ही लावारिस पड़ा था। मुकुन्द की पीठ उस की ओर थी। उस ने तोल कर हथौड़ा फेंका, जो भरपूर चोट के साथ मुकुन्द की रीढ़ से टकराया। मुकुन्द उछल पड़ा, मानो किसी हिरन को पीछे से तीर आ लगा हो।

बाज की तरह झपटे सैनिकों ने उसे जमीन के साथ जकड़ दिया, फिर उस के दोनों पैरों को गुणा के चिह्न की तरह एक पर एक चढ़ा कर बांध दिया। उस के हाथ पीठ के पीछे मरोड़े जा चुके थे। जब उन्हें बांधा जा रहा था तो वह कमर के बल अपने को हचमचा रहा था और किसी ताकतवर घोड़े की तरह हांप रहा था। उसे शहाबुद्दीनखां के सामने किसी लकड़ी के गट्ठर की तरह पटक दिया गया।

"खूब ! बहुत खूब ! काश, तुम हमारे दोस्त होते !" मुकुन्द ने शहाबुद्दीनखां की आवाज सुनी।

सम्भाजी तख्त पर उसी तरह लेटा था। उस के पैर खुले हुए थे लेकिन हाथ कसे हुए। वह जानता था कि मुकुन्द अकेला कुछ नहीं कर सकेगा। यदि वह मुकुन्द की सहायतार्थ उठ खड़ा होता, तो भी यह निरर्थक ही रहता।

"ले जाओ इसे !" शहाबुद्दीनखां ने हाथ उठा कर दरवाजे की ओर इशारा किया, मानो उस के सैनिक इतने बेवकूफ हों कि दरवाजा किधर है, इस का भी उन्हें पता न हो, "डाल दो कैद में !"

३६

सुबह हो चुकी थी। मुकुन्द की इस कोठरी में कोई खिड़की नहीं थी। अधमरे बाघ की तरह वह फर्श पर चित पड़ा हुआ था। वह दातुन कर के हाथ-मुंह धो चुका था लेकिन मुंह में अजीब-सा फीका स्वाद भरा हुआ था। जीभ पर कसैली पर्त-सी चढ़ गई थी। कई बार वह घण्टों इसी तरह पड़े-पड़े बिता देता। तब वह जागते हुए भी न जाग रहा होता। उस की आंखें कुछ न देखतीं, उस के कान कुछ न सुनते, न उस का मस्तिष्क कुछ सोचता।

दरवाजा खुला। शेख निजाम कोठरी में आया। मुकुन्द उठा। शेख निजाम से उस की ज्यादा बोलचाल नहीं थी इसलिए उस के आने पर उसे थोड़ा अचरज हुआ। शेख के स्वागत में कुछ बोलना या मुस्कराना उस ने अनावश्यक समझा।

"कुछ सुनाई पड़ता है ?" यह पहला प्रश्न था, जो शेख निजाम ने पूछा—बिना किसी पूर्व-भूमिका के। उस का चेहरा रहस्यमयता और प्रसन्नता से दमक रहा था, "आओ !"

"कहां ?" मुकुन्द ने शुष्कता से पूछा, "क्यों ?"

"तुम्हें एक नई चीज दिखाऊं। तुम्हारी कोठरी में कोई खिड़की नहीं है। वह चीज किसी खिड़की से झांक कर ही देखी जा सकेगी।"

"मुझे कुछ नहीं देखना।"

"पछताओगे। उस का ताल्लुक तुम्हारे छत्रपति से है।"

मुकुन्द उठा और शेख निजाम के साथ कोठरी से बाहर आया। गलियारे में थोड़ा आगे बढ़ते ही उसे ढोल-धमाके की आवाज सुनाई पड़ी जो दीवारों की आड़ होने के कारण काफी धुंधली थी। शेख निजाम ने उसे एक खिड़की के सामने खड़ा कर दिया और उंगली से बाहर की ओर इशारा किया, "देखो !"

मुकुन्द ने झांक कर देखा। उसी समय उस की पीठ पर एक हल्की चुभन हुई। वह चौंका।

"हिलना मत ! पीछे मेरी कटार लगी है।" शेख निजाम की आवाज थी, "भागने की कोशिश भी मत करना ! चुपचाप देखो !"

सामने कोई जुलूस उभर रहा था। वह काफी बड़ा था। उस में सशस्त्र सैनिकों के अलावा बहादुरगढ़ की जनता भी शामिल थी। जुलूस के आगे-आगे दो ऊंट चल रहे थे, जिन की पीठ पर नगाड़े, ढोलक, तुरही आदि बजाए जा रहे थे। ऊंट जब करीब आए तो मुकुन्द ने बजाने वालों की बांहों को देखा, जिन में मछलियां पड़ रही थीं और उन के गालों को देखा, जो फूल कर गोलाकार हो गए थे।

ऊंटों के गुजरने के बाद विदूषकों की एक टोली दिखाई पड़ी जो बेतहाशा उछल रही थी। उन की चीखें खुशी की कम, आतंक की ज्यादा थीं। कुछ ने जूतों की मालाएं पहन रखी थीं, कुछ लगभग नंगधड़ंग थे और शरीर पर विचित्र रंगों की पुताई कर के बीभत्स हरकतें कर रहे थे। कभी-कभी वे ओक् करते हुए जमीन पर थूकते और थूका हुआ धूल से मूंदने लगते। उन के पीछे छह घुड़सवारों की एक कतार चल रही थी। सभी घुड़सवार मुगल थे जो बादशाह औरंगजेब के छह झण्डे फहरा रहे थे। धूप के कारण उन के चेहरों पर पसीना छन आया था। उन के घोड़े सजे-धजे थे और कभी-कभार नथुनों से फररररर करते हुए गहरी सांस छोड़ते थे। मुकुन्द जिस खिड़की के पास खड़ा था, वह दूसरी मंजिल पर थी, अतः मुकुन्द जुलूस की पूरी चौड़ाई देख सकता था। जुलूस की लम्बाई नहीं देखी जा सकती थी, क्योंकि वह एक मोड़ के पीछे से धीरे-धीरे सामने आ रहा था।

मुकुन्द ने सिहर कर होंठ चबाए। तुरन्त पीछे से शेख निजाम की कटार की चुभन बढ़ गई, "हिलना मत ! चुपचाप देखो !"

सैनिकों की कतार के बाद दो ऊंट चल रहे थे। एक पर सम्भाजी बैठा था, एक पर कलश ! मुकुन्द उन्हें बड़ी मुश्किल से पहचान पाया।

उस ने उन्हें हमेशा राजसी या सैनिक पोशाक में देखा था। श्राज वे विदूषकों की पोशाक में थे। उन के हाथ पीछे की श्रोर बांध दिए गए थे ताकि वे अपने चेहरों पर पुते रंगों को मिटा न सकें। ऊंट की टेढ़ी चाल के कारण हिचकोले लग रहे थे, जिन से उनकी टोपियों में लगी छोटी-छोटी घण्टियां बज उठती थीं। टोपियों का आकार मीनार की तरह लम्बा था, जिन की चोटी पर रेशमी कपड़े का एक-एक फूल लटक रहा था।

ढमढम…ढिक्‌ढिक्…

सम्भाजी बड़ी शान्ति से बैठा हुआ सामने की ओर देख रहा था। उस की आंखें रंगों की पुताई के बावजूद गम्भीर लग रही थीं। शायद उसे प्यास लगी हुई थी, क्योंकि वह बार-बार थूक निगल रहा था। पीछे बंधे हाथों के कारण उस की चौड़ी छाती और भी चौड़ी लग रही थी। उसे धारियोंदार पायजामा पहनाया गया था।

पिईईं…पिपिपिपी…पिईईं…

कलश को लाल रंग का चुस्त जांघिया पहनाया गया था। कमर के ऊपर वह नंगा था। उस के चेहरे पर सफेद रंग की दाढ़ी-मूछें लगाई गई थीं। वह चुप नहीं था, कुछ बड़बड़ा रहा था, मानो उसे पागलपन ने अपनी गिरफ्त में कर लिया हो। बार-बार उस की आंखें झप रही थीं और सिर हिल रहा था, जैसे वह किसी बात से इन्कार करना चाहता हो। उस की छाती के बाल साफ कर दिए गए थे, ताकि चित्रकारी ज्यादा बारीकी से की जा सके। छाती पर एक औरत का नंगा चित्र बना हुआ था। ऊंट सामने से गुजर कर थोड़ा आगे गया, तो उस की पीठ पर भी वैसा ही एक चित्र दिखाई पड़ा।

ऊंट के बाद कई हिजड़े चल रहे थे जो खजरी, मंजीरे, छोटे ढोलक और मटकियां बजा रहे थे। उन्होंने अपने सिर से भी बड़ी-बड़ी नकली छातियां लगाई थीं। उन की मोटी कमर लचक रही थी और पैर के घुंघरू छनक रहे थे। जो हिजड़े खाली हाथ थे, वे भोंड़े ढंग से तालियां बजा रहे थे। अचानक वे सब दौड़ पड़े और दोनों ऊंटों को घेर कर

कलश व सम्भाजी की ओर इशारे करने लगे। वे जबरन हंस-हंस कर दोहरे हो रहे थे।

मुकुन्द ने खिड़की बन्द कर दी।

"आप ने मुझे यह सब क्यों दिखाया? क्या मकसद था इस का?"

शेख निजाम सन्तोष से हंसा, "अभी तुम्हें और सजा दी जाएगी।"

"इस से तो अच्छा है, मुझे मार डालिए।"

"शाहजादा मुअज्जम मना कर गए हैं।"

खिड़की के बन्द पलड़ों में से अभी भी आवाजें छन रही थीं।



मुकुन्द कड़े पहरे में सम्भाजी की कोठरी की ओर जबर्दस्ती ले जाया जा रहा था। वह आत्म-धिक्कार से भरा हुआ था, 'यही सब देखने के लिए जिंदा रहना था मुझे? दुश्मनों ने मुझे कत्ल क्यों न कर दिया? कितनी निर्दयता से छत्रपति का अपमान हो रहा है!' और फिर से उस की आंखों के सामने जुलूस के वे घिनौने दृश्य घूम गए।

उसे शेख निजाम का वाक्य याद आया...अभी तुम्हें और सजा दी जाएगी...याने, सम्भाजी को और पीड़ित किया जाएगा और मुकुन्द को सब अपनी ही आंखों देखना पड़ेगा...वह चाहता था, उस का दिमाग गल जाए या वह पागल ही हो जाए, ताकि उसे समझ में न आए कि वह क्या देख रहा है। उस की छाती में पहले से एक घाव रिस रहा था...गुल का अपहरण...आत्म-हत्या...और ये नए घाव!

जब वह कवि कलश की कोठरी के सामने से गुजर रहा था, उस ने भीतर से कवि की बुदबुदाहट सुनी, "मैं कवि हूं, मैं महाकवि हूं, मैं समस्त

राज्य-कार्य-धुरंधर हूं, मैं छंदोगामात्य हूं, विश्वासनिधि हूं, मैं भाषा-पद्म-धर्मनिधान हूं, कर्मकाण्डपरायण हूं, मैं देवतैकनिष्ठाभाहिताभिमान हूं, मैं सत्यसंध हूं, मैं…"

"चलो!" सैनिक ने पीछे से कहा। मुकुन्द के ठिठके पांव आगे बढ़े।

किसी पशु को डराने के लिए हवा में चाबुक फटकारा जाए, ऐसी आवाज सुनाई दी। सैनिकों ने मुकुन्द के साथ कोठरी में प्रवेश किया।

लकड़ी के बने एक विशालकाय गुणाकार चिह्न की बांहों पर सम्भाजी के हाथ-पांव बांध दिए गए थे। चिह्न नब्बे अंश के कोण पर उठा हुआ था।

मुकुन्द को ठीक उस के सामने खड़ा कर के एक खम्भे के साथ रस्सों से जकड़ दिया गया। सम्भाजी ने मुकुन्द की ओर आंखें उठाईं।

मुकुन्द ने उस के होंठो पर व्यंग्य से बुझी मुस्कान की एक बहुत बारीक रेखा को उभरते और मिटते देखा।

कोठरी में शेख निजाम, शहाबुद्दीनखां और शर्जाखां तीनो उपस्थित थे। शर्जाखां हमेशा की तरह एक मोढे पर खामोश बैठा था। शहाबुद्दीनखां खाली हाथ था। कोड़ा शेख निजाम ने सम्भाल रखा था। शहाबुद्दीनखां दोनों पैर फैला कर अकड़ के साथ खड़ा था। शेख [illegible] कोड़ा लपलपाता चहलकदमी कर रहा था। उस ने कोड़ा [illegible]

शाम घिर आई थी। कोठरी में अंधेरा होने [illegible] किसी जीवित चीज की तरह था जो हर सांस के साथ [illegible] पहुंचता तो था, लेकिन बाहर नहीं आता था।

शर्जाखां ने उठ कर मशाल जलाई। फिर वह [illegible] बैठ गया। मशाल चारों ओर कांपता पीलापन फैला कर [illegible] लगी। मशाल! मुकुन्द उसे घूरता रहा, यहां तक कि [illegible] पलकें झपकाईं। दो गर्म बूंदें नीचे टपक गईं। वह दूसरी ओर देखने लगा लेकिन मशाल की वह लौ पुतलियों में चुभ गई थी। [illegible]

वह देखता, उसे लौ के जितने आकार में एक नीला-पीला धब्बा नजर आता···कांपता, उतराता, डूबता और उभरता धब्बा···

और मुकुन्द ने चाहा, यह दृश्य जितनी जल्दी शुरू हो सके, उतना ही अच्छा क्योंकि जल्दी शुरू होने पर ही वह जल्दी समाप्त हो सकता था।

शहाबुद्दीनखां एकाएक मुकुन्द की ओर देखकर खिलखिला उठा, "बादशाह का हुक्मनामा ले कर दूत आ ही रहा होगा। कोड़ा इंतजार में है।"

उसी समय दूत ने प्रवेश किया। उस ने कोरनिश झुकाई और हुक्मनामा बढ़ा दिया। शहाबुद्दीनखां ने उस की पर्तें खोलीं और पढ़ना शुरू किया। उस का चेहरा गम्भीर होता गया। हुक्मनामे को फिर से पर्तों में मोड़ कर उस ने बंधे हुए सम्भाजी की ओर व्यंग्य से देखा, "सुल्तान-ए-आजम ने काफिर की कद्र की है।"

मुकुन्द ने शहाबुद्दीनखां पर उत्सुकता से नजर टिकाई।

"आका-हुजूर ने कहलवाया है कि सम्भाजी अभी भी हमारी शर्तें मान ले तो उसे बाअदब मुआफ कर के मराठों का सूबेदार बनाया जाएगा।"

सम्भाजी के होंठों पर मुकुन्द ने थोड़ी देर पहले जो मुस्कान की बारीक और फीकी रेखा देखी थी, अब वह पूरी स्पष्टता के साथ उभर आई। सम्भाजी उस दूत से मुखातिब हुआ, मानो शहाबुद्दीनखां से बात करना उस का अपमान हो, फिर बोला, "बादशाह से कहो, हम से दोस्ती तभी होगी जब वह अपनी लौंडिया जीनत-उन्-निसा का निकाह हमारे साथ करेगा।"

दूत का चेहरा फक हो गया। शर्जाखां झपट कर सम्भाजी के करीब आया और चिल्लाया, "सम्भा!"

शर्जाखां ने सम्भाजी के बाल पकड़ने के लिए हाथ बढ़ाया। वह सम्भा के सिर को नारियल की तरह लकड़ी पर पटकना चाहता था। पास खड़े शेख निजाम के नथुने फूल आए थे। उस की फड़कती बांहें बार-बार

कोड़े को झटकार रही थी। शहाबुद्दीनखां की आंखें लाल थीं।

सम्भाजी जोर से चीखा, "दूर रह, कुत्ते !" इस के बावजूद शर्जाखां दांत पीसता हुआ आगे आया—अपनी उत्तेजित हथेलियों और धू-धू जलती दस उंगलियों के साथ। सम्भाजी ने उस पर बिना किसी हिचक के थूक दिया। शर्जाखां बिना थूक पोंछे सम्भाजी की गर्दन से चिपक गया, जैसे अभी उस का मास नोच कर खून पीना शुरू कर देगा। और तब उसे पता चला कि सम्भाजी की गर्दन कितनी कड़ी व मजबूत है। उस ने उन के बाल नोचने चाहे लेकिन उसी समय उस के कपार पर सम्भाजी का सिर किसी घन की तरह टकराया। शर्जाखा को अलग हट जाना पड़ा। अब उसे याद आया कि उस का चेहरा थूक से सना हुआ है, एक काफिर के बागी थूक से। उस ने बांह उठा कर कोहनी के ऊपर के कपड़े से चेहरा पोंछा। पोंछ कर फिर से पोंछा।

दूत उसी तरह खड़ा कांप रहा था। शहाबुद्दीनखां अपनी आवाज चबाता हुआ बोला, "जाओ, जो इस ने कहा है, आका-हुजूर से कह दो और पूछ कर आओ, हम इस कमबख्त का क्या करें।"

दूत में जाने की हिम्मत नहीं थी। उसे डर था, बात सुनते ही बादशाह की तलवार उस का सिर धड़ से अलग कर चुकेगी।

"जाओ !" शेख निजाम ने जब क्रोध से तलवार खींच ली तो दूत ने पाया कि नहीं जाएगा तो भी सिर कट जाएगा। सिहरता हुआ वह बाहर निकल गया।

जब वह वापस आया तो उसे परवाह नहीं थी कि उस के हाथ में भिंचे नए हुक्मनामे में क्या लिखा है। वह खुशी से गद्गद् था क्योंकि आका-हुजूर ने किसी तरह उस को जान बख्श दी थी। उस ने वह हुक्मनामा जब शहाबुद्दीनखां की ओर बढ़ाया, तो उसे अहसास न हो सका कि कोठरी के भीतर की हवा कितनी सिमटी हुई है। "अब तुम जा सकते हो।" शहाबुद्दीनखां ने उस से कहा। उसे थोड़ा दुःख हुआ कि उसे इनाम नहीं मिला।

शहाबुद्दीनखां ठोस चेहरे से मुकुन्द की ओर बढ़ा और हुक्मनामा उस के सामने फैलाता हुआ बोला, "उर्दू पढ़ सकते हो ?"

"नहीं।"

"इस में लिखा है, सम्भाजी की आंखें निकाल लो।"

मुकुन्द का मुंह आतंक से खुला रह गया। खम्भे के साथ बंधा उस का शरीर कसमसा उठा, हालांकि रस्से टूट जाते तो भी अकेला वह कुछ नहीं कर सकता था।

शहाबुद्दीनखां उस की ओर पीठ फेर चुका था और कोठरी के बीच में पहुंच कर ऊंचे गले से कह रहा था, "सुना शर्जाखां ? काफिर की आंखें निकालनी हैं।"

"आंखें वैसे हैं खूबसूरत।"

"निकालने में ज्यादा मजा आएगा।"

"ए ! सुना तुम ने ?" शर्जाखां सम्भाजी की ओर देख कर चिल्लाया।

इस हुक्मनामे ने तीनों सेनापतियों को वाकई इतना खुश कर दिया था कि वे एक-दूसरे से काफी दूर खड़े हो गए थे और जोर-जोर से बोल रहे थे। बहरेपन का ऐसा ढोंग उन्हें बहुत सनसनीखेज लग रहा था।

"आका-हुजूर ने यह नहीं लिखा कि आंखें निकालनी कब हैं।" शेख निजाम ने मजाक किया, "जरा आराम से ही निकालेंगे।"

"क्यों न हम बारी-बारी से इस की आंखों में घूरें ?" शहाबुद्दीनखां ने प्रस्ताव रखा।

"नहीं, बेवजह इस के करीब मत जाओ। खतरनाक है।" शर्जाखां ने कहा। फिर वह कुछ झेंप-सा गया।

"तो फिर ऐसा किया जाए", शेख निजाम ने अपने दोनों हाथों को पीठ पर मोड़ते और आपस में फंसाते हुए कहा, "हम खामख्वाह देर न लगाएं। झटझट आंखें निकाल लें और आराम से शराब पिएं।"

"ख्याल बुरा नहीं है।"

क्रूर आनन्द के इस जंगली झरने ने अब दलदली नाले का रूप धारण कर लिया। वे चुप हो गए और एक-दूसरे की ओर देखने लगे कि आंखें निकाले कौन ?

शेख निजाम ने मोढ़े की ओर पैर बढ़ाए। वह इस काम में हिस्सा नही लेना चाहता, यह भांपते ही शहाबुद्दीनखां और शर्जाखां ने अपना-अपना काम चुन लिया। शर्जाखा उस गुणाकार चिह्न जैसे लकड़ी के विशाल ढांचे के पीछे चला गया। शहाबुद्दीनखा के हाथ में लोहे की दो नुकीली छड़ें आ गई थी जिन्हें वह मशाल की लौ में गर्म कर रहा था।

दोनों छड़ें मजबूती से पकड़ कर वह सम्भाजी की ओर बढ़ा। पीछे से शर्जाखां ने दोनों हाथों से सम्भाजी के बाल जकड़ लिए, हालांकि सम्भा अपना चेहरा हिलाने की कोशिश भी नहीं कर रहा था। सम्भा ने आंखें भी नही मूंदी थी। उन आंखों में नाम मात्र का भी डर नहीं था। बल्कि वे आंखें बड़ी-बड़ी और गर्वीली हो उठी थीं। वे इतनी ज्यादा वेधक थीं कि गर्म छड़ों को उन के भीतर उतारने से पहले शहाबुद्दीनखां के हाथ कांप गए।

मुकुन्द जब अपनी कोठरी में वापस पहुंचा दिया गया तो दरी पर निढाल होने या दीवार का सहारा लेने की बजाय वह चुपचाप खड़ा रहा। तीन ओर की दीवारों, लोहे के सींखचों, ऊपर की छत और नीचे के फर्श का असहनीय भारीपन वह महसूस कर सका। कोठरी में जल रही छोटी मशाल उसे पसन्द न आई। उस ने दीवार के छेद में से उसे उखाड़ा और हवा में घुमावदार झटके दे कर बुझा दिया। तेल का अधजला धुआं अंधेरे मे तैरता रहा।

किसी छिछले तालाब की तली मे खड़ा हो, इस तरह मुकुन्द कोठरी के फर्श पर खड़ा था—अकेला, निश्चल और मौन, इतने सारे काजल में।

१६

कवि कलश को धूप में सुखाया जा रहा था।

उसे पिछले दो दिनों से पानी की एक बूंद पीने नहीं दी गई थी। अमरा वह पहले ही हो गया था, अब रस्सों से बांध कर धूप में डाल दिया गया था। मार्च का महीना था। धूप ज्यादा तेज नहीं थी लेकिन कुछ ही देर में उस के जिस्म में उबाल आने लगा।

मुकुन्द और कई पहरेदारों के साथ शेख निजाम वहां आया। "देखो, यह तुम्हारे छत्रपति का गुरु है। औरतखोर गुरु।" उस ने कहा।

मुकुन्द हंसा, "शुक्रिया! मैं बिना बताए पहचान जाता।"

"हंसते क्यों हो?"

"क्योंकि हंसने और रोने में अब खास फर्क नहीं रह गया।"

"शायर मर जाए, तो भी हंसोगे?"

"जरूर।"

"और सम्भाजी मर जाए?"

"हंसना पड़ेगा।"

"पड़ेगा?

"हां—उन पर, जो सम्भाजी को मारेंगे।"

"याने बादशाह-ए-आजम पर?"

"आप 'हां' सुनना चाहते हैं?"

"तुम्हें मौत से डर नहीं लगता?"

"लगे, न लगे, वह आती जरूर है।"

"तुम से बात करना एक लुत्फ है।"

"शुक्रिया!"

"पानी···पा···" कलश के गले से लटकती आवाज निकली का सिर एक ओर झूल गया और नाक से लहू की धार बंध ग

ने मुंह खोल कर जीभ बाहर निकाली जो बुरी तरह सूज गई थी। उस के हाथ-पैर में रह-रह कर सिहरन रेंग जाती थी। उस ने सूखे होंठों पर जीभ फेरनी चाही लेकिन जीभ भी सूख चुकी थी। उस की पलकें बन्द थीं जिन के नीचे भाप घुट रही थी और पलकों को भेद देना चाहती थी। वह पसीने में नहा चुका था'''पसीना, जो धूप ने उस के लहू में से चूसा था''

फिर से उसका मुंह खुला और रिरियाती आवाज निकली, "पा'''"

शब्द पूरा होने से पहले ही बेहोशी ने उसे अपने शिकंजे में दबोच लिया। हुक्मनामे के अनुसार आज की सजा का आखिरी दायरा यही था। दो सैनिकों ने आगे बढ़ कर जमीन पर काली चादर बिछाई, उसे उठाया, उस पर रखा और गठरी की तरह बांध लिया। दोनों गठरी को उठा कर छांह में ले गए। गठरी खोली गई, फिर रस्से। बलदा लोथड़े की तरह लुंजपुंज हो गया था। पहले से तैयार रखे घड़े का ठण्डा पानी चुल्लुओं में भर कर सैनिकों ने उस के चेहरे पर छींटे दिए और खुले होंठों के बीच पानी की धार डाली। उस के दोनों गालों पर नाक से बहा खून सूख कर काला पड़ने लगा था।

"आप मुझे यही दिखाने लाए थे न? मैं देख चुका।" मुकुन्द ने रूखेपन से कहा, "वापस ले चलिए!"

"तुम्हें दुख नहीं है?"

"है। इन्सान क्या, जानवर को भी इस तरह तड़पते नहीं देखा जा सकता।"

"दिल के कमजोर हो।"

"हां, और आप बहुत दिलेर हैं।"

"बेशक!" शेख निजाम पर इस ताने का कोई असर न हुआ, "ऐसे कामों के लिए भी दिलेरी चाहिए।" उस ने गूढ़ दृष्टि से मुकुन्द को देखा, "मुझे लगता है, तुम कलदा को नापसन्द करते हो।"

"मैं दुनिया के हर इन्सान को नापसन्द

अपने को भी !···सुन कर आप को खुशी हुई ?"

"बहुत ज्यादा ! कुत्तों को पसन्द करते हो ?"

"हां, कुत्ते इन्सान से अच्छे हैं। जंगली कुत्ते भौंकते नहीं हैं। बहुत बड़े कुनबे में रहते हैं। कभी झगड़ते नहीं हैं। मिल-जुल कर बड़ों-बड़ों का शिकार करते हैं।"

"तुम्हें तो कुत्तों की अच्छी खासी जानकारी है !" शेख निजाम हंसा, "आओ, तुम्हें न भौंकने वाले कुत्ते दिखाऊं।"

मुकुन्द भी न चूका, "बहादुरगढ़ में कुत्तों को देखने नहीं जाना पड़ता। वे अपने-आप दिखाई पड़ते हैं।"

"आओ तो सही !" शेख निजाम एक ओर मुड़ा। भालेधारी सैनिकों से घिरा मुकुन्द पीछे-पीछे घिसटने के लिए लाचार था।

"मैं कोठरी में वापस जाना चाहता हूं।"

"अकेले तुम्हारे चाहने से कुछ न होगा। जरा देर ठहरो, अभी मैं भी चाहूंगा।" उत्तर मिला, "पहले कुत्ते देख लो।"

अब तक मुकुन्द समझ रहा था, शेख निजाम कुत्तों की बातें यों ही कर रहा है, लेकिन अब उस की भौंहों पर बल पड़े।

शेख निजाम सचमुच कुत्ते दिखाना चाहता है ?

कुछ ही देर में वह लोहे की सलाखों से बने एक काफी बड़े पिंजड़े के सामने खड़ा था। उस में लगभग बारह जंगली कुत्ते बन्द थे। शहर के कुत्तों की तरह इन कुत्तों के कान लम्बे न हो कर गोल थे—बन्दर के कानों की तरह। उन का रंग भूरा था। छोटी-छोटी आंखों में खूंखार, जंगली कौंध भरी थी। उन में से एक भी कुत्ता बैठा हुआ नहीं था, सब बेचैनी से टहल रहे थे। पिंजड़ा ऊपर से बन्द नहीं था और जिन सलाखों से वह बना हुआ था, वे भी पांच हाथ से अधिक ऊंची नहीं थीं लेकिन ये कुत्ते बाहर नहीं आ सकते थे। उन के लिए ढाई हाथ की छलांग लगाना भी मुश्किल था।

"ये दो दिन के भूखे हैं।"

मुकुन्द चुप रहा। शेख निजाम मुस्कराया, "लेकिन इस भूख का बदला उन्हें बहुत अच्छी तरह चुकाया जाएगा।"

मुकुन्द की प्रश्नवाचक आंखें शेख पर टिकीं।

"नहीं समझे? हहह, समझ भी नहीं सकते! इन भूखे कुत्तों को कल आदमी का मास मिलेगा।"

"जी?"

"हां, मेरे काफिर दोस्त, इन्हें बादशाह की ओर से आदमी का मास खिलाया जाएगा, बहुत मशहूर आदमियों का मास···"

मुकुन्द के मस्तिष्क में कुछ-कुछ कल्पना उभरी। भौंहें सिकोड़ कर उस ने पूछा, "किन का?"

"आवाज को जरा मुलायम बना कर पूछो तो बताऊं।"

"मैं पूछता हूं, किन का?"

तुरन्त रक्षकों के भाले मुकुन्द पर तन गए।

"मेरे इतने करीब मत आओ, कम-से-कम चार कदम तो दूर रहो।" शेख निजाम ने कर्कशता से कहा, "और डरो मत, इन्हें तुम्हारा मास नहीं खिलाया जाएगा।"

मुकुन्द ने फिर से कुत्तों की ओर देखा। उन के दांत नुकीले थे और जीभ लिसलिसी, जिसे वे बार-बार पानी डुबा कर तर कर रहे थे। पानी पत्थर के एक कुण्ड में रखा गया था।

"चलो, तुम्हें वापस जाना है न?"

"पहले मेरे सवाल का जवाब दीजिए!"

"ओफ, बड़े टेढ़े हो।" शेख निजाम हंसा, "लगता है, बताना ही पड़ेगा। शाम को ये कुत्ते कोड़ेगांव ले जाए जाएंगे। हमारे बादशाह वहां पहले ही पहुंच चुके हैं। आज रात को तुम्हारे शायर की जीभ काटी जाएगी···" शेख निजाम रुका, मुकुन्द के चेहरे के भाव देखने के लिए। मुकुन्द चलते-चलते ठिठक गया था।

"कल सुबह तुम्हें कोड़ेगांव पहुंचा दिया जाएगा। क्या सोच रहे हो

डर गए ? अरे नहीं, तुम्हारा मांस नहीं खिलाया जाएगा। जिन का खिलाया जाएगा, उन का खिलाया जाते देखने का मौका तुम्हें मिलेगा। अरे···अरे···दूर रहो···कम-से-कम चार कदम···भालों से डर नहीं लगता ? हां, तो उन के नाम समझ गए न ? तुम्हारा किसी जमाने का छत्रपति और तुम्हारा प्यारा-प्यारा शायर ! कुत्तों की तकदीर के भी क्या कहने ! जियो !"

"मुझे यह सब दिखाना जरूरी है ?"

"एक शर्त मान लो तो देखने से बच सकते हो।"

"क्या ?"

"मुसलमान हो जाओ।"

"मंजूर, मुसलमान हो जाऊंगा, बशर्ते कि आप हिंदू हो जाएं।"

शेख निजाम हंसता रहा, काफी देर तक, लगातार।

रात मुकुन्द को शाहजादा मुअज्जम की याद आई। 'औरंगाबाद में शराब के नशे में धुत पड़ा होगा वह।' उस ने सोचा।

मुकुन्द को विश्वास था कि मुअज्जम को गुप्तचरों द्वारा बहादुरगढ़ का हर समाचार मिल रहा होगा। 'फिर उस ने मुझे क्यों बुलाया है ?' काफी विचार के बाद वह यही निष्कर्ष निकाल सका कि मुलाकात होते ही शाहजादा उस से सूबेदार बनने का आग्रह करेगा—वही, पुराना आग्रह···जहरीली बेवकूफी से भरा···

'नहीं, मुझे रायगढ़ पुकार रहा है। महादेवी येसूबाई वहीं है। उन का बेटा शाहू···छत्रपति सम्भाजी का भाई राजाराम···ये भी वहीं हैं। इन दोनों में से कोई एक सम्भाजी का स्थान सम्भालेगा। कोई भी सम्भाले, मुझे तो मराठों की सेवा से मतलब है। ओह ! कैसे ठण्डे दिल से मैं ये बातें सोच रहा हूं ! मानो सचमुच छत्रपति की मृत्यु हो चुकी हो। कितना पतित हूं मैं ! अभी तो येसूबाई का सुहाग यथावत् है। मुझे नए छत्रपति की कल्पना भी करनी चाहिए।'

लेकिन मुकुन्द ने पाया कि यह दिलासा बहुत थोथा था। सम्भाजी,

अन्धा और लाचार, अब सिर्फ जंगली कुत्तों के लिए जिंदा था···यह रात बीतेगी। सुबह होगी और उसे कोडेगांव ले जाया जाएगा। बोटियां काटी जाएंगी उस की। उस की अन्धी आंखें उन कुत्तों को नहीं देखेंगी, न उस के कानों में भौंकने की आवाज ही पड़ेगी, क्योंकि इन जंगली कुत्तों के गले गूंगे होते हैं। हां, उन की नोच-खसोट अवश्य सुनाई पड़ेगी, लेकिन कब तक ? बहुत जल्दी मम्मामी अपनी चेतनाएं खो देगा और उसे पता न चलेगा, कब हाथ या पैर या रान में से नई बोटी काटी गई।

'शायद अब तक कनरा अपनी जीभ खो चुका हो।' आधी रात के बाद मुकुन्द ने सोचा। अब वह केवल सोच सकता था, कम या ज्यादा उदास नहीं हो सकता था—वह हर समय इतना उदास रहने लगा था कि उस से ज्यादा उदास होना असम्भव था।

30

११ मार्च, १६८६···कोडेगांव···

सुबह अभी-अभी हुई थी। वे अधनंगे मजदूर पसीने से तर थे। उन के हाथ में लोहे की मजबूत सलाखें थीं, चपटी व तीखी नोक वाली सलाखें, जिन्हें वे जमीन पर पूरी ताकत से मारते हुए सकरे गड्ढे बना रहे थे। फिर उन गड्ढों में लोहे के सींखचे डाले गए और उन्हें मिट्टी से भर दिया गया। पिंजड़ा तैयार हो चुका तो उन्होंने उस में एक छोटा दरवाजा लगाया, फिर उन गाड़ीवानों को पास आने का इशारा किया जो एक पेड़ की छाया में बैठे हुए हुक्का पी रहे थे और आपस में भूल कर भी कोई बात नहीं कर रहे थे। उन्होंने अपनी पगड़ियां बहुत कस कर बांधी थीं, यहां तक कि उन्हें सिर में दर्द होने लगा था। इशारा मिलते ही वे उठ खड़े हुए और अपनी बैलगाड़ियों की ओर बढ़े। बैलगाड़ियों में

में चार थीं और हर ओर से बहुत अच्छी तरह बन्द थीं। आड़ी-टेढ़ी कतार में वे उस पिंजड़े की ओर बढ़ने लगीं।

हर गाड़ी पिंजड़े के करीब आ कर इस प्रकार उल्टी चलती कि उस का पिछला हिस्सा पिंजड़े के खुले दरवाजे से बिल्कुल सट जाता। तब गाड़ीवान अपनी जगह से उठता और गाड़ी की गोलाकार, चारों ओर से मुंदी हुई छत पर चढ़ जाता। उस के हाथ छत में बना विशेष ढक्कन ऊपर खींच देते और भीतर से तीन-चार जंगली कुत्ते पिंजड़े में कूद जाते। कूदते ही वे इधर-से-उधर दौड़ने लगते, फिर बेचैन चहलकदमी करते।

सारे कुत्ते पिंजड़े में आ गए तो दरवाजा बन्द कर दिया गया। गाड़ीवान बैलों की दुम उमेठ कर दूर जाने लगे। मजदूरों ने अपनी नुकीली सलाखें जमीन पर रख दीं। वे उकड़ूं बैठ कर बीड़ी सुलगाने लगे जो उन की असभ्य औरतों ने तैयार की थीं। उन्हें उन सैनिकों का इन्तजार था जो कुछ ही देर में आ कर पिंजड़े और कुत्तों की जिम्मेदारी लेने वाले थे।

उन्होंने कई घुड़सवारों को धूल उड़ाते हुए आते देखा। वे पिंजड़े के पास आ कर घोड़ों से उतरे और काफी दूर रह कर उसे चारों ओर से घेरने लगे। सब के पास तलवारें, ढालें और बन्दूकें थीं। उन में से एक ने, जो उन का मुखिया मालूम पड़ता था, मजदूरों की ओर सिक्के फेंके और उंगली हिला कर चले जाने का खामोश इशारा किया।

कोड़ेगांव के मुगल शिविर का अधिकांश हिस्सा वहां आ गया। कुछ देर पहले जो मैदान सूना था, अब वह घुड़सवारों, प्यादों, छोटे-बड़े रथों, हथियारों आदि से भरा था। कुत्तों का पिंजड़ा भीड़ के ठीक बीच में था। कोई भी सैनिक ऐसा नहीं था जो चौकन्ना न हो। सब को डर था, कहीं मराठों का आक्रमण न हो जाए, हालांकि जहां तक उन्हें मालूम था, मराठों के पास इतने दस्ते नहीं थे कि आक्रमण का साहस करते।

औरंगजेब हत्याकाण्ड देखने आने वाला नहीं था। वह बड़ी तसल्ली

में अपने तम्बू में लेटा हुआ था। उस की आंखें बन्द थीं, हालांकि उसे नींद नहीं आ रही थी। वह जानता था कि वह हाजिर न होगा तो भी उस के हुक्म की तामील जरूर की जाएगी।

कड़े पहरे में चार ऊंट पिंजड़े की ओर बढ़ रहे थे। एक पर सम्भाजी था एक, पर कलश। उन्हें कस कर बांध दिया गया था ताकि वे खुदकुशी न कर सकें और उसी मौत मरें, जो मौत बादशाह चाहता था।

मुकुन्द से सम्भाजी की अधी आंखों की ओर देखा न जाता था। मुकुन्द तीसरे ऊंट पर बंध कर लदा हुआ था।

चौथे ऊंट पर दो जल्लाद बैठे थे। उन की आंखें फटी हुई थीं—इसलिए नहीं कि उन्हें डर लग रहा था, बल्कि इसलिए कि यह उन की आदत थी। वे इतनी लाल थीं कि पुतलियों के आसपास कोई सफेदी नहीं थी। उन के गले में तावीज लटक रहे थे और जांघिए के सिवा उन्होंने कुछ नहीं पहना था। उन की बाहें मोटी थी, जांघें थलथल। उन की छातियों का मांस लटक आया था। उन के सिर के बाल बहुत छोटे कटे हुए थे। उन में तेल इतना ज्यादा था कि वह कनपटियों पर बह रहा था। उन्होंने कानों में छोटी-छोटी बालियां पहनी थीं और आंखों में काजल डाला था।

चारों ऊंट पिंजड़े के पास आ कर बैठ गए उन्होंने इतनी-फूहड़ता बरती कि उन पर सवार व्यक्तियों के गिर पड़ने का खतरा पैदा हो गया। पिंजड़े के पास लोहे के दो काले आसन रखे थे। उन की बाहें छोटी थीं। पास ही एक तिपाई पर दो हार रखे हुए थे। हारों के ऊपर दो चमकदार तलवारें थीं जिन की चौड़ाई काफी ज्यादा थी। उन की मूठें कलात्मक नहीं थीं।

चर्बीले जल्लाद तिपाई की ओर बढ़े। पीछे-पीछे सैनिकों से घिरे सम्भाजी और कलश चल रहे थे। उन के बाद मुकुन्द था जिसे पिंजड़े के पास ही कड़े पहरे में खड़ा कर दिया गया। उस के बाल बिखरे हुए और भूरे थे, आंखें सूनी-सूनी।

सम्भाजी और कलश को काले आसनों पर बिठाया गया। उन्हें जब आसनों के साथ बांधा जा रहा था तो मुकुन्द ने उन भूरे कुत्तों की ओर देखा। फिर न चाहते हुए भी उस की आंखें आसनों की ओर उठीं। जल्लादों ने अपनी तलवारें एक ओर रख कर दोनों हार उठा लिए।

अब वे सम्भाजी और कलश की ओर बढ़ रहे थे। उन्होंने उन्हें हार पहनाए। उन की गम्भीरता से जल्लाद समझ गए कि वे अपने देवताओं को याद कर रहे हैं।

पीठ फेर कर वे तिपाई की ओर बढ़े। तलवारें उठा कर उन्होंने उन का चुम्बन लिया, फिर आकाश की ओर देखा। पलकें उठने के कारण उन की बड़ी-बड़ी, लाल आंखें और बड़ी लग रही थीं। उन के होंठ हिले क्योंकि उन के भी कुछ देवता थे, जिन्हें उन्होंने कभी नहीं देखा था लेकिन जिन की भेजी हुई क्रूरता उन में कूट-कूट कर भरी थी।

वे दोनों उन दोनों के पास जा कर उन का मांस काटने लगे। जब उन्होंने देखा कि वे चीख नहीं रहे हैं तो उन्हें अचरज के साथ थोड़ा डर भी लगा कि ये कैसे इन्सान हैं। पहले उन्होंने झटके मारते हुए बोटियां काटीं ताकि उन्हें थोड़ा कम दर्द हो, फिर उन्होंने हलाल करने के तरीके से धीरे-धीरे बोटियां काटना शुरू किया—लेकिन वे फिर भी न चीखे। फूल की मालाएं खून से सन गई थीं।

किसी के गिरने की आवाज हुई। जल्लादों ने पीछे देखा। मुकुन्द बेहोश हो गया था। गाड़ीवान अनाज के बोरे उठाते हैं, उसी तरह एक सैनिक उसे अपनी पीठ पर लाद कर छाया की ओर ले चला।

कोड़ेगांव के निवासी अपने घरों में घुसे हुए थे। इक्का-दुक्का आदमी, जो किसी बन्दर की तरह अपनी उत्सुकता न दबा पाता, इस ओर आता, लेकिन दृश्य की भयंकरता उसे दूर से ही भाग जाने के लिए मजबूर कर देती।

पिंजड़े में नोच-खसोट के कारण धूल उड़ रही थी। सलाखों के ऊपर से एक-एक, दो-दो बोटियां भीतर गिरतीं और वे भूखे जानवर टूट पड़ते।

ी है।"

"हां, वह घेरा डालेगी।"

"मैं ने गुप्त रूप से छत्रपति राजारामजी को प्रतापगढ़ भेज दिया है। यहां वह सुरक्षित नहीं थे। मैं शाहू के साथ यहीं रहूंगी और रायगढ को बचाने की कोशिश करूँगी।"

"अपराध क्षमा करें तो एक शंका..."

"क्षमा करने की अधिकारिणी मैं नहीं रही।"

"ऐसा न कहिए देवि!"

"आप की शंका क्या है?"

"मेरे स्वामी संगमेश्वर में रुके क्यों थे?"

येसूबाई न हंसी, न मुस्कराई। बड़ी स्वाभाविकता से उस ने कहा, "संगमेश्वर में भी उन्हें बांध कर रखने वाले कुछ लोग थे। उन से मिलने गए थे। फिर वहीं रुके रहे।"

कुछ दिनों बाद बड़े हृदय-विदारक समाचार आए—छत्रपति सम्भाजी और छन्दोगामात्य कलश के कटे सिरों में भुस भर कर उन्हें भाले की नोक पर दक्षिण के प्रमुख शहरों में घुमाया जा रहा था।

मुगल सेनाएं रायगढ़ से ज्यादा दूर नहीं थीं।

किले के दरवाजे बन्द कर दिए गए। किसी ने किसी को नहीं बताया था लेकिन सब जानते थे कि ये बन्द दरवाजे ज्यादा दिनों तक बन्द न रह सकेंगे।